राष्ट्रीय शिक्षावली—६

छठी पोथी

सम्पादक

रामदास गौड

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी

१२६, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

१९७६



कई महीने हुए पुरीसे महात्माजीका आदेश मित्रवर बाबू राजेन्द्र-प्रसादद्वारा मिला। विहारविद्यापीठकी पाठ्यावलीके अनुसार भरसक शीघ्र ही राष्ट्रीय शिक्षावलीका सग्रह हुआ और भावी परिवर्त्तन और परिवर्द्धनकी आशासे यह सस्करण थोड़ी सख्यामें निकाला गया।

शिक्षामें मातृभाषाकी प्रधानतासे विषय और पाठ प्रचलित पद्धतिसे कुछ भिन्न आकार और प्रकारके रक्खे गये हैं। विषय-बाहुल्यसे शब्द और ज्ञानकी सम्पत्ति बढ़ती है, इसी दृष्टिसे पाठोंका अनुक्रम रक्खा गया है, परन्तु मातृभाषाके शब्दार्थ और पाठके विषय रटवाना समीचीन पद्धति नहीं है, पढ़तेपढ़ाते इनका स्वाभाविक बन जाना ही उचित रीति है। वर्त्तनी और अनुलेखन मस्तिष्कके कम और हाथके विषय अधिक हैं। भरसक मस्तिष्कपर कम बोझा रखें, यही शिक्षकोंका लक्ष्य होना चाहिये। पाठको रोचक और सुबोध बनानेके लिये शिक्षकको उचित विस्तारका अधिकार है। सच्ची शिक्षा चरित्रवान् बनानेकी चेष्टा है, जो व्यावहारिक होनी ही चाहिये और शिक्षकका स्वय उदाहरण होना अनिवार्य्य है।

हिन्दी भाषाका राष्ट्रियत्व अन्य भाषाओंके उचित सम्मिश्रणका पक्षपाती है। "भाषा"की परिभाषा भी ऐसी ही है। सम्पादकने इसका बराबर ध्यान रक्खा है। इसमें हिन्दीके विद्वानोंकी रचना, बिना उनकी आज्ञा, सग्रह की गयी है। इस धृष्टताके लिये क्षमाप्रार्थी हू। पूछनेको समय न था। जिन सज्जनोंको आपत्ति हो कृपया सूचना दें। उनकी विनिश्चित आज्ञाके लिये कृतज्ञ हू।

बड़ी पियरी, काशी
गुरुपूर्णिमा १६७८

रामदास गौड़

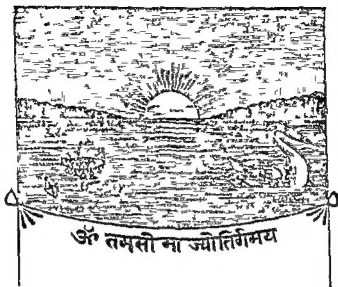
छठा पाथा



विषय-सूची

२४ पद्यभाग

* वन्दे मातरम् *



छठी पोथी

१ समर्पण

१—गणपति, गौरि, गिरीश, गिरापति गावे कोई
कोई ध्यावे सूर्य्य, महेश मनावे कोई
राम, कृष्ण या बुद्ध, कहे कोई तीर्थंकर
कोई माने दैत्य, यक्ष या भूत भयंकर

२—काल, कर्म्म या ब्रह्म, सत्य या ज्ञान बखाने
कोई सत्तामात्र, असत ही कोई जाने
कोई कहता शक्ति, प्राण बतलावे कोई
महा-महा, परमाणु परम समझावे कोई

३–कोई आपा जान, अहंग्रह रीति उपासे
किसी किसीको ब्रह्म, आखिल सत्ताही भासे
अपनी अपनी बुद्धि सभी चलभर दौड़ावें
हे मेरे सर्वस्व ! एक तुझको ही ध्यावें
४–कोई ले सद्भाव तुम्हारे चरणों अर्पे
कोई भरा कुभाव तुम्हारे चलपर दर्पे
कोई निर्मल प्रेम तुम्हें कर नेम निसारे
तन मन धन सर्वस्व प्राणतक तुमपर वारे
५–न तो कुभाव सुभाव न निर्मल प्रेम यहां है
सिवा तुम्हारे चीज कौन सी निजी कहां है
किसको दूं ? क्या भेंट ? कौन विधि तुम्हें मनाऊं
हैरानी, प्राणेश ! कौन विधि तुम्हें रिझाऊं
६–यद्यपि जीर्ण विदीर्ण शीर्ण यह नीच कुटी थी
काम क्रोध मद लोभ मोहके हाथ लुटी थी
इसमें अतिशय दीन हीन वन्दी रहता था
जीवन महा मलीन, यातनाएं सहता था
७–बलिहारी, सर्वस्व ! किया जो इसको पावन
अपना किया सनाथ, रहो संततमन भावन
अपना आपा आज तुम्हें अर्पण करता हूं
"मैं"–तन-धारी जीव कमल पदपर मरता हू

—रा० गौ०

२ हिन्दुओंका धार्मिक साहित्य

(१) विभाग

भारतवर्षका इतिहास भलीभांति जाननेके लिये यह भी आवश्यक है कि संस्कृत भाषाका इतिहास ध्यानपूर्वक देखा जाय। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन कालके ब्राह्मणोंने संस्कृत विद्यामें बड़ी उन्नति की और उन प्राचीन ऋषियों तथा पण्डितोंके लिखे ग्रन्थ सदाके लिये भारतवर्षके गौरवके विषय हो गये। संस्कृत भाषा बहुत प्राचीन और प्रौढ़ है। शब्दोंकी तो इस भाषामें गिनती ही नहीं की जा सकती। पहले तो मूल शब्दोंकी संख्या बहुत अधिक है फिर शब्दोंमें प्रकृति प्रत्यय, विभक्ति अथवा शब्दान्तरके जोडनेसे शब्दोंका भण्डार इतना बढ़ जाता है कि मनुष्यके चित्तके किसी प्रकारके भी गूढ़ भावको प्रकट करनेके लिये शब्दोंकी कमी नहीं रहती। कुछ विद्वानोंकी सम्मति है कि संस्कृत ही समस्त संसारकी आर्यभाषाओंकी जननी है। यह सब कुछ होनेपर भी खेदका विषय है, कि सर्वसाधारणमें उसका व्यवहार नहीं रहा। अतएव देशी विद्वानोंमें अब संस्कृत भाषा मृतभाषा कही जाती है। भारतवर्षके लोग संस्कृतको देवभाषा या "अमरभाषा" कहते हैं और यह भी विश्वास करते हैं कि अति प्राचीन कालमें पढ़ेलिखे लोग इसी भाषाका व्यवहार करते थे। हां, अपढ़ और साधारण नीच जातिके लोग एक बिगड़ी हुई भाषा बोलते थे जिसे प्राकृत कहते हैं। यही प्राकृत भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे बोली जाती और भिन्न भिन्न नामसे पुकारी जाती थी। यथा महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची। इनमेंसे महाराष्ट्री दक्षिण देशोंमें, शौरसेनी मथुराके आसपास ब्रजमंडलमें, मागधी मगध आदि देशोंमें तथा पैशाची वनवासियों और नीच जातिके लोगोंमें बोली जाती थी। हिन्दुस्तानमें आजकल भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बोली जानेवाली भाषाएं

हिन्दी, बंगला, मरहट्टी, पंजाबी, गुजराती आदि सब इन्ही प्राकृत भाषाओंसे निकली हैं और उन्हींका रूपान्तर हैं।

संस्कृत भाषाके ग्रन्थोंको हम सामान्य रीतिसे दो भागोंमें बांट सकते हैं। एक तो धर्मग्रन्थ जिनमें विशेष करके ब्राह्मणोंके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें लिखी गयी हैं और दूसरे साहित्य ग्रन्थ जिनका प्रधानतया संस्कृत भाषाके साहित्यहीसे सम्बन्ध है। जिस तरह धर्मग्रन्थोंमें संस्कृतका साहित्य कम नहीं उसी तरह संस्कृत साहित्यके ग्रन्थ भी धर्मविषयक बातोंसे रहित नहीं हैं। तथापि धर्मग्रन्थोंमें मुख्य करके धर्मका और साहित्य ग्रंथोंमे मुख्य करके साहित्यका सम्बन्ध रहनेसे उक्त विभाग किया गया है।

संस्कृतके धर्मग्रंथ अठारह भागोंमें विभक्त हैं और उन्हें अठारह विद्याओंके नामसे पुकारते हैं। इन अठारह विद्याओंमे चार वेद, चार उपवेद, छ वेदाङ्ग और चार उपाङ्ग गिने जाते हैं। चारों वेदोंके नाम ऋक्, यजु, साम और अथर्व हैं। चारों उपवेदोंके नाम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद, और अर्थशास्त्र हैं। छओ वेदाङ्गोंके नाम शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चारों उपाङ्ग कहे जाते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका संक्षेप रीतिसे वर्णन नीचे किया जाता है।

(२) वेद

चारों वेदोंमें ऋग्वेद विस्तारमें सबसे बड़ा और ध्यान देने योग्य है। ऐतिहासिकोंकी सम्मतिमें यह सब वेदोंमें अधिक प्राचीन है। इसमें कुल मिलकर १०१७ सूक्त वा मंत्रसमूह पाये जाते हैं। प्रत्येक मंत्रका नाम ऋक् है। ऋग्वेदके दो प्रकारके विभाग किए गए हैं। इस ग्रन्थमें आठ आठ अध्यायवाले आठ अष्टक हैं। प्रत्येक अष्टकमें कई एक सूक्त और प्रत्येक सूक्तमें

कई एक ऋचाएं हैं। ऐसे ही ऋग्वेदमें दस मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डलमें कई एक अध्याय और प्रत्येक अध्यायमें कई एक मन्त्र हैं। आर्यों के प्राचीन सिद्धान्तानुसार वेद ईश्वरप्रणीत हैं, पर आधुनिक मतसे वेदोंके प्रणेता ऋषि हैं। ऋग्वेदके प्रथम और दशम मण्डलको छोड़ शेष मंडल किसी एक ही ऋषिके कहे हुए हैं। प्रथम तथा दशम मंडल कई एक भिन्न ऋषियोंके प्रोक्त हैं। वेदके मन्त्रभागोंका नाम संहिता है। शाकल्य ऋषिने प्रत्येक मन्त्रका पदपाठ भी लिखा है। अर्थात् मन्त्रके प्रत्येक शब्दोंका भिन्न भिन्न पूर्णरूप पृथक् लिख रखा है। वेदोंके किस मन्त्रका विनियोग किस प्रकरणमें करना चाहिये इसके बतलानेके लिए ब्राह्मणग्रन्थ लिखे गये हैं। वेदोंके समान ब्राह्मणोंमें भी सब मन्त्र सस्वर लिखे गये हैं। ऋग्वेदमें प्रायः तीन छन्दोंमें लिखे मन्त्र देख पड़ते हैं। वे छन्द गायत्री, त्रिष्टुप और अनुष्टुप हैं। ऋग्वेदके मन्त्रोंमें अनेक देवताओंकी स्तुति की गई है और उनसे प्रार्थना की गई है कि वे अपने भक्तोंको विपत्तिसे बचावें और उनके शत्रुओंका विनाश करें। प्राचीन कालके ऋषि ईश्वर पर विश्वास रखते थे और देवताओंको जिन्हें वे ईश्वरकी शक्ति मानते थे सज्जनोंका रक्षक और दुष्टोंका संहारक समझते थे। ऋग्वेदमें अदिति, द्यौ, अग्नि, सूर्य, वरुण, उपस्, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मरुत, रुद्र, विष्णु (सर्वव्यापी परमेश्वर) और यम आदि देवताओंकी स्तुतिके मन्त्र हैं। सिन्धु और सरस्वती इन दोनों नदियोंकी भी स्तुति है। ऋग्वेदके मन्त्रोंमें प्रजापति और मित्रा वरुणका और कहीं कहीं अवसरानुसार, गन्धर्वों, अप्सराओं, उर्वशी और पुरुरवा, मनु इक्ष्वाकु, त्रसदस्यु पुरुकुत्स, सुदास, दशरथ, राम, पुरु, यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु और मनुकी सन्तानों तथा भरत आदि कुरुवंशी राजाओंका और विश्वामित्र वसिष्ठ आदि ऋषियोंका भी उल्लेख है। ऋग्वेदमें हिमालय पर्वत और पञ्जाबकी सब नदियोंका भी नाम आया है यथा, सिन्धु, वितस्ता (झेलम)

परुष्णी वा इरावती (रावी), विपाशा (व्यासा), चन्द्रभाग (चनाव), शतद्रु (सतलज), कुभा (कावुल), सुवस्तु (स्वात), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमाल), यमुना और गङ्गा-का भी नाम प्रसगवश आया है। उस समयके लोगोंका भोजन मुख्य करके गेहू और जव था। इस बातका भी पता लगता है कि ऋग्वेदके समयमें लोग सोना चादी आदिका व्यवहार जानते थे। वन्य पशुओंमें सिंह, वृक, व्याघ्र, भालू और हाथी तथा पालतू पशुओंमें घोडा, गाय, भेड, बकरी, कुत्ता, गदहा, और भैंस, पक्षिओंमें हस, तोता, मोर कौवा, आदिका उल्लेख ऋग्वेदमें किया गया है। सर्पकी चर्चा भी आयी है और उसे मनुष्यजातिका शत्रु गिना है।

ऋग्वेदके द्वारा उस समयके भारतनिवासियोंके चालचलन, व्यवहार आदिके बारेमें बहुत कुछ विदित होता है। पिता घरमें सबसे बडा अधिकारी समझा जाता था। स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर वैदिक यज्ञ करते और अपनी सन्तानका भला मनाते थे। स्त्रियोंका बडा आदर किया जाता था। स्त्रिया भी विद्याभ्यास करती थी। कुछ वैदिक सूक्तोंकी स्त्रिया ऋषितक हुई हैं। विवाहकी विधि जैसी उस समयमें थी प्राय वैसीही अबतक हिन्दुओके बीच प्रचलित पायी जाती है। कन्या अपने इच्छानुसार भी वर खोज लेती थी। विधवाका भी कभी कभी पुनर्विवाह होता था। कन्याके जन्मपर आजकलकी नाई उन दिनों भी लोग प्रसन्न नहीं थे। चोरोंके दण्ड और उधार लेना आदि व्यवहारकी व्यवस्था तब भी प्रचलित थी। मुर्दे जलाये जाते थे, पर कभी कभी धरतीमें भी गाडे जाते थे। उस समयके लोगोंका भोजन विशेषत दूध, घी, गेहूं और जव था। अन्न कभी तो पीसकर आटेकी रोटी बनाके, कभी भूनके और कभी खीरके रूपमें भी खाया जाता था। सागपात, तरकारी और फल भी उस समय खाद्य पदार्थ थे। मासका वर्णन भी पाया

जाता है। लोग यज्ञमें सोमलताका रस देवताओंको अर्पण करके पान किया करते थे। जुआ खेलना और मदिरा पीना पाप समझा जाता था। प्रत्येक गृहस्थ अग्निहोत्री होता था। खेती वाणिज्य तथा पशुपालन आदिका व्यापार वैश्योंका था। ब्राह्मण पुरोहित होते थे और पूजा आदिका कार्य कराया करते थे। लेन-देनका व्यवहार भी प्रचलित था। शस्त्रविद्याका यथोचित अभ्यास करके राजा प्रजाकी रक्षा करते थे और अन्तमें शासन का भार वे अपनी सन्तानोंको सौंप जाया करते थे। ढोल, वीणा, बासुरी, आदिका बजाना और गीत गाना उस समय भी प्रचलित था। वाणिज्यमें बहुधा गौके द्वारा वस्तुओंका मूल्य निर्द्धारित होता था। काठ, लकडी, धातु आदिका कार्य भी होता था और रथ, पताका आदि चीजें बनायी जाती थीं। कपडे बुनना और चमडेका काम भी होता था। समुद्र यात्राका प्रचार भी था। दान करना गृहस्थका एक मुख्य काम समझा जाता था। लोग पढनेमें विशेष रुचि रखते थे। नीति, धर्म, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, गणित, आदिमें लोग परिश्रम किया करते थे। ब्राह्मण, क्षत्री,, वैश्य और शूद्र ये चार जातिया और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और सन्यास ये चार आश्रम थे।

यजुर्वेदके मन्त्र यज्ञकर्ममें पुरोहितोंके लिए लिखे गए हैं। यजुर्वेदका सम्बन्ध मुख्यतया कर्मकाण्डहीसे है। यजुर्वेदके लगभग आधे मन्त्र ऐसे भी होंगे जो ऋग्वेदमें भी पाए जाते हैं। यजुस उन मन्त्रोंको कहते हैं जो यज्ञादि कर्मकलापके समय पढे जाय। इस वेदके दो भाग हैं, एक कृष्णयजुर्वेद वा तैत्तिरीय संहिता अर्थात् वह भाग जिसे व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने संकलित किया। दूसरा शुक्लयजुर्वेद वा वाजसनेयि संहिता जिसे वैशम्पायनके शिष्य याज्ञवल्क्यने संकलित किया। ऋग्वेदके मन्त्रोंका पाठ यदि यज्ञके किसी कर्ममें किया जाय तो यजुस् कहलावेंगे। यजुर्वेदके मंत्रोंमें गंगा यमुना आदि नदियों और कुरु

पाचाल आदि देशोंके नाम आये हैं। रुद्रके नामान्तर महादेव, शकर, शिव इत्यादि लिखे हैं। विष्णुका भी नाम इन मत्रोंमें आया है।

सामवेदके मत्र गा गाकर पढे जाते हैं। इस वेदमें लगभग १५४६ मन्त्र मिलते हैं। इनमेंसे केवल ७५ साममत्रोंको छोडके शेष सभी ऋग्वेदमें हैं। सामोंके पढनेका प्रयोजन सोमयागमें पडता है।

अथर्ववेदमें लगभग ६००० मत्र मिलते हैं जिनमेंसे प्राय १२०० ऋग्वेदमें भी पाये जाते हैं। अथर्वके मत्र भी कर्मकाड हीसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु, और राज्याभिषेक आदिके कृत्यसम्बन्धी मत्र तथा मारण, उच्चाटन, आरोग्य, चिरजीविता, शत्रुनाश आदिके उपयोगी मत्र भी इस वेदमें सकलित हैं। विशेष करके ऐहिक विषयोंसे सम्बन्ध होनेके कारण पारलौकिक (ऋक, यजुस, और सामवेद) त्रयीके साथ स्वाध्यायमें इसके पाठको विधि नहीं मानी गयी है।

ऊपर जिन चार वेदोंका वर्णन किया गया उन्हें केवल सहिता या मत्रभाग समझना चाहिए। वास्तवमें इसका निर्णय करना कठिन है कि वेदकी सहिता कब रची गयी। जैसे अनादि कालसे सृष्टि चली आई है वैसे ही अनादि कालके ऋषियोंके प्रोक्त मत्र भी ससारमें प्रचलित हैं। हा, जिस वैदिक मत्रमें जिस ऋषिका व राजा आदिका उल्लेख है वह मत्र उस ऋषि या उसी राजाके समयमें कहा गया होगा यह बात मानी जा सकती है। जैसे जिस मत्रमें राजा भरतका नाम आया है वह राजा भरत हीके समयमें वा उससे पीछे कहा गया। निदान सब वैदिक मत्रोंके समयका पता ठीक ठीक न लगनेसे यह कहना अनुचित न होगा कि वेद अनादि हैं। इससे यह भी नहीं कहा जा सकता कि वेद समग्र इतना ही है। महाभारतमें वर्णित कुरुक्षेत्रके युद्धके समयमें पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यासने वैदिक मंत्रोंका सकलन किया। वह सकलन उतनाही था जितना कि अब पाया जाता है इसका भी ठीक नहीं है। वेदका समय और

समग्र भाग ऐतिहासिक रीतिसे किसीको विदित होना कठिन है। वेदोंको सकलन करनेहीके कारण कृष्णद्वैपायनका नाम वेद-व्यास पड़ा। ऐतिहासिक दृष्टिसे इतना कहदेना ही उचित है कि वेदोंके प्रचलित मन्त्रोंका सकलन कुरुक्षेत्र-युद्धके लगभग हुआ।

यह तो हुई सहिताकी बात। केवल सहिताभाग ही वेद माना जाता हो सो नहीं। वेदहीमें ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् भाग भी सम्मिलित हैं इस कारण उक्त ग्रन्थोंको भी वेद ही माना जाता है। वैदिक कर्मकाण्डकी प्रक्रिया बतानेवाले तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले कथानकोंका विवरण ब्राह्मणनाम वैदिक ग्रंथोंमें किया गया है। उपासना अर्थात् देवपूजन या ध्यान और ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका वर्णन जिन वेदों-में है उनका नाम आरण्यक और उपनिषद् है। प्रत्येक वैदिक सहितासे सम्बद्ध ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। आर-ण्यकमें वनवासी ऋषियोंने अधिकारी शिष्योंको जो शिक्षा अपने आश्रमोंमें दी सो लिखी है और उपनिषदोंमें अनेक उपा-ख्यानों आदिके द्वारा एक आत्मा या ब्रह्मकी सिद्धि की गयी है। उपनिषदोंका सिद्धान्त भी अद्वैतवाद ही है। वेदोंके सकलन-कालकी तरह ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थोंके सकलन-कालका भी कुछ पता नहीं लगाया जा सकता। शतपथ ब्राह्मणमें परीक्षितके पुत्र जनमेजय तथा उनके भाइयोंके नाम मिलते हैं जिससे अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ जनमेजयसे कुछही पीछे लिखा गया होगा। इससे अनुमान किया जाता है कि सहिता-भाग और ब्राह्मण आदि ग्रन्थोंके सकलनमें प्राय डेढ सौ वर्षसे अधिक समयका भेद न होगा।

(३) उपवेद

चार उपवेदोंके मध्य ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद या वैद्यक शास्त्र है। उसके निर्माणकर्त्ता धन्वन्तरि, भरद्वाज, अत्रि और

अग्निवेश आदि ऋषि हैं। इन ऋषियोंके ग्रन्थका आशय लेकर चरकने एक संक्षिप्त वैद्यक ग्रन्थ बनाया जो चरकसंहिताके नामसे प्रसिद्ध है। लोग कहते हैं कि चरक काश्मीरके तुरुष्क राजा कनिष्कके यहा राजवैद्य थे। इस प्रकार चरकसंहिताके लिखे जानेका समय विक्रमकी द्वितीय शताब्दी है। चरकसंहितामें आठ स्थानके प्रकरण हैं। सुश्रुत नाम पंडित एक दूसरे वैद्यक ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके लिखनेवाले हैं। इनके ग्रन्थमें घावोंके चीरफाड़की प्रक्रिया तथा उसके उपयोगमें आनेवाले लगभग १२७ यन्त्रोंका वर्णन है। लोग अनुमान करते हैं कि सुश्रुत विक्रमकी चौथी शताब्दीमें रहे होंगे। सुश्रुतके पीछे वाग्भट आदि कई एक विद्वान् संस्कृत भाषामे वैद्यकग्रन्थोंके लेखक हो गये हैं। इन ग्रन्थोंके देखनेसे भलीभांति विदित हो जाता है कि प्राचीन कालमें कहांतक हिन्दुओंने वैद्यक वा चिकित्सा शास्त्रमें उन्नति प्राप्त कर ली थी।

यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद है, उसे विश्वामित्र नामक ऋषिने बनाया है। यह धनुर्वेद कब रचा गया इसका ठीक ठीक निर्णय होना कठिन है। धनुष शब्दका अर्थ प्रसिद्ध है परन्तु धनुर्वेद शब्दमें धनुष शब्दसे आयुध मात्रका ग्रहण किया जाता है। आयुध चार प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो फेंककर मारे जाते हैं जैसे चक्र आदि इन्हें मुक्त कहते हैं। दूसरे वे जो पकड़े ही पकड़े चलाये जाते हैं जैसे खड्ग आदि इन्हें अमुक्त कहते हैं। तीसरे वे जो दोनों प्रकारसे अर्थात् फेंककर और पकड़े हुए भी चलाये जाते हैं जैसे गदा बरछी आदि इन्हें मुक्तामुक्त कहते हैं और चौथा जो यन्त्रद्वारा चलाये जाते हैं जैसे बाण, शतघ्नी इत्यादि इन्हें यन्त्रमुक्त कहते हैं।

सामवेदका उपवेद गान्धर्ववेद वा संगीतशास्त्र है। इस विषयके ग्रन्थको भरतमुनिने बनाया है और उसका नाम नाट्यशास्त्र है। इस ग्रन्थमें गाने बजाने और नाचनेके नाना प्रका-

रके भेद बताये गये हैं। भरत मुनिके समयका ठीक पता नहीं लगता।

अथर्ववेदका उपवेद अर्थशास्त्र है जिसकी अनेक शाखाएं हैं यथा नीतिशास्त्र, शालिहोत्र (अश्वविद्या), शिल्पशास्त्र (कारीगरी), सूपशास्त्र (रसोई बनाना) इत्यादि ६४ कलाओंके विषय इस शास्त्रके अन्तर्गत हैं। इनमेंसे नीतिशास्त्रके रचयिता शुक्र, विदुर, कामन्दक, चाणक्य इत्यादि अनेक विद्वज्जन हैं। यद्यपि चाणक्यका समय विक्रमसे लगभग २६३ वर्षपूर्व प्राय निश्चित ही है और चाणक्यका "अर्थशास्त्र" इस विषयका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है तथापि अर्थशास्त्रकी प्रत्येक शाखाके विस्तारका समय ठीक ठीक निर्णय करना दुर्घट है।

(४) वेदांग

वेदाङ्गोंमेंसे शिक्षाका अध्ययन करनेसे अक्षरोंके शुद्ध उच्चारणकी रीति विदित होती है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, और ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इत्यादि स्वरोंके विशेष नियम हैं। इनका और ऐसे ही व्यञ्जनोंके उच्चारणके परस्परके भेदका बोध शिक्षाद्वारा होता है। स्वरादिके यथार्थ ज्ञानके विना मन्त्रोंके अशुद्ध पाठसे अनिष्ट होता है।

शब्दों और वाक्योंका यथोचित रीतिसे प्रयोग करना व्याकरण सिखलाता है। पाणिनि जो विक्रमसे ७५० वर्ष पूर्व हुये हैं जिनकी माताका नाम दाक्षी था और जो शलातुर* नाम स्थानके निवासी थे शिक्षा और व्याकरणशास्त्रके बनानेवाले आचार्य हैं। पाणिनिने अष्टाध्यायीमें व्याकरणके सब नियम सूत्ररूपसे अति संक्षिप्त करके लिखे हैं। इसपर कात्यायन मुनिने विक्रमसे लगभग ३४३ वर्ष पूर्व वार्त्तिक रचे। पतञ्जलिने जो पटनेके†

* अनेक विद्वानोंका मत है कि पाणिनीकी जन्मभूमि 'तुरी' नामक ग्राम था, जो पेशावरके समीप था।

† पतञ्जलिका नाम 'गोनर्दीय' भी है और विद्वानोंके मतसे 'गोनर्द' अवध प्रान्तके वर्त्तमान गोंडेका नाम है इसलिये पतञ्जलि गोंडेके निवासी थे, पटनेके नहीं। स०

निवासी थे जिनकी माताका नाम गोणिका था और जो विक्रम से लगभग अट्ठानवे वर्ष पूर्व मगधके शुङ्गवंशी राजा पुष्पमित्रके समयमें विद्यमान थे, पाणिनिके व्याकरणपर और वार्त्तिकोंपर महाभाष्य लिखा।

वेदके मन्त्र छन्दोंमें रचे गये हैं अतएव इन छन्दोंके पढ़नेकी रीति बतलानेके लिये छन्द शास्त्र नाम वेदाङ्गका प्रयोजन पड़ता है। छन्द दो प्रकारके है, लौकिक और अलौकिक। अलौकिक छन्द वेदमें पाये जाते हैं। दोनों प्रकारके छन्दोंका निरूपण छन्दोविवृति नाम ग्रन्थमें पिङ्गल नागने किया है। इसके समयका पता नहीं है और न यही विदित है कि ये कहां रहते थे। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती ये सातों छन्द और इनके अवान्तर भेदोंसे भिन्न भिन्न और भी बहुतेरे वैदिक छन्द हैं। लौकिक छन्द जैसे उपजाति, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका आदि जो इतिहास और पुराणों आदिमें पाये जाते हैं उनके नियम बतलानेवाले और भी ग्रन्थ वृत्तरत्नाकर आदि पीछे बने हैं।

वेदोंमें प्रयुक्त शब्दोंकी व्युत्पत्ति और निरुक्तिका जानना भी आवश्यक है। जिस अङ्गमें इसका वर्णन है उसे निरुक्त कहते हैं। निरुक्तके रचयिता यास्क विक्रमसे लगभग आठ सौ सैंतालीस वर्ष पूर्व रहे होंगे। इन्होंने वैदिक शब्दोंकी व्युत्पत्ति और उनके अर्थके यथोचित ज्ञानकी रीति निरुक्तमें लिखी है। वेदके बहुतसे मन्त्रोंका ठीक अर्थ निरुक्तहीके द्वारा ज्ञात होता है। अतएव यह एक बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है।

वेदमें कहे हुये किस कर्मके करनेका क्या क्या क्रम है इसको वह वेदाङ्ग बतलाता है जिसे कल्प कहते हैं। कल्प छोटे छोटे सूत्रोंमें लिखे गये हैं। कल्पसूत्रोंके तीन विभाग हैं, श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्र वे हैं जिनका सम्बन्ध श्रुतियों अर्थात् वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदोंसे है। ब्रह्मसूत्र

ते हैं जिनमें गृहस्थीके प्रत्येक कर्म करनेकी विधि विस्तारपूर्वक लिखी है। बच्चेके जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त जो जो कर्म वेदकी रीति अनुसार किये जाने चाहिये उन सबके अनुष्ठानकी रीति इन गृह्यसूत्रोंमें लिखी है।

धर्मसूत्रोंमें वर्णों और आश्रमोंके धर्मों का यथोचित रीतिसे वर्णन लिखा गया है। आचार व्यवहार आदिके जाननेके लिये यही सूत्र काममें लाये जाते हैं। इन्हींके आधारपर मनुस्मृति प्रभृति शास्त्रोंकी रचना हुई है।

लाट्यायन, द्राह्यायण इत्यादि श्रौतसूत्र, आश्वलायन गोभिल, पारस्कर इत्यादि गृह्यसूत्र और बौधायन, आपस्तम्ब कात्यायन आदि धर्मसूत्र हैं। कुछ युरोपियनोंका मत है कि इन कल्पसूत्रोंके रचे जानेका समय विक्रमसे लगभग ४४३ से १४३ वर्ष पूर्वतकका है।

वेदमें करने योग्य जो कर्म कहे गये हैं उनका नियत समय-पर होना आवश्यक है, अतएव समयका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ज्यौतिष शास्त्र लिखा गया है। इसमें तिथि, वार, नक्षत्र, मास, वर्ष आदि समयविभागोंके जाननेकी रीति निर्दिष्ट है तथा सूर्य, चन्द्र, मङ्गल आदि ग्रहोंकी गति आदिका वर्णन गणितशास्त्र द्वारा बतलाया गया है। ज्यौतिषका सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'पाराशरी संहिता' है जिसे पराशरने बनाकर प्रकट किया। यदि ये पराशर व्यासके पिता हैं तो इस ग्रन्थके निर्माणका समय कुरुक्षेत्रके युद्धका समय ही है पर यदि ये पराशर कोई दूसरे हैं जैसा कि युरोपियन लोग अनुमान करते हैं तो यह ग्रन्थ विक्रमसे लगभग १५० वर्ष पूर्व बना होगा। इसमें यवन आदि जातियोंका उल्लेख भी है।

ज्यौतिषका दूसरा प्राचीन ग्रन्थ गर्गसंहिता है जिसे गर्गाचार्यने जो पराशरसे प्राय १०० वर्ष पीछेके हैं बनाया। वह अपने ग्रंथमें लिखते हैं कि इस समय भारतवर्षमेंसे शकोंने यवनोंको

निकाल दिया है और आप शासन कर रहे हैं। यवनोंकी ज्यौतिषशास्त्रविषयक व्युत्पत्तिकी प्रशंसा भी गर्गने अपने ग्रन्थमें की है। आर्यभटीय नाम तीसरे प्रसिद्ध ज्यौतिषग्रन्थके लेखक आर्यभट्ट पटनेके निकट संवत् ५३३ में जन्मे थे। आर्यभट्टने लिखा कि पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती है और सूर्य तथा चन्द्रग्रहणका ठीक ठीक कारण भी बतलाया है, आर्यभट्टने पृथ्वीका प्राय ठीक ठीक विस्तार निर्णय करके लिखा है। बृहत्संहिता नाम प्रसिद्ध ज्यौतिषग्रन्थके रचयिता वराहमिहिर मालव देशके निवासी थे। इनका जन्म सवत् ५५६ में हुआ था और लगभग सवत् ६६६ में परलोक सिधारे। इनके ग्रन्थमें भूगोल, खगोल, गणित, वनस्पति और प्राणिविद्या आदि सभीका विस्तारपूर्वक वर्णन देखनेमें आता है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तके रचयिता विक्रमकी आठवीं शताब्दीके पूर्वार्द्ध में रहे होंगे। इन्होंने अपने ग्रन्थमें गणित और फलित दोनों प्रकारकी विद्यासे काम लिया है। बारहवीं शताब्दीमें भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणि लीलावती और बीजगणित रचकर उस समयके हिन्दुओंके ज्यौतिषशास्त्रके ज्ञानका पूरा पूरा परिचय दिया है। लल्ल, श्रीधर इत्यादि और भी अनेक प्राचीन ज्यौतिषशास्त्र ग्रथोंके निर्माता हुए हैं।

(५) पुराण

वेदके छओं अङ्गका क्रमपूर्वक वर्णन ऊपर लिखा गया है। वेदके चार उपाङ्गोंमेंसे पुराण भी एक अङ्ग है। हिन्दुओंके बीच यह प्रवाद प्रचलित है कि पुराण ग्रन्थ व्यासजीके बनाये हुए हैं और उनकी संख्या अठारह है। इन पुराणोंमें सृष्टिकी परम्परा वंश, मन्वन्तर और वंशमें उत्पन्न मनुष्योंके चरित्र इतिहास आदि लिखे गये हैं। उन अठारह पुराणोंके नाम ये हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, श्रीमद्भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा

ब्रह्माण्ड। इन अठारहों पुराणोंके अतिरिक्त और भी नाना पुराण हैं जिनमें अठारह उपपुराणोंको व्यासजीके पिता परशरजीने बनाया, ऐसी प्रसिद्धि है। उपपुराण ये हैं—सनत्कुमार संहिता, नृसिंह पुराण, नन्दि पुराण, शिवधर्मोत्तर, दुर्वासस संहिता, ब्रह्माण्ड पुराण मनुसंहिता, उशनस् संहिता, वरुण पुराण, काली पुराण, वसिष्ठ संहिता, वासिष्ठकृत लिङ्ग पुराण, महेश्वर पुराण, साम्ब पुराण, सूर्यपुराण, पराशर संहिता, मरीचि पुराण तथा भृगुसंहिता। केवल इतनीही संख्या पुराणों और उपपुराणोंकी हो सो नहीं, और भी कई एक पुराण जैसे शिवपुराण कल्किपुराण, देवीभागवत, वृहन्नारदीय पुराण आदि हैं जिनकी संख्याकी परिमिति नहीं।

पुराणोंके विषयमें प्रसिद्ध तो यही है कि इन्हें व्यासजी तथा उनके पिता पराशरने बनाया है पर कई कारणोंसे इस सिद्धान्त और प्रचलित प्रवादोंमें लोगोंको सन्देह है। एक तो यह कि प्राय आजकल जो पुराण ग्रन्थ देखनेमें आते हैं उनमें परस्पर इतना भेद पाया जाता है कि जिससे मानना पडता है कि ये एकही व्यक्तिके बनाये नहीं हो सकते। दूसरे यह भी सम्भव नहीं जान पडता कि ये सब एक ही समयमें बने हैं। तीसरे कई एक पुराणोंके विषयमें सन्देह भी है कि ये पुराण हैं या उपपुराण, व्यासके बनाए हैं या परशरके इत्यादि। इसके अतिरिक्त पुराणोंमें क्षेपक भी पीछेसे बहुत मिला दिये गए हैं जिन्हें मूलसे पृथक् करना कठिन हो गया है। ऐसी अवस्थामें यह अनुमान करना कि पराशर तथा व्यासजीके बनाए वास्तविक पुराण काल पाकर बौद्धों वा म्लेच्छोंके समयमें लुप्त हो गए हों और पीछेके पण्डितोंने कुछ अपनी स्मृतिसे और कुछ कल्पनासे बौद्धादिकों-से ब्राह्मणधर्म बचानेके अर्थ रच रखे हों और पुराणोंके नामसे उन्हें प्रसिद्ध किया हो, असगत नहीं है। तथापि वैदिक धर्मके प्राय अनुकूल होनेके कारण ये पुराणग्रन्थ हिन्दुओंमें प्रामाणिक

ही गिने जाते हैं। यद्यपि आधुनिक पुराणोंमेंसे कई व्यास वा पराशरके बनाए न भी सिद्ध हो सकते हों तथापि उन्ही ऋषियों सरीखे विद्वानों और पण्डितोंके बनाए ये ग्रन्थ अवश्य होंगे और उतने अधिक अर्वाचीन भी न होंगे जितना कि आजकलके युरोपियन कल्पना करते हैं। प्राचीन भारतवर्षका इतिहास लिखनेमें जितनी सहायता इन पुराणोंसे मिलती है उतनी किसी और ग्रन्थसे नहीं मिलती। पुराणोंके ऐतिहासिक विषय विश्वास योग्य भी हैं जिसका यही प्रमाण है कि मौर्यों तथा उनके उत्तराधिकारी क्षत्रिय राज्यवशोंकी जैसी वंशावली पुराणोंमें पाई गई प्राय ठीक वही शिलालेख इत्यादि प्रमाणान्तरोंसे सिद्ध हुई है। पुराणोंमें श्रीमद्भागवत सबसे अधिक उत्कृष्ट और प्रचलित हैं। इसके बारहवें स्कन्धमें जहा कलियुगके भावी राजाओं और राज्योंका वर्णन किया है वहा पर गुप्तवंशके राजाओंके राज्य वर्णनके पूर्व तकका उल्लेख मिलता है। युरोपियन लोग श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंका रचनाकाल गुप्तों हीके समयमें मानते हैं। अर्थात् यह कि विक्रमकी चौथी वा पाचवी शताब्दीमें ये ग्रन्थ बने। हिन्दू लोग इन कल्पनाओंको स्वीकार नहीं करते। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रीमद्भागवत, विष्णु, मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्ड पुराण विशेष ध्यानसे देखने योग्य हैं।

(६) दर्शन

दूसरा उपाङ्ग न्यायशास्त्र है। जिस गौतम ऋषिने न्यायसूत्र लिखे हैं उनके समयका ठीक पता नहीं चलता। गौतमने प्रमाण प्रमेय आदि सोलह पदार्थोंका निरूपण किया है और सिद्ध किया है कि इन्हींको यथोचित रीतिसे जान लेनेसे तर्कशास्त्रमें व्युत्पत्ति होती है और इन्हीं सोलह पदार्थोंका सम्यक् ज्ञान मोक्षप्रद है। गौतमके बनाए तर्कशास्त्रके नियम आजतक विचारशील विद्वानोंमें प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं और परस्पर

वाद विवादके समय लोग सदा इनका सहारा लेते हैं। गौतमके मतमें सृष्टि परमाणुओंसे बनी है, ईश्वर जगत्का निमित्त कारण है और दुःखोंका जडसे मिट जाना ही मोक्ष है। वैशेषिक शास्त्र भी इसी न्यायके अन्तर्गत माना गया है। इसके प्रवर्त्तक कणाद मुनि हैं। इनका भी यही मत है कि संसारके पदार्थ परमाणुओंसे बने हैं और ईश्वर जगत्का निमित्त कारण है। इनके मतमें भी दुःखका जडसे मिट जाना ही मोक्ष है, पर कणादने केवल छः पदार्थों हीको मुख्य माना है जो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय और विशेषके नामसे प्रचलित हैं। "विशेष" वह पदार्थ है जो प्रत्येक परमाणुओंमें परस्परके भेदका परिचायक है। इसी कारणसे कणादके शास्त्रका नाम वैशेषिक रखा गया है। आत्माके विषयमें गौतम और कणादका मत तथा सिद्धान्त बिलकुल एकही सा है। गौतमके समान कणादके भी समयका ठीक पता नहीं है। कणादका नामान्तर पुराणोंमें 'उलूक' लिखा मिलता है जिससे स्पष्ट अनुमित होता है कि कणाद भी गौतमकी नाईं कोई परम प्राचीन ऋषि हैं। गौतमका नामान्तर "अक्षपाद" भी है।

गौतम प्रणीत न्यायसूत्रपर वात्स्यायनका और कणादके वैशेषिकपर प्रशस्तपादका भाष्य है पर इन दोनों भाष्योंके रचे जानेका समय भी नहीं विदित होता। इतना तो अवश्य है कि ये ग्रन्थ भी बहुत प्राचीन* हैं। इनके पश्चात् भी न्यायशास्त्रपर ग्रन्थ लिखनेवाले अनेक विद्वान हुए जिनमेंसे वाचस्पति मिश्र आठवीं शताब्दीमें, उदयनाचार्य बारहवीं शताब्दीमें, रघुनाथ शिरोमणि, पक्षधर-मिश्र चौदहवी शताब्दीमें, जगदीश, विश्वनाथ तथा शंकर मिश्र सोलहवीं शताब्दीमें परम प्रसिद्ध तार्किक हो गये हैं।

*बहुतसे विद्वानोंका मत है कि वात्स्यायन भाष्यके निर्माता प्रसिद्ध चाणक्य हैं। और प्रशस्तपाद भाष्यके रचयिता गौतम मुनि हैं।

बगाल प्रान्तके नदिया नाम नगरमें अवतक न्यायशास्त्रके पठन-पाठनका क्रम प्राचीन पद्धतिपर चला आ रहा है।

तीसरा उपाङ्ग मीमासा है। मीमासाका अर्थ है—निर्णय। मीमासाशास्त्रके भी दो भाग हैं। एक पूर्व मीमासा और दूसरा उत्तर मीमासा वा वेदान्तशास्त्र। पूर्व मीमासाशास्त्रमें वेदोंमें विहित यज्ञादिकर्मों के बारेमें तर्कवितर्क पूर्वक धर्म वा कर्त्तव्य-कर्मों की व्याख्या की गयी है। पूर्व मीमासाशास्त्रके कर्त्ता महामुनि जैमिनि हैं जो व्यासजीके समकालीन और उनके शिष्य थे। जैमिनिके मीमासासूत्रोंपर शबर स्वामीने भाष्य लिखा है। यह शबर स्वामी कब और कहा हुए इसका कुछ ठीक पता नहीं लगता। विक्रमकी पाचवीं और छठी शताब्दीमें पूर्व मीमासाके विद्वान् दो प्राचीन आचार्य कुमारिल और प्रभाकर ऐसे हो गए हैं जिन्होंने बहुद विवाद करके बौद्धमतका प्रबल खडन किया है।

महाराज कृष्णद्वैपायन व्यासजीने जो कुरुक्षेत्रके युद्धके समय ससारमें विद्यमान थे वेदान्त सूत्रोंको लिखकर वेदों तथा उपनिषदोंमें प्रतिपादित आत्मा वा ब्रह्मके ज्ञानसे मोक्ष होता है, इसका निरूपण किया है। वेदान्तसूत्रोंपर शकराचार्य (आठवीं शताब्दी), रामानुज (बारहवीं शताब्दी), मध्व (तेरहवीं शताब्दी), वल्लभ (सोलहवीं शताब्दी), विज्ञानभिक्षु निम्बार्काचार्य आदि अनेक विद्वानोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार भाष्य लिखे हैं। इनमेंसे भगवत्पाद शंकराचार्यकृत भाष्य शारीरिक मीमासाके नामसे सविशेष प्रसिद्ध और प्रामाणिक है। जब भारतमें बौद्धमत बहुत बढ गया था तब शकराचार्यहीने वाद विवादके द्वारा बौद्ध सिद्धान्तोंका खण्डन करके उसका बल घटाया। शकराचार्यने वेदान्तसूत्रोंके भाष्योंमें विचारशक्तिकी पराकाष्ठा दिखलायी है। युरोपीय विद्वानोंका भी मत है कि आजतक किसी देशके किसी विद्वानने शकराचार्यकी युक्तिसे बढकर युक्ति किसी बातके सिद्ध करनेमें प्रयोग नहीं की।

चौथा उपाङ्ग धर्मशास्त्र है। इसीमें कपिलमुनि विरचित सांख्य, पतञ्जलिमुनि लिखित योग, धर्मप्रधान इतिहास ग्रन्थ और स्मृति आदिक हैं। सांख्य और योगकी गणना षड्दर्शनोंमें भी की जाती है। कपिलने सांख्यशास्त्रको संसारमें प्रचलित किया। कपिलमुनि किस समयमें हुए इसका ठीक निर्णय नहीं हो सकता। सांख्य शब्द संख्या या गिनतीसे बना है। सांसारिक तत्त्वोंकी यथोचित रीतिसे गिनती करनेके कारण कपिलने वेद और युक्ति दोनोंका प्रामाण्य ग्रहण किया है। कपिलमुनिके ग्रन्थका नाम सांख्यशास्त्र रखा गया है। उनका सिद्धान्त द्वैतमत है और वह संसारको सत्य मानते हैं। सांख्यमतमें प्रकृति और पुरुष दो पदार्थों की विवेचना की गयी है जिनमेंसे पुरुष केवल भोक्ता है और प्रकृति परिणामिनी है अर्थात् रूपान्तरको प्राप्त होती है। पुरुष अनेक हैं। पुरुष अपने कर्मानुसार उच्च या नीच दशामें जन्म पाता है। पुरुषका शरीरके बन्धनसे छूटना ही मोक्ष है। तीनों प्रकारके दुःखोंका अभाव ही मोक्ष है।

योगशास्त्रके रचयिता भगवान् पतञ्जलि कई लोगोंके मतमें वही हैं जिन्होंने व्याकरणका महाभाष्य रचा और जो शुङ्गवंशी राजा पुष्यमित्रके राज्यकालमें विद्यमान थे। तत्वोंकी संख्या तो योगशास्त्रमें पतञ्जलिने भी कपिल मुनिके मतानुसार मानी है पर सांख्य और योगमें यह भेद है कि योगमें सबसे अधिक सामर्थ्यशाली पुरुष विशेषको ईश्वर सिद्ध किया है। ईश्वरकी सत्ताका अपलाप तो कपिल भी नहीं करते हैं पर उसकी सिद्धिपर युक्तियोंके द्वारा उन्होंने बल नहीं दिया है। योगशास्त्रमें युक्तिसे ईश्वरकी सिद्धि मानी गयी है। आत्मा या पुरुष अविनाशी है और ईश्वरके निरन्तर ध्यानसे वह शरीरके बन्धनसे छूटकर मोक्ष पाता है। योगका अर्थ "चित्तवृत्तिको सांसारिक पदार्थोंकी ओरसे रोककर ईश्वरमें लगाना" है। योगशास्त्रमें प्रक्रियाएं बतलायी गई हैं जिनसे मनुष्य अपने चित्तको

रके विक्षेपक पदार्थों से हटाकर ईश्वरमें लगा सके। पतञ्जलिके योगसूत्रोंपर व्यास नामक किसी विद्वान्ने भाष्य रचा है। योग सूत्रोंपर भोजराजकी वृत्ति भी है।

[७] इतिहास

धर्मप्रधान इतिहास ग्रन्थ रामायण और महाभारत हैं जिनमेंसे रामायण अधिक प्राचीन है। रामायणको महर्षि वाल्मीकिने रचा। वाल्मीकि मुनि अयोध्याके महाराज रामचन्द्रके समकालीन हैं। प्रसिद्ध तो यही है और रामायणमें यह लिखा भी है कि रामचन्द्रके राज्यकालहीमें वाल्मीकिने रामायण रचकर उनके पुत्र कुश और लवको कण्ठस्थ करायी और वे बालक बड़े मधुर स्वरसे इसका गान किया करते। जब रामने अश्वमेध यज्ञ रचा था तो वाल्मीकिजीकी आज्ञा पाकर कुश और लवने यज्ञमें उपस्थित हो मधुर ध्वनिसे गा गाकर रामायण सुनायी थी जिससे रामचन्द्र और उनकी राजसभाके सभी सहृदय मोहित हो गये थे। उक्त इतिहाससे सिद्ध होता है कि रामायण कुछ अंश अवश्य ही रामचन्द्रहीके समयमें रचा गया था चाहे समस्त ग्रन्थ उसी समयमें न बना हो। सूर्यवंशी राजाओंकी नामावली जो रामायणमें मिलती है वह अन्य पुराणोंमें लिखित वंशपरम्पराके साथ मेल नहीं खाती। इसका कारण यही जान पड़ता है कि रामायणमें उन्हीं प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राचीन राजाओंके नाम वंशावलीमें रख दिये गये हैं जो उस समय लोगोंको स्मरण थे। नहुष और ययाति जो पुराणोंमें चन्द्रवंशी राजा प्रसिद्ध हैं रामायणमें सूर्यवंशी मनु तथा इक्ष्वाकुकी सन्तान और अयोध्याधिपति रामचन्द्रके पूर्वजोंमें गिने गये हैं जो नितान्त असम्भव है। ऐसी अवस्थामें पुराणोंकी वंशपरम्परा अधिक शुद्ध और प्रामाणिक जंचती है। रामायणकी वंशपरम्परा स्मृतिमूलक होनेसे अशुद्ध और गड़बड़ समझ पड़ती है। सूर्यवंशकी सन्तान-

परम्परामें अग्निवर्णके पुत्र प्रसुश्रुकतकका नाम मिलता है जिससे यह अनुमान होता है कि इस वंशावलीके लिखे जानेके समय वह राजाओंके बीचमें गिना जा चुका है। वास्तवमें प्रसुश्रुक रामचन्द्रका पूर्वज नहीं किन्तु उनसे प्राय २५ पीढी पीछे हुआ है। यह राजा महाभारतके समयसे पहलेका है अतएव रामायण ग्रन्थ सूर्यवंशी राजा प्रसुश्रुकके समयमें अर्थात् कौरवों और पाण्डवोंके युद्धसे कुछ पहले पूर्ण होकर उस अवस्थाको प्राप्त हुआ होगा जिसमें अब पाया जाता है।

रामायण इतिहास ग्रंथ है और साथही काव्य भी। संस्कृत भाषामें रामायणके पूर्व और कोई काव्य न लिखा गया होगा इससे लोगोंने इसका नाम "आदिकाव्य" रखा है। अनुष्टुप, उपजाति, वसन्ततिलका आदि लौकिक छन्दोंमें सबसे पहली रचना होने और ऋतु देशविशेष आदिका रोचक वर्णन रहनेके कारण लोग इसे काव्य कहते हैं। प्राचीन कालके राजा और प्रजाका वर्णन भी इसमें पाया जाता है अतएव लोग इसे इतिहास भी कहते हैं। इतिहासके सम्बन्धमें यह ग्रन्थ प्राय पुराणों हीकासा है। यदि पुराणोंमें अनेक कथाए रूपक या उपाख्यानकी रीतिसे इसलिये लिखी गयी हैं कि लोगोंको विशेष रोचक और उपदेशप्रद हों तो रामायणमें भी ऐसी कथाए मिलेंगी जो रूपक या उपाख्यानकी रीतिसे लिखी गयी हैं। केवल इतिहास नाम रखनेसे रामायणका प्रामाण्य अधिक मानना और केवल पुराण नाम पडनेसे पुराणोंकी प्रामाणिकतामें सन्देह करना भूल है। दोनों हीमें रूपक, अत्युक्ति, और उपाख्यान आदि भागोंको सावधानतापूर्वक अलग करनेसे सच्ची ऐतिहासिक घटनाए विदित हो सकती हैं।

रामायणमें अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्रका पूरा पूरा इतिहास विस्तारपूर्वक लिखा गया है और सूर्यवंशके इतिहासमें ऊपर जो रामचन्द्रका वर्णन लिखा गया है सो इसी

रामायणके सहारेपर लिखा गया है। रामायणमें सात काण्ड और चौबीस सहस्र श्लोक हैं। सातों काण्डोंके नाम क्रमसे बाल वा आदि, अयोध्या, आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का, वा युद्ध और उत्तर काण्ड हैं। बालकाण्डमें राजा दशरथके यहां राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न, इन चारों भाइयोंके जन्म और बालचरित्रका संक्षेप वर्णन, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये राम और लक्ष्मणका जाना, मार्गमें ताडकाका वध और यज्ञकी रक्षा, जनकके यज्ञमें उपस्थित होनेके लिये प्रस्थान, जनकपुरमें राजकुमारोंका पहुँचना, शिवधनुषका रामद्वारा भङ्ग होना और चारों भाइयोंके साथ मिथिलाकी चारों राजकुमारियोंका पाणिग्रहण वर्णित है। बीचमें उपाख्यान रूपसे ऋष्यश्रृङ्ग, त्रिशङ्कु, अम्बरीप, विश्वामित्रके पूर्वजोंका इतिहास, विश्वामित्र और वसिष्ठका परस्पर विरोध और कलह तथा विश्वामित्रकी ब्राह्मणत्व प्राप्ति, सागरके पुत्रोंका कपिलद्वारा भस्म होना और भागीरथकी तपस्यासे गङ्गावतरण आदि वर्णित है।

अयोध्याकाण्डमें राजा दशरथका रामको युवराज बनानेका उद्योग, कैकयीका बीचमें विघ्न डालना, रामका वनवास, लक्ष्मण और सीताका साथ जाना, राजा दशरथका प्राणत्याग, भरतका आगमन, राजसिंहासनका अस्वीकार, रामको लौटानेके लिये चित्रकूट पर्वतपर गमन, रामका पिताकी ... रहना और भरतका लौटकर अयोध्याके निकट ... निवास वर्णित है।

बीचमें अन्ध मुनिके पु... ...न ... का अति संक्षिप्त और अनूठा ... ...में है

आरण्यकाण्डमें ... भङ्गका प्राणत्याग, सुत... भेंट, जटायुसे मिलाप, ... वास, शूर्पणखाके नाक ...

चौदह सहस्र राक्षसोंका वध, रावणका मारीचके साथ पञ्चवटीमें गमन, मारीचका राम लक्ष्मणको धोखा देना, रावणद्वारा सीता-हरण, जटायुवध, सीताके विरहमें रामका विलाप, और भी अधिक दक्षिणकी ओर प्रस्थान, कबन्धकी भुजा काटना, पम्पासरके निकट पहुँचे ऋष्यमूक गिरिपर जानेका विचार आदि वर्णित है।

किष्किन्धाकाण्डमें वसन्त ऋतुका वर्णन, सीताके वियोगमें आतुर हो रामका विलाप, रामसे हनुमानजीकी भेंट, राम और सुग्रीवकी परस्पर मित्रता, वालिवध, सीताको खोजनेके अर्थ वानरोंका सब दिशाओंमें गमन, दक्षिण दिशाकी ओर जानेवाले वानरोंसे पर्वतकी गुफामें एक तपस्वीसे भेंट, वानरोंसे जटायुके भाई सम्पातिका साक्षात्कार, सीताका पता और वानरोंका समुद्रतीरपर पहुँचना वर्णन किया गया है।

बीचमें प्रसगवश वालिद्वारा दुन्दुभि असुरका घात तथा वालि और सुग्रीवके परस्पर वैरकी कथा आदिका वर्णन व्याख्यान रूपसे किया गया है।

सुन्दरकाण्डमें हनुमानजीका आकाशमार्गसे समुद्रपार करना और लङ्कामें प्रवेश,रावणके अंत पुरमें भ्रमण, सोते हुए रावणका दर्शन (इस प्रसङ्गमें रावणके केवल एक मुख और दो भुजाएं लिखी हैं न कि दस सिर और बीस भुजायें), सीता और रावणके परस्पर प्रश्नोत्तर, सीता और हनुमानकी भेंट, हनुमानका रावणके प्रमोदवनको उजाड़ना, अक्षयकुमारका वध, मेघनादद्वारा हनुमानका बन्धन, हनुमानका रावणकी सभामें जाना, रावणका हनुमानके वधकी आज्ञा देना, विभीषणका उसे वर्जना, हनुमानका लंकापुरीको जलाना, सीताकी निशानी रत्न लेकर रामके पास लौटना, मधुवनभङ्ग और हनुमानका लौटकर रामको सीताके समाचार सुनाना आदि वर्णित है।

लङ्काकाण्डमें वानरोंका समुद्रपर सेतु बाधना, विभीषणका

रावणको समझानेमें अपमानित हो रामसे आ मिलना, वानरोंकी सख्या जाननेके अर्थ रावणका गुप्तचरोंको भेजना, रावणका माया रचकर सीताको पीडा पहुँचाना, सरमाका सीताको समाश्वासन, राक्षसों और वानरोंका युद्ध, रावणके अनेक पुत्रों समेत मेघनादका पतन, कुम्भकर्ण वध, रावणके शक्ति प्रहारसे लक्ष्मणकी मूर्च्छा, हनुमानका ओषधि ले आना, लक्ष्मणका पुनरुत्थान, राम रावणका परस्पर घोर युद्ध, रावणवध, सीताकी पुन प्राप्ति, लकाका राज्य विभीषणको देना, अयोध्याको लौटना, मार्गमें भरद्वाज, वाल्मीकि, निषाद आदिसे भेंट, अयोध्यामें पहुँचनेपर राम और भरतकी भेंट, तथा रामका राज्याभिषेक आदि विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

उत्तरकाण्डमें अगस्त्य आदि ऋषियोंका राज्याभिषेकोत्सवमें आगमन, रामसे रावणके जन्म पराक्रम आदिका वर्णन, रामसे विदा मागकर ऋषियों, वानरों और राक्षसोंका प्रस्थान, पुष्पकका कुवेरके यहा गमन, सीतारामका विहार और विलास, रामका सीता परित्याग, सीताका वाल्मीकिके आश्रममें गमन और लव कुशका जन्म, रामका गृध्र और उलूकके झगडेका निपटेरा, कुक्कुर और सन्यासीके झगडेका न्याय, लवणके वधके लिये शत्रुघ्नका जाना, शत्रुघ्नद्वारा लवणका वध, रामका अश्वमेधयज्ञ, यहा लवकुशका आगमन और रामायण पाठ, वाल्मीकिके अनुरोधसे रामका परीक्षानन्तर सीताको पुनर्ग्रहणका विचार, सीताका प्राणत्याग, रामका शोक, कौशल्यादिका प्राणत्याग, रामका अपने भतीजों और पुत्रोंको भिन्न भिन्न देशोंका राज्य समर्पण और लोकान्तर गमन आदि वर्णित है।

बीचमें ययाति, मान्धाता, वृत्र, इला आदिके उपाख्यान भी प्रसङ्गवश वर्णन किये गये हैं।

रामायणमें क्षत्रियोंकी स्वाभाविक वीरता, पिताकी आज्ञाका पालन, भाइयोंका परस्पर प्रेम, स्त्रियोंकी पतिभक्ति इत्यादि

अनेक बातें आदर्शरूपसे दिखलायी गयी हैं। लोग इन्हें पढकर अपना चालचलन सुधार सकते हैं। रामायण पढनेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि भारतवर्षके प्राचीन आर्यलोग कैसे सच्चे; भोले भाले, सादे, शूरवीर, बुद्धिमान, धर्मात्मा, परोपकारी और निश्छल होते थे।

रामायणके अतिरिक्त और भी सस्कृतके कई प्राचीन ग्रन्थोंमें रामकी कथाका पूरा वर्णन मिलता है जिनमेंसे ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत अध्यात्मरामायणमें वाल्मीकि रामायणहीकी तरह सात काण्डोंमें रामके इतिहासका वर्णन है। हा, कहीं कहीं किसी किसी कथामें वाल्मीकिसे और उनसे भेद है। ऐसेही पद्मपुराण पातालखण्डमें रामाश्वमेधकी कथा और रामका इतिहास निरालेही ढङ्गपर लिखा है। पद्मपुराण उत्तरखण्डमें भी विस्तारसे रामचरित्र वर्णित है जिसकी कथाका अधिकाश वाल्मीकि रामायणसे मिलता जुलता है। नृसिंहपुराणमें भी विस्तारसे रामचरित्र वर्णित है। कल्किपुराणमें भी सक्षेपसे रामका इतिहास वर्णन किया गया है। महाभारतके वनपर्वमें भी विस्तारपूर्वक कुल रामायणका इतिहास लिखा गया है।

आनन्द रामायण और अद्भुत रामायण नामके दो और रामकथा विषयक ग्रन्थ हैं पर इन दोनोंका प्रचार वाल्मीकि रामायण सा नहीं है। कुछ लोग आनन्द रामायणको वाल्मीकि ऋषिका विरचित ही बतलाते हैं। परन्तु आनन्द रामायण और अद्भुत रामायण भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी खोजमें विशेष उपयोगी नही समझ पडते।

दूसरा धर्मप्रधान ऐतिहासिक ग्रन्थ महाभारत है जिसको कि कृष्णद्वैपायन व्यासने बनाया है, व्यासजी महाभारत युद्धके समकालीन वही वेदव्यास हैं जिन्होंने कि वेदोंका संकलन किया और वेदान्तसूत्र रचे। महाभारतमें हस्तिनापुरके चन्द्रवशी राज कुमारों अर्थात् कौरवों और पाडवोंका राज्यके लिये परस्परका

कलह और अन्तमें घोर सग्राम वर्णित है। महाभारतका भी इति-हास पहले लिखा जा चुका है। महाभारत भी रामायणकी नाईं एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें आर्योंकी अर्थात् प्राचीन हिन्दुओंकी सच्चरित्रता पूर्ण रीतिसे दिखलायी गयी है। स्थान स्थानपर पुराने इतिहासों और उपाख्यानोंके भर देनेसे पुस्तकका आकार इतना अधिक बढ गया है कि उसकी श्लोकसख्या एक लाखसे ऊपर पहुँच गयी है। महाभारतके वर्णित इतिहासमें निषद देशके राजा वीरसेनके पुत्र नल और उनकी रानी विदर्भ देशके राजा भीमकी कन्या और दमकी बहिन दमयन्तीका चरित है। इसी ग्रथमें रामायणको समग्र कथाका भी पूरा पूरा उल्लेख है। युधिष्ठिरकी सत्यता, भीमसेन, अर्जुन, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदिका पराक्रम, भीष्मका कठोर व्रतपालन और धर्ममें अचल निष्ठा आदि बातें हिन्दूधर्मके सत्कार्योंके ऐसे सच्चे आदर्श हैं कि आज अनेक वर्ष बीतनेपर इस पतितावस्थामें भी उनके कारण हिन्दू जातिका सिर ऊँचा है। रामायण और महाभारत इन दोनों ग्रथोंसे यह शिक्षा मिलती है कि रावण और दुर्योधन आदिकी नाईं कुमार्गपर चलना कदापि उचित नहीं है किन्तु राम और युधिष्ठिर आदिके समान सच्चरित्र मनुष्य ही ससारमें प्रसन्न रहता और प्रशसाका पात्र बनता है। ऐसे चरित्रसे ही मनु-ष्यका परलोक सुधरता है। यद्यपि राम मर्यादा पुरुषोत्तम माने जाते हैं तथापि उनका छिपकर बालिको मारना मित्रका पक्षपात सिद्ध करता है, निरपराध सीताका परित्याग अपनी कीर्तिका लोभ द्योतित करता है। युधिष्ठिरका चरित्र सब प्रकार निर्दोष होते हुए भी द्यूतक्रीडा और द्रोणको विश्वास दिलानेके निमित्त मिथ्याभाषण मनुष्यके अवश्यम्भावी स्वार्थमय जीवनकी त्रुटिको दिखलाता है।

महाभारतमें अठारह पर्व हैं और अन्तमें हरिवंशपर्व नामक

५ ... भी जोड दिया है जिसे लोग प्राय पुराणके

नामसे पुकारा करते हैं। आदिपर्वके प्रारम्भमें महाराज परीक्षितका इतिहास वर्णन करके तक्षकके द्वारा उनके काटे जाने और मृत्युकी कथा लिखी है। तदनन्तर जनमेजयके सर्पसत्रका इतिहास है। इसी प्रकरणमें वेदव्यासके शिष्य वैशम्पायन मुनिने राजा जनमेजयको पाण्डवों और कौरवोंका समग्र इतिहास सुनाया है। इस अवसरपर मुनिने चन्द्रवंशी राजाओंकी तालिका पुरूरवासे प्रारम्भ करके जनमेजयके पुत्रों और पौत्रोंतक कह डाली है, और इसके द्वारा पढ़नेहारेको पुरुवंशी राजाओंमेंसे प्रत्येकका नाम उसकी रानीके नाम सहित विदित हो जाता है। वंशपरम्पराके वर्णनमें ययाति, दुष्यन्त, शान्तनु और उपरिचरवसुका भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। फिर पाण्डवों और कौरवोंकी उत्पत्ति, चचेरे भाइयोंका परस्पर वैर, पाण्डवोंका हस्तिनापुर छोड़के निकल जाना, जतुगृहदाह, द्रौपदी स्वयंवर, इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंकी राज्यप्राप्ति, अर्जुनकृत सुभद्राहरण, अभिमन्युका जन्म, खाण्डव वनदहन इत्यादि कथायें क्रमसे आदिपर्वमें कही गयी हैं।

सभापर्वमें खाण्डवदाहसे रक्षित मय नाम दानवद्वारा युधिष्ठिरके लिये सभानिर्माण, युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ, शिशुपालवध, पाण्डवोंसे कौरवोंकी ईर्ष्या, शकुनिकी सहायतासे युधिष्ठिरके साथ दुर्योधनादिको द्यूतक्रीडा आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन आया है।

वनपर्वमें पाण्डवोंका बारह वर्ष लों वनवास, अनेक विपत्तियां झेलना, तीर्थयात्रा, अर्जुनका स्वर्गलोक जाकर दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति, नलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान और रामोपाख्यान आदिका भी प्रसंगवश वर्णन है।

विराटपर्वमें पाण्डवोंका मत्स्य देशमें तेरहवें वर्षका गुप्तवास, कीचकवध, अर्जुनकृत कौरव सेनाका पराजय आदि वर्णित है। इसीकी समाप्तिमें मत्स्यराज विराटकी कन्याका अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके साथ विवाहका वर्णन भी है जिस अवसरपर प्राय

कलह और अन्तमें घोर सग्राम वर्णित है। महाभारतका भी इतिहास पहले लिखा जा चुका है। महाभारत भी रामायणकी नाईं एक ऐतिहासिक काव्य है जिसमें आर्योंकी अर्थात् प्राचीन हिन्दुओंकी सच्चरित्रता पूर्ण रीतिसे दिखलायी गयी है। स्थान स्थानपर पुराने इतिहासों और उपाख्यानोंके भर देनेसे पुस्तकका आकार इतना अधिक बढ़ गया है कि उसकी श्लोकसख्या एक लाखसे ऊपर पहुँच गयी है। महाभारतके वर्णित इतिहासमें निषद देशके राजा वीरसेनके पुत्र नल और उनकी रानी विदर्भ देशके राजा भीमकी कन्या और दमकी बहिन दमयन्तीका चरित है। इसी ग्रथमें रामायणकी समग्र कथाका भी पूरा पूरा उल्लेख है। युधिष्ठिरकी सत्यता, भीमसेन, अर्जुन, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदिका पराक्रम, भीष्मका कठोर व्रतपालन और धर्ममें अचल निष्ठा आदि बातें हिन्दूधर्मके सत्कार्योंके ऐसे सच्चे आदर्श हैं कि आज अनेक वर्ष बीतनेपर इस पतितावस्थामें भी उनके कारण हिन्दू जातिका सिर ऊँचा है। रामायण और महाभारत इन दोनो ग्रथोंसे यह शिक्षा मिलती है कि रावण और दुर्योधन आदिकी नाईं कुमार्गपर चलना कदापि उचित नहीं है किन्तु राम और युधिष्ठिर आदिके समान सच्चरित्र मनुष्य ही ससारमें प्रसन्न रहता और प्रशसाका पात्र बनता है। ऐसे चरित्रसे ही मनुष्यका परलोक सुधरता है। यद्यपि राम मर्यादा पुरुषोत्तम माने जाते हैं तथापि उनका छिपकर बालिको मारना मित्रका पक्षपात सिद्ध करता है, निरपराध सीताका परित्याग अपनी कीर्तिका लोभ द्योतित करता है। युधिष्ठिरका चरित्र सब प्रकार निर्दोष होते हुए भी द्यूतक्रीडा और द्रोणको विश्वास दिलानेके निमित्त मिथ्याभाषण मनुष्यके अवश्यम्भावी स्वार्थमय जीवनकी त्रुटिको दिखलाता है।

महाभारतमें अठारह पर्व हैं और अन्तमें हरिवशपर्व नामक ...भी जोड दिया है जिसे लोग प्राय पुराणके

पाण्डवोंके सभी नातेदार क्षत्रिय लोग मत्स्य देशमें आ उपस्थित हुए थे।

उद्योगपर्वमें श्रीकृष्णका पाण्डवोंकी ओरसे दूत बनकर कौरवोंकी सभामें जाना और परस्पर मेलके लिये चेष्टा करना, दुर्योधनका हठ और दोनों ओर युद्धके लिये सेना इकट्ठा करना आदि उद्योग वर्णित हैं।

भीष्मपर्वमें दुर्योधनका भीष्मको कौरव सेनाका सेनापति बनाना, युद्धारम्भ, अर्जुनका युद्धस्थलमें विषाद, श्रीकृष्णका उन्हें समझाना, कौरवों और पाण्डवोंका दस दिनतक परस्पर घोर युद्ध और अन्तमें भीष्मका पतन इत्यादि वर्णित है।

द्रोणपर्वमें द्रोणाचार्यका कौरव-सेनाका सेनापति बनाया जाना, पाच दिनका घोर युद्ध, अनेक राजाओं और अर्जुनके पुत्र अभिमन्यु आदिका वध, अश्वत्थामाकी मृत्युका झूठा समाचार सुन द्रोणका अस्त्रत्याग और धृष्टद्युम्नकृत द्रोणका वध आदि वर्णन किया गया है।

कर्णपर्वमें कर्णका सेनापति बनाना, शल्यका उसका रथ हाकना, दो दिनका युद्ध, भीमसेनकृत अनेक कौरवोंका वध, अर्जुनकृत कर्णका वध, इत्यादि वर्णित है।

शल्यपर्वमें मद्रराज शल्यका सेनापति बनना, तथा युधिष्ठिरके हाथसे उनका मारा जाना वर्णन किया गया है।

गदापर्वमें भीमसेनका तालमें छिपे दुर्योधनको ललकारना, दोनों वीरोंका परस्पर गदायुद्ध और जाघ टूट जानेपर दुर्योधनका पतन इत्यादि वर्णित है।

सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामा, कृप और कृतवर्माका रात्रिमें पाण्डवशिविरमें प्रवेश और द्रौपदीके पाचों पुत्रोंके सोतेमें मारे जानेकी चर्चा है।

स्त्रीपर्वमें रणभूमिमें पतित क्षत्रिय योद्धाओंको देखकर

गान्धारी आदि रानियोंका अनेक प्रकारका विलाप और मृत वीरोंकी प्रेतक्रिया आदिका वर्णन है।

शान्ति और अनुशासन पर्वोंमें शरशय्यापर पड़े भीष्मपितामहका युधिष्ठिरको अनेक प्रकारके उपदेश देना विस्तारपूर्वक वर्णित है। अनुशासनपर्वके अन्तमें भीष्मका सूर्यके उत्तरायण होनेपर प्राणत्याग और युधिष्ठिरद्वारा उनकी अन्त्येष्टि क्रियाका वर्णन है।

अश्वमेधपर्वमें महाराज युधिष्ठिरका हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर बैठकर अपने छोटे भाइयों तथा श्रीकृष्णकी सहायतासे अश्वमेध यज्ञ करनेका इतिहास लिखा गया है।

आश्रमवासिकपर्वमें धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और विदुरका तपस्यार्थ वनमें निवास और दावाग्निमें जल मरनेका वर्णन है।

मौसलपर्वमें भोज, वृष्णि, अन्धक, कुकुर आदि द्वारकाके यदुवंशियोंका मद्यपान करके परस्पर कलह और अन्तमें युद्धद्वारा उन सबका विनाश, बलराम तथा श्रीकृष्णका परलोकगमन वर्णन किया गया है।

महाप्रास्थानिकपर्वमें युधिष्ठिरका हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको बिठा छोटे भाइयों और द्रौपदी समेत उत्तर दिशाको ओर प्रस्थान वर्णित है।

स्वर्गारोहणपर्वमें पाण्डवोंके सांसारिक जीवनकी समाप्तिका वर्णन है।

हरिवंशमें सूर्य और चन्द्रवंशके राजाओंकी नामावली, भगवान् कृष्णचन्द्रजीके चरित्रोंका वर्णन है, तथा और भी अनेक इतिहास लिखे गये हैं।

भीष्मपर्वमें जब युद्धस्थलमें अपने भाई बन्धुओंको प्राणत्यागार्थ उद्यत देख अर्जुनका चित्त कुछ खिन्न हुआ है और वैराग्यके कारण उसने युद्धसे मुख मोड़ना चाहा है तो उनके सारथि श्रीकृष्णने उन्हें अनेक प्रकारसे स्वकर्त्तव्य-पालनका उपदेश दिया

है। ग्रंथका यह भाग भी श्रीमद्भगवद्गीताके नामसे प्रसिद्ध है। इसपर शंकराचार्य, रामानुज, नीलकण्ठ, मधुसूदन सरस्वती आनन्दगिरि आदि अनेक आचार्योंने टीकाएं की हैं जो जिज्ञासुके लिये परमोपयोगी हैं।

[८] स्मृतियां

धर्मशास्त्रका वह भाग जो स्मृतिशास्त्रके नामसे संसारमें विख्यात है प्राय अपने अपने रचयिताहीके नामोंसे प्रचलित है। इनमेंसे एक 'मानवधर्मशास्त्र' वा 'मनुस्मृति' * सबसे अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक है। मनुस्मृतिके निर्माणकालका ठीक ठीक पता लगना तो दुर्घट है। मनुके विषयमें लोगोंका मतभेद है। कदाचित् यही मनु सूर्यवंशके प्रथम राजा हों जिन्होंने अयोध्यापुरीको बसाया था। युरोपीय विद्वानोंकी कल्पना है कि मनुस्मृति किसी एक मनुष्यका बनाया ग्रन्थ नहीं किन्तु अनेक प्राचीन धर्मके नियमोंका संग्रहमात्र है और यह संग्रह भी लगभग विक्रम संवत् से ४४३ वर्ष पूर्वका किया हुआ है। मनुस्मृतिकी कई संस्कृत टीकाएं हैं जिनमेंसे पण्डितवर कुल्लूकभट्टकी रचित टीका सबसे पिछली और प्रामाणिक मानी जाती है। ये कुल्लूकभट्ट सम्भवत चौदहवी शताब्दीके जान पडते हैं।

मानवधर्मशास्त्रको छोड 'याज्ञवल्क्यस्मृति' नाम एक दूसरा ग्रन्थ भी हिन्दुओंके बीच प्रचलित है पर लोग इसे मनुस्मृति सा नहीं मानते। याज्ञवल्क्यस्मृतिपर चालुक्य राजा विक्रमादित्यके सभासद विज्ञानेश्वरने मिताक्षरा नाम टीका लिखी है। हिन्दू धर्म्मशास्त्रोंके बीच यह टीका बडी प्रामाणिक है।

---

* वर्तमान मनुस्मृति भृगुकी संकलित की हुई है। यह मनुस्मृतिमें ही लिखा है "... भृगुप्रोक्तां पठन् द्विज।" प्राचीन मानवधर्मशास्त्र सूत्ररूपमें था जो अब अप्राप्य है।

उक्त दोनों स्मृतियोंके अतिरिक्त और भी कई प्रसिद्ध स्मृतिया हैं जिनमेंसे प्राय निम्नलिखितका थोडा बहुत प्रचार देखनेमें आता है। विष्णु, यम, आङ्गिरस, वसिष्ठ, दक्ष, सवर्त्त, शातातप, पराशर, गौतम, शख, लिखित, हारीत, आपस्तम्ब, उशनस्, व्यास, देवल, कात्यायन, बृहस्पति, नारद और पैठीनसि इत्यादि।

उक्त सभी ग्रथोंकी गिनती हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें की जाती है।

—हरिमगल मिश्र

३ संस्कृत काव्यग्रन्थ

[१] भास और कालिदास

सस्कृत काव्य प्राय दो भागोंमें बाटे गये हैं जिनमेंसे एकको श्रव्य और दूसरेको दृश्य कहते हैं। दृश्यकाव्य ही नाटक है जिसके अनेक प्रकारके भेद भरतमुनि विरचित नाट्यशास्त्रमें और साहित्यदर्पणके छठे परिच्छेदमें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। श्रव्यकाव्य तीन प्रकारके होते हैं केवल पद्यमय जैसे रघुवश, मेघदूत आदि, केवल गद्यमय जैसे कादम्बरी, दशकुमार चरित इत्यादि, गद्यपद्यमय काव्य जिन्हे चम्पू कहते हैं, जैसे नलचम्पू रामायण चम्पू इत्यादि। केवल पद्यमय काव्य भी तीन प्रकारके होते हैं यथा महाकाव्य जैसे नैषध चरित, रघुवश आदि, खण्डकाव्य जैसे अमरुशतक, आर्यासप्तशती आदि। गद्यमय काव्य भी दो प्रकारके होते हैं। एक 'कथा' जिसमें किसी कल्पित राजा आदिका चरित्र वर्णित हो यथा कादम्बरी आदि और दूसरे "आख्यायिका" जिसमें किसी ऐतिहासिक व्यक्तिका इतिहास लिखा गया हो जैसे हर्षचरित इत्यादि।

सस्कृत भाषामें उक्त दृश्य और श्रव्य काव्योंके अनेक ग्रन्थ प्राचीन कवियोंने लिखे हैं। भारतवर्षमें संस्कृत काव्योंका लिखा जाना कबसे प्रारम्भ हुआ इसका निर्णय करना प्राय

हो गया है क्योंकि प्राचीन कालके बहुतसे ग्रंथ अब लुप्त हो गये हैं। जिन कवियोंके विरचित ग्रंथ अब पाये भी जाते हैं उनमेंसे भी कई एकके समय आदिका ठीक पता नहीं लग सका है। ऐसी दशामें संस्कृत काव्योंका यथार्थ इतिहास लिखना कितना कठिन है सो लोग समझ सकते हैं। युरोपीय विद्वानोंने बहुत परिश्रम द्वारा जांच खोज करके जो कुछ पता पाया अथवा जहांपर ठीक पता न चल सका वहांपर अपनी कल्पनाकी सहायतासे संस्कृत साहित्यका इतिहास लिखा है। विशेषत उसीके आधार पर संस्कृतके प्राचीन काव्यों और कवियोंके विषयमें कुछ लिखा जाता है।

ऊपर जितने प्रकारके काव्य कहे गये हैं किसी किसी कविके तो उनमेंसे अनेक प्रकारके काव्य पाये जाते हैं और किसी किसी कविके केवल एकही प्रकारके काव्य पाये जाते हैं। अतएव काव्यभेदके अनुसार ग्रन्थोंका वर्णन करनेमें सुभीता न होनेसे प्रत्येक कवि और उसके विरचित ग्रन्थोंके विषयमें जो जो बातें विदित हो सकी हैं यहांपर अति संक्षेपमें लिख दी जाती हैं जिसमें कवियों वा उनके विरचित काव्योंको लोग सहज ही ध्यानस्थ कर लेवें।

संस्कृत काव्योंमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंकी रचना रामायण अथवा महाभारत वा और और पुराणोंके उपाख्यानोंका आधार-लेकर की गयी है। इन सब काव्योंमें भाषाके अनेक प्रकारके चमत्कार और वर्णनके उत्कर्ष समझनेवालोंके लिये परमानन्द-दायक हैं। प्राचीन कवियोंमेंसे [illegible] पच, भास, आदि कुछ कवि हो चुके हैं। [illegible] केवल सुन पडता है, उनकी रचनाके [illegible] पाये [illegible] का अभी [illegible] भास कविके [illegible]

* भासके [illegible]
त्रिवेन्द्रम [illegible]

ग्रन्थ पंचरात्र, स्वप्नवासवदत्त, प्रतिज्ञायौगन्धरायण आदि छप गये हैं। इन ग्रन्थोंके देखनेसे भासकी कवित्व शक्तिका पूरा परिचय मिल जाता है। भास कविका समय ठीक ठीक निर्णय करना तो बहुत कठिन है पर इतना कहा जा सकता है कि ये गौतम बुद्धसे पीछे और कालिदाससे पूर्व हुये हैं क्योंकि 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' नाम ग्रन्थोंमें जिस वत्सराज उदयनका उल्लेख भासने किया है वह कौशाम्बीका राजा उदयन गौतम बुद्धका समकालीन है अर्थात् विक्रमसे ४८३ वर्ष पूर्वका व्यक्ति है। कालिदास भी उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्यके समकालीन हैं और इन्हीं विक्रमादित्यका चलाया संवत् भारतवर्षमें अबतक प्रचलित है जो सन् ईस्वीसे सत्तावन वर्ष पूर्व आरम्भ होता है। इस कारण भास कविका समय विक्रमाब्दसे पहले ४८३ वर्ष पूर्वतकके बीचमें अनुमित होता है।

पञ्चरात्रमें भासने महाभारतकी कथाका उल्लेख प्राय विराट-पर्वकी समाप्तिसे निराले ढङ्गपर किया है। द्यूतमें पाण्डवोंको हराकर दुर्योधनादिने उन्हें बारह वर्ष लों वनवास करने और तेरहवें वर्ष गुप्तवासके अर्थ भेज दिया है। पाण्डवोंका वनवास-काल तो व्यतीत हो गया है पर तेरहवें वर्षमें अभी वे मत्स्यदेशके राजा विराटके यहां गुप्तरीतिसे निवास कर रहे हैं। दुर्योधनने इस बीचमें एक बड़ा यज्ञ ठाना है जिसके अन्तमें उसने अपने गुरु द्रोणाचार्यसे कहा है कि आप गुरुदक्षिणा मांगिए। द्रोणने कहा

प्रकाशित हो चुके हैं उनमेंसे तीन नाटकोंके अतिरिक्त ये और हैं—(१) अविमारकम् (२) बालचरितम् (३) अभिषेक नाटकम् (४) चारुदत्तम् (५) प्रतिमानाटकम् (६) मध्यम व्यायोग (७) दूतवाक्य (८) दूतघटोत्कच (९) कर्णभार (१०) ऊरुभङ्ग।

साहित्याचार्य पं० रामावतार शर्मा एम ए आदि कई विद्वानोंको इन नाटकोंके भासकृत होनेमें सन्देह है। पर गणपति शास्त्रीने बड़े ऊहापोहपूर्वक अपनी भूमिकामें इनका भासकृत होना प्रमाणित किया है।

हो गया है क्योंकि प्राचीन कालके बहुतसे ग्रंथ अब लुप्त हो गये हैं। जिन कवियोंके विरचित ग्रथ अब पाये भी जाते हैं उनमेंसे भी कई एकके समय आदिका ठीक पता नही लग सका है। ऐसी दशामें सस्कृत काव्योंका यथार्थ इतिहास लिखना कितना कठिन है सो लोग समझ सकते हैं। युरोपीय विद्वानोंने बहुत परिश्रम द्वारा जाच खोज करके जो कुछ पता पाया अथवा जहापर ठीक पता न चल सका वहापर अपनी कल्पनाकी सहायतासे सस्कृत साहित्यका इतिहास लिखा है। विशेषत उसीके आधार पर सस्कृतके प्राचीन काव्यों और कवियोंके विषयमें कुछ लिखा जाता है।

ऊपर जितने प्रकारके काव्य कहे गये हैं किसी किसी कविके तो उनमेंसे अनेक प्रकारके काव्य पाये जाते हैं और किसी किसी कविके केवल एकही प्रकारके काव्य पाये जाते हैं। अतएव काव्यभेदके अनुसार ग्रन्थोंका वर्णन करनेमें सुभीता न होनेसे प्रत्येक कवि और उसके विरचित ग्रन्थोंके विषयमें जो जो बा विदित हो सकी हैं यहापर अति सक्षेपमें लिख दी जाती हैं जिस कवियों वा उनके विरचित काव्योंको लोग सहज ही ध्यान कर लेवें।

सस्कृत काव्योंमेंसे अधिकाश ग्रन्थोंकी रचना अथवा महाभारत वा और और पुराणोंके उपाख्यानोंका आ लेकर की गयी है। इन सब काव्योंमें भाषाके अनेक प्र चमत्कार और वर्णनके उत्कर्ष समझनेवालोंके लिये दायक हैं। प्राचीन कवियोंमेंसे कालिदाससे पूर्व, भास, आदि कुछ कवि हो चुके हैं। सौमिल्लका तो केवल सुन पड़ता है, उनकी रचनाके ग्रन्थ कही नहीं पाये भास कविके कुछ नाटक अभी हालमें मिले हैं *

* भासके नाटकोंका उद्धार गणपति शास्त्रीने किया है। त्रिवेन्द्रम (अनन्तशयन) नगरसे उनकी सम्पादकतामें प्रकाश

देख शिवजीका प्रसन्न होकर अपना स्वरूप दिखाना, अर्जुनका नम्र होना, स्तुति करना और अन्तमें शिवजीका प्रसन्न हो उन्हें पाशुपतादि अस्त्रोंके देनेका वर्णन है।

[३] शूद्रक

बहुत प्राचीन कालमें इस नामका कोई राजा उज्जयिनीपुरीमें राज्य करता था। सम्भवतः उसकी राजसभाके किसी पण्डितने मृच्छकटिक नाम नाटक अपनी ओरसे बनाकर शूद्रक राजाके नामसे उसे प्रकाशित किया होगा और पुरस्कार रूपसे धन आदि पाया होगा। इस नाटककी प्रस्तावनामें राजा शूद्रककी मृत्युका भी उल्लेख मिलता है जिससे यह अनुमान होता है कि प्रस्तावना पीछेसे किसी औरके द्वारा लिखी गयी है। शूद्रकके प्रादुर्भाव-कालका भी ठीक पता नहीं लगता। कुछ लोग इसे शकारि विक्रमादित्यसे भी पूर्वका राजा शूद्रक समझते हैं जिसका उल्लेख कुमारिका खण्डमें किया गया है। कुछ युरोपियन लोग इसी शूद्रकको छठी शताब्दीमें उज्जैनका राजा मानते हैं और यह भी समझते हैं कि दण्डी कविने शूद्रकके नामसे मृच्छकटिक लिखा है।

इसमें सन्देह नहीं कि मृच्छकटिक एक प्राचीन ग्रन्थ है और उसका कर्त्ता एक चतुर और योग्य कवि था, नाटककी रचना उत्तम और उसमेंके वर्णन मनोहर तथा ऐतिहासिक दृष्टि-से ध्यान देने योग्य हैं। यद्यपि यह पुस्तक कालिदास और भव-भूति आदि कवियोंके अनुपम नाटकोंके तुल्य नहीं समझी जाती तथापि इसे संस्कृतके दृश्य काव्योंमेंसे एक उत्तम काव्य कहना अनुचित न होगा। प्रस्तावना तथा समग्र ग्रन्थकी रचनाशैली परस्पर इतनी मिलती जुलती है कि जिससे यही अनुमान पुष्ट होता है कि शूद्रक राजाकी ओरसे किसी [illegible] पण्डितने इसे लिखा है।

दशा अच्छो [illegible]

ो निर्मल द
ाने उत्तर
ी कि मेरे
पितृघा
ाके चरा
करते
वेश्या
प्रेम करत
प्रेम कर
अत्याचारों
दुष्टने वस
ाव गयी थ
इस प्रकरण

लोग कह
विष्णुशर्मा है।
नीति के नामसे
बनाया चाणक्य
प्राचीन है। इसमें
नीति शास्त्रके
संस्कृत साहित्यमें
विष्णुशर्मा नाम
इतनेहीसे लोग अनुम
शास्त्रमें ग्रन्थकारक
प्राचीन ग्रन्थ है और
पंचतन्त्रादि आधारप
कर लिया है।
पंचतन्त्र नाम पढ़ने

उल्लेख किया है जिसे
प्रयोगों

कि बाणभट्ट और धावक आदि कवियोंने ये नाटक ग्रन्थ रचकर राजाके नामसे प्रचलित कर दिये और बहुतसा धन उससे पुरस्कारमें पाया।

धावक कविके विषयमें पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं कि ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि धावक नाम किसी कविने रत्नावली और नागानन्द नाम नाटक बनाये, राजा श्रीहर्षने धन देकर धावकको परितुष्ट किया और इन दोनों नाटकोंको अपने नामसे प्रचलित करवाया। अलंकार शास्त्रके प्रसिद्ध जाननेवाले मम्मटभट्टके लेखसे भी यही बात पक्की होती है। पर धावक और राजा श्रीहर्ष इन दोनोंके समयमें सहस्रसे भी अधिक वर्षोंका अन्तर पडता है, दोनों एक ही समयके व्यक्ति नहीं हो सकते। कालिदास विरचित मालविकाग्निमित्र नाटककी प्रस्तावनामें प्राचीन नाटक लिखनेवालोंमें धावकका भी नाम लिखा मिलता है। इसके अनुसार धावक शकारि विक्रमादित्यके भी बहुत पूर्व प्रकट हुए जान पडते हैं। अतएव यह किंवदन्ती और उसका मूल मम्मटका सिद्धान्त ठीक नहीं जँचता और फिरभी श्रीहर्षका एक अनुपम कवि होना और सब देशोंकी भाषाका जानना प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ राजतरङ्गिणीसे सिद्ध होता है। निर्मूलक किंवदन्ती तथा मम्मटका लेख सँभालनेके लिये किसी दूसरे धावक कविकी कल्पना करके राजा श्रीहर्षकी कविताशक्तिको उडा देना किसी प्रकार न्याय नहीं जँचता है।

उक्त मतसे प्रकट होता है कि धावकका समय विक्रमादित्यसे भी बहुत पूर्व रहा होगा पर ध्यान रखना चाहिये कि मालविकाग्निमित्रकी केवल दो एक प्रतिमें धावक नाम मिलता है और सभी प्रतियोंमें उसकी जगह भासकविका नाम है। भास धावकका नामान्तर हो यह बात सम्भव नहीं जान पडती। हा यह सम्भव है कि कोई लेखक भूलसे भासकी जगह धावक लिख गया हो। ऐसे लेखकोंके प्रमाणपर मम्मट भट्टकी उक्तिपर सन्देह

हर्षचरितमें वासवदत्ता* उल्लेख किया है जिससे सिद्ध है कि सुबन्धुकी वासवदत्ता बाणभट्टके ग्रन्थोंकी अपेक्षा प्राचीन है और बहुत संभव भी है कि कादम्बरीमें वासवदत्ताकी शैलीका अनुकरण किया गया हो।

इस वासवदत्ता नाम ग्रन्थमें सुबन्धुने वश वा वत्सवंशके राजकुमार कन्दर्पकेतुके साथ उज्जैनकी राजकुमारी वासवदत्ताके प्रेम और राजकुमार तथा राजकुमारीके विवाहका वर्णन किया है। कन्दर्पकेतु कौशाम्बीहीका राजकुमार है। अतएव भासके स्वप्नवासवदत्तम् और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' हीकी कथा सुबन्धुने वासवदत्तामें लिखी है सो प्रकट है। बाणभट्टसे कुछ प्राचीन होनेके कारण लोगोंने सुबन्धुको ६०० विक्रमाब्द-पूर्वका व्यक्ति अनुमान किया है। सुबन्धु संस्कृत भाषाके एक अच्छे गद्यपद्य लेखक, पण्डित और सुकवि हो गये हैं। वासवदत्ता नाम गद्य ग्रन्थको छोड सुबन्धुका कोई २रा ग्रन्थ देखने वा सुननेमें नहीं आया।

[१०] हर्षवर्द्धन

ये कन्नौजके वे ही प्रसिद्ध हर्षवर्द्धन वा शीलादित्य हैं जिनका वर्णन बाणकविने निज रचित हर्षचरितमें लिखा है और जिनके दरबारमें ह्वान्साङ्ग नामक चीनी यात्री आया था। यह राजा बहुत विद्वान् और धार्मिक था। यह संवत् ६६३ में राजसिंहासनपर बैठा और इसने अपने नामका एक नया संवत् भी चलाया। इस राजाका इतिहास ऊपर लिखा जा चुका है।

रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका नाम तीन नाटक ग्रन्थ इसी राजाके बनाये प्रसिद्ध हैं परन्तु लोगोंका अनुमान है

* वासवदत्ताकी विद्वत्तापूर्ण भूमिकामें अभिनव बाण श्रीकृष्णमाचार्यने इस अनुमानका युक्ति प्रमाण द्वारा खण्डन किया है कि बाणके हर्षचरितमें पूर्व ... लिखी गयी। सं०

श्लाघ्य नही है। मेरी समझसे मम्मटहीका कथन ठीक जान पडता है, क्योंकि काव्यप्रकाशके प्रामाणिक टीकाकारोंने भी यह किवदन्ती उठायी है जिससे विद्यासागर महाशयकी भ्रान्ति सिद्ध होती है। प्रत्युत जिस श्रीहर्षने धावक कविसे ग्रन्थ बनवाये वह कश्मीरका राजा और सब देशोंकी भाषा जाननेवाला राजा श्रीहर्ष नहीं है किन्तु कान्यकुब्जका वह हर्षवर्द्धन है जिसके यश और प्रतापका वर्णन बाणभट्टने हर्षचरित्रमें किया है। धावक कवि इस प्रकारसे बाणभट्टका समकालीनही सिद्ध होता है और उसका श्रीहर्षवर्द्धनका आश्रित होना सम्भव है।*रत्नावलीमें कौशाम्बीके राजा उदयनका अपनी रानीकी एक सखी सागरिकासे प्रेमका वर्णन है। पता लगनेपर विदित हुआ कि सागरिका सिंहलद्वीपकी राजकन्या थी और नौका डूबते समय समुद्रसे बचायी जाकर कौशाम्बीमें लायी गयी थी। अन्तमें उदयन और सागरिकाका विवाह हो गया।

प्रियदर्शिका भी रत्नावलीकी नाईं एक छोटासा नाटक है जिसमें नायक नायिकाके परस्पर प्रेम और विवाहका वर्णन किया गया है।

नागानन्द नाम नाटकके मंगलाचरणमें भगवान बुद्धका स्मरण किया गया है। इस छोटेसे नाटकमें जीमूतवाहन नाम एक बौद्ध मतावलम्बी परोपकारी राजकुमारने नागोंका प्राण बचानेके लिये अपना प्राणोत्सर्ग किया, यह इतिहास वर्णित है।

(११) बाण

हर्षचरित नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें बाणने अपने आश्रय-दाता

---

* प्रिय दर्शिकाकी भूमिकामें श्रीकृष्णमाचार्यने इन सब विकल्पों और अनुमानोंका जो श्रीहर्ष और उनकी रचनाके सम्बन्धमें किये गये हैं खण्डन करके अच्छी तरह सिद्ध किया है कि इन तीनों नाटकोंके कर्ता कन्नौजके श्रीहर्षवर्द्धन ही थे, धावक अन्य कोई नहीं था।

महाराज हर्षवर्द्धनका इतिहास लिखा है और संक्षेपमें अपना भी कुछ इतिहास दिया है। बाण वात्स्यायन वंशमें उत्पन्न मगध देशी ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम चित्रभानु और माताका नाम राज्यदेवी था। बचपनहीमें बाणको मातृवियोगका दुःख झेलना पड़ा और जब उनकी अवस्था १४ वर्षकी हुई तब उनके पिता भी स्वर्ग सिधारे। चीनी यात्री ह्वान्साङ्गके वर्णनानुसार तो विदित होता है कि राजा हर्षवर्द्धन बौद्ध मतका पक्षपाती था पर उसके आश्रित होनेपर भी बाणकवि बौद्धमतावलम्बी नहीं थे ऐसा कादम्बरी आदि ग्रन्थोंके पढनेसे सिद्ध होता है। बाणभट्टके बनाये ग्रन्थोंके नाम कादम्बरी, हर्षचरित, चण्डीशतक, और पार्वती परिणय हैं। हर्षचरितके आरम्भमें बाणने अपने पूर्वके प्रसिद्ध कवियोंका उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि सुबन्धु, हरिचन्द, सातवाहन (शालिवाहन), प्रवरसेन, भास, कालिदास गुणाढ्य और आढ्यराज ये कवि बाणसे पूर्व भारतमें प्रसिद्धि पा चुके थे। ये सब कवि छठी शताब्दीसे पूर्वके हैं और बाण तो हर्षवर्द्धनका समकालीन होनेके कारण सातवीं शताब्दीका व्यक्ति प्रमाणसिद्ध है ही।

बाणभट्टके पुरखे कन्नौजके 'मौखरि' राजाओंके गुरु थे ऐसा कादम्बरीकी भूमिकासे पता लगता है। इन्हीं मौखरि राजाओंकी उपाधि वर्मा थी। इसी वंशका राजा ग्रहवर्मा प्रसिद्ध हर्षवर्द्धनका बहनोई था और इसी ग्रहवर्माके मारे जानेपर हर्षवर्द्धनको जब अपने बहनोईका राज्य मिला तो उसने कन्नौज अपनी राजधानी बनायी।

कादम्बरी संस्कृत गद्यका एक अनूठा ग्रन्थ है। इसके लेखसे बाणभट्टकी अलौकिक योग्यताका पूर्ण परिचय मिलता है। संस्कृत भाषामें शब्दोंका भण्डार कितना अधिक है इसका प्रमाण कादम्बरी देखनेपर मिलता है। कथा भी अत्यन्त चमत्कारिणी है। विदिशा नगरीका वर्णन, राजा तारापीडका

प्रभाव, राजमंत्री शुकनाशका राजकुमार चन्द्रापीडको उपदेश इत्यादि परम मनोहर वर्णन है। बाणभट्टने केवल कादम्बरीका पूर्व भाग बना पाया था। उसे समाप्त नहीं करने पाये थे। शेष कथाको उनके पुत्र भूषणभट्टने* लिखकर समाप्त किया परन्तु पिता पुत्रके लेखोंमें बड़ा अन्तर है और बाणभट्टकी अद्भुत कविता-शक्तिकी बराबरी करनेमें उसका पुत्र पूर्णतया सफल नहीं हो सका है।

हर्षचरितमें जो ऐतिहासिक बातें पाई गई हैं उनका वर्णन ऊपर हर्षवर्द्धनके इतिहास आदिमें किया जा चुका है।

लोग कहते हैं चण्डी देवीको प्रसन्न करनेके लिये बाणभट्टने चण्डीशतक लिखा और इससे इष्ट-सिद्धि प्राप्त की।

पार्वतीपरिणय नाम नाटक भी बाणभट्टरचित प्रसिद्ध है। इसकी कविता और कथाभाग कविवर कालिदासकृत कुमार-सम्भवसे बहुत मिलता है पर यह निश्चय नहीं होता कि वह नाटक

---

* बाणभट्टके पुत्रका नाम 'भूषणभट्ट' प्रसिद्ध करनेवाले डाक्टर बूलर हैं। पर यह नाम कोरा कल्पित है, किसी पुस्तकमें भी बाणके पुत्रका यह नाम नहीं मिलता ५० पाण्डुरङ्गशास्त्रीने अपने मराठी निबन्ध "बाणभट्ट"में अनेक प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध किया है कि बाणके पुत्रका नाम "पुलिन्दभट्ट" था उनमेंसे तीन प्रमाण यह हैं —

(१) काश्मीर राज्यके पुस्तकालयमें शके १५६८ का शारदालिपिमें भोजपत्रपर लिखी कादम्बरी है, उसकी समाप्तिपर बाणपुत्रका नाम "भट्टपुलिन्द" स्पष्ट लिखा हुआ है।

(२) उदयपुर नाथद्वारेकी पुस्तकोंमें भी यही नाम है।

(३) सूक्तिमुक्तावलिमें धनपाल कविकृत—बाणपुलिन्दकी प्रशंसामें एक श्लिष्ट पद्य है, उसमें भी यही सूचित होता है, यथा।

"केवलो पि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन्
किं पुनः क्लृप्तसंधानपुलिन्दकृतसंनिधिः॥

(ज्वालापुरके भारतोदयमें प्रकाशित एक लेखके आधारपर) संपादक

इन्हीं वाणभट्टका विरचित है वा वाणभट्ट नामके किसी और कविका * ।

संयुक्त प्रान्तके इटावा नाम नगरमें लोग आजतक एक कुआ दिखलाते हैं और कहते हैं कि यह वाणका कुआ है पर ठीक पता नहीं चलता कि उसका सम्बन्ध इन्ही वाण कविसे है वा किसी औरसे।

कुछ लोग कहते हैं कि वाणके श्वसुर और कुछ लोग कहते हैं कि साले, मयूरभट्ट थे। यह किंवदन्ती प्रचलित है कि मयूरभट्टको कुष्ठ हो गया था और सूर्यशतक बनानेसे उनका रोग निवृत्त हुआ। मम्मटभट्टने भी काव्य प्रकाशमें लिखा है कि सूर्यके द्वारा मयूरभट्टका कुष्ठ दूर हुआ था।

(१२) भर्तृहरि

भारतवर्षमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि भर्तृहरि महाराज विक्रमादित्यके जेठे भाई थे पर अपनी स्त्रीके चरित्रपर सन्देह होनेसे इनके चित्तमें वैराग्य आ गया और अपने भाई विक्रमके हाथमें राजकाज सौंपकर वैरागी हो गये। महाराज विक्रमका समय विक्रमाब्दका आरंभ है। यदि भर्तृहरि उन्हींके जेठे भाई हैं तो कालिदास आदि कवियोंसे प्राचीन हैं। के० टी० तैलङ्ग महाशयका अनुमान है कि भर्तृहरि अवश्य कालिदाससे पिछले हैं और जबतक पतञ्जलिका महाभाष्य चन्द्राचार्य आदि वैयाकरणोंके द्वारा हिन्दुस्तानमें भलीभांति प्रचलित न हो चुका होगा तबतक भर्तृहरि नही हो सकते। उन महाशयका सिद्धान्त भर्तृहरिको लगभग संवत् ६३५ का व्यक्ति बनाता है तथा विक्रमसंवत्को शालिवाहनके शाकेसे मिला देता है। यद्यपि तैलङ्ग महाशयके

* पार्वतीपरिणय किसी दूसरे बाणभट्टकी रचना है यह बात इसी नाटककी भूमिकामें श्रीकृष्णमाचार्य ने युक्ति—प्रमाण द्वारा सिद्ध कर दी है।

मतमें यह निर्विवाद सिद्धान्त निर्णीत किया गया है पर इसमें और भी कई एक सन्देह उपस्थित होते हैं। भर्तृहरिजी एक प्रसिद्ध वैयाकरण, दार्शनिक और कवि थे। इनका बनाया व्याकरण ग्रन्थ 'वाक्यप्रदीप' है। भट्टिकाव्य इन्हीं भर्तृहरिका बनाया है ऐसा कहनेमें कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता, इसके विरुद्ध भलेही बहुत कुछ कहा जा सकता है। नीति शृंगार और वैराग्यशतक तो भर्तृहरिहीके बनाये प्रसिद्ध हैं पर फिर भी यह सन्देह हो सकता है कि यह उनकी स्वतन्त्र रचना है वा संग्रह, अथवा दोनों मिश्रित है। इन शतकोंमेंके अनेक श्लोक कालिदास तथा और और कवियोंके ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं जिससे अनुमान होता है कि भर्तृहरिने भिन्न भिन्न स्थानोंसे श्लोकोंका संग्रह किया है। राज्यसे विरक्त होकर भर्तृहरिने तपस्या की। जिला मिर्जापुरके चुनार नामक स्थानमें जो एक प्राचीन दुर्ग है उसीमेंकी एक गुफाको लोग भर्तृहरिकी तपोभूमि बतलाते हैं।*

उनके ग्रन्थोंके देखनेसे जान पड़ता है कि भर्तृहरि एक असाधारण विद्वान थे। वाक्यप्रदीप ग्रन्थसे इनकी व्याकरण और दर्शनशास्त्र सम्बन्धिनी व्युत्पत्तिका पता लगता है। नीति और वैराग्यशतककी कविता देखनेसे इनके संसारकी दशाके अनुभवका पूर्णतया परिचय मिलता है। भर्तृहरि विरचित शृङ्गारशतक तो एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें स्त्रियोंकी प्रशंसा भी की गई है और उनके फन्दोंसे बचनेका उपदेश भी युवा पुरुषोंको दिया गया है। चीनी यात्री इतसिंगने लिखा है कि भर्तृहरि सात बार बौद्धभिक्षु बने और फिर वैरागी हो गये। पर यह बात मिथ्या जान पड़ती है। युरोपियनोंकी कल्पना है कि भर्तृहरि सातवीं शताब्दीके प्रथमार्द्धके व्यक्ति हैं।

* उज्जैनमें भी एक पुरानी गुफा भर्तृहरिके नामसे प्रसिद्ध है।

(१३) भवभूति

भवभूति संस्कृतके एक सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं जिनकी गणना कालिदास, भारवि, बाणभट्ट, माघ, श्रीहर्ष आदिके साथ करनी चाहिये। इनकी रचना अति विचित्र और मनोहर है। भवभूतिकी रचनामें एक बात जो कि औरोंसे विलक्षण पायी जाती है यह कि दृश्यकाव्यके भीतर भी उन्होंने दीर्घसमास और गम्भीर अर्थवाले शब्दोंका प्रयोग किया है जो खटकता है। इनके बनाये तीन प्रचलित नाटक वीरचरित, उत्तररामचरित, और मालतीमाधव हैं। वीरचरितमें वीररस, उत्तरचरितमें करुणारस और मालतीमाधवमें शृंगाररसका प्राधान्य रखा गया है। ये तीनों नाटक उत्तम हैं।

नाटकोंके प्रारम्भमें भवभूतिने जो खोलकर अपना परिचय दिया है। भवभूति दक्षिण देशमें पद्मपुर नामक स्थानके निवासी और विद्वान ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन्न हुये थे। उनके पितामहका नाम गोपालभट्ट और पिताका नाम नीलकण्ठ था। भवभूतिकी माताका नाम जातूकर्णी और गुरुका नाम ज्ञाननिधि था।

भवभूति और वाक्पतिराज ये दोनों कवि कन्नौजके राजा यशोवर्मदेवके सभासद थे। इस यशोवर्मदेवको कश्मीरके राजा ललितादित्यने युद्धमें परास्त किया था। ललितादित्यका राज्य-काल संवत् ७५० से ७८६ तक है अतएव भवभूति आठवीं शताब्दीके प्रारम्भकालके व्यक्ति सिद्ध होते हैं। कुछ लोग भवभूति को ब्रह्मसूत्रके टीकाकार भगवत्पाद शंकराचार्यसे अर्वाचीन मानते हैं। दूसरे लोग भवभूतिको कालिदासका समकालीन बतलाते हैं और कहते हैं कि भवभूतिने कालिदासको निजरचित उत्तरचरित दिखलाया था और कालिदासने उसमें एक स्थान पर 'वध' के स्थानमें 'एव' बनवा दिया था। यदि यह कथा सत्य हो तो मानना पड़ेगा कि भवभूतिके समकालीन भी कोई

कालिदास हुए हैं और ये रघुवंश आदि काव्योंके रचयि
नितान्त भिन्न हैं। भवभूतिने मालतीमाधवमें शकुन्तल
नामोल्लेख किया है और एक स्थानमें मेघ द्वारा संदेशा भेज
बात भी छेडी है जिससे लोग अनुमान करते हैं कि वे महा
कालिदासके अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक और मेघदूत का
परिचित थे। मालतीमाधवसे भवभूतिके समयमें भारतके
समाजकी अवस्था, तान्त्रिकोंकी दशा, स्त्री-शिक्षा और न्यायार्थ
प्रचार भलीभांति विदित होता है। कालिन्दी तीरके श
नामक वट और उज्जयिनीके भगवान कालप्रियनाथ महादे
भी उल्लेख भवभूतिने निज ग्रन्थोंमें किया है।

(१४) विशाखदत्त

विलसन साहबने मुद्राराक्षसमें 'पृथुसूनु' ऐसा देखकर
दिल्लीके महाराज पृथ्वीराजका पुत्र कल्पना किया है।
सोमेश्वरको सामन्त वटेश्वरदत्तका संक्षिप्त रूप समझ इन्हें
हवीं शताब्दीका व्यक्ति निर्धारित किया है पर यह बात
नहीं जान पडती।

विशाखदत्त संभवत अवन्तिवर्मा नाम किसी राज
राज्यकालमें उपस्थित थे। यह अवन्तिवर्मा संभवत कन्नौ
मौखरिवर्मन् राजाओंमेंसे कोई एक हैं। अतएव विशाखदत्त
उसके समकालीन हैं और सातवी शताब्दी कि
होते हैं। इनके पिताका नाम पृथु और
वटेश्वरदत्त था।

विशाखदत्तकी कहीं पु
देखनेमें आयी है अ राक्ष
कोई ग्रन्थ विशा ने या
पर इसी एक नाट

एक अद्भुत नाटक है जिसमें शृंगाररसकी गन्धतक नहीं है फिर भी अत्यन्त रोचक है। चन्द्रगुप्तके मन्त्री चाणक्यने किस प्रकार नन्दोंके संहारानन्तर नन्दवंशके सच्चे हितैषी मन्त्रीराक्षसको नीतिबलसे अपने वशीभूत करके चन्द्रगुप्तका हितकारक मन्त्री बनाया यही दिखलाना नाटकका मुख्य उद्देश्य है।

(१५) त्रिविक्रम भट्ट

ये कवि प्रसिद्ध विद्वान् श्रीदेवादित्यशर्म्माके पुत्र थे। बचपनमें इनकी पढने लिखनेमें विशेष अभिरुचि न थी। परन्तु प्रयोजनवश सरस्वती देवीकी आराधनाकर कुछ कालमें उनकी कृपासे इन्हें विद्यासे अच्छा परिचय हो गया। सुननेमें आता है कि सरस्वतीकी अनुग्रहावस्थामें ही त्रिविक्रमभट्टने सात उच्छ्वास वाला नलचम्पू नाम एक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ रचा था। चम्पू ग्रंथ खडित ही छोड दिये जाते हैं अतएव नलचम्पू भी खडित ही है। त्रिविक्रमभट्टकी उपाधि यमुना त्रिविक्रम थी।

नलचम्पूमें बाणभट्टका नाम मिलनेसे विदित होता है कि ये सातवीं शताब्दीसे पिछले हैं। और भी, सरस्वती कंठाभरणमें भोजराजने नलचम्पूसे एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे सिद्ध होता है कि त्रिविक्रमभट्ट भोजराजसे पूर्वके व्यक्ति हैं। अतएव इनका समय आठवीं शताब्दी वा नवीं शताब्दीमें मान लिया जा सकता है।

(१६) अमरु

इनका रचित अमरुशतक नाम एक शृंगाररसका काव्य देखनेमें आता है। अमरु कविके विषयमें एक कथानक प्रसिद्ध है कि जब भगवत्पाद शंकराचार्यजी कश्मीर गये तो वहावालोंने इन्हें संन्यासी समझ इनसे शृंगाररसकी कविता बनानेका आग्रह इस अभिसन्धिसे किया कि जिसमें स्वामीजी परास्त होके हार मान लें। शंकराचार्यजी परकाय प्रवेशकी योग-शक्ति

खींचाखींची करके उसका अर्थ वैराग्य और भक्तिकी ओर भी घटानेकी चेष्टा की है।

(१७) भट्टनारायण

वेणीसंहार नामक प्रसिद्ध नाटकके रचयिता भट्टनारायण उन पांच ब्राह्मणोंमेंसे हैं जिन्हें बङ्गालके राजा आदिशूरने मध्य-देशसे बुलाकर बंगालमें बसाया। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रके कथनानुसार आदिशूरहीका नामान्तर वीरसेन है और उन्हींके तथा रमेशचन्द्रदत्तके कथनानुसार बंगालके राजा वीरसेनका समय संवत् १०४३ से १०६३ तक अनुमित होता है। भट्टना-रायणने आदिशूरको अपना परिचय देते समय बतलाया है कि मैं वेणीसंहार नाम नाटकका रचयिता हूं। निदान आदिशूरके समकालीन भट्टनारायण दशवीं शताब्दीमें संसारमें विद्यमान थे। भट्टनारायणके रचित एक और ग्रन्थका नाम प्रयोगरत्न है। काव्य प्रकाशमें मम्मटने वेणीसंहारके बहुतसे श्लोक उद्धृत किये हैं।

बंगालके श्रीयुक्त बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर अपनेको भट्टनारायणका वंशज बतलाते हैं और उन्होंने जो वेणीसंहार नाम नाटक छपवाया है उसके प्रारम्भमें अपनी वंशावली भी दी है। उक्त वंशावलीके अनुसार बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर भट्टनारायणसे ३२ वीं पीढीमें आते हैं।

भट्टनारायणके पिताका नाम भट्टमाहेश्वर था। भट्टमाहेश्वर सहसाङ्कचरितके रचयिता हैं या उनसे भिन्न हैं पता नहीं लगता। बूलर साहिबने लिखा है कि शैवदार्शनिक लक्ष्मणगुप्त संवत् १००७में विद्यमान थे और भट्टनारायणके शिष्य थे। बहुत संभव है कि लक्ष्मणगुप्तके गुरु वेणीसंहारके रचयिता ही रहे हों।

(१८) माघ

संस्कृतके छ प्रसिद्ध महाकाव्योंमेंसे माघका शिशुपालवध भी एक है। इस महाकाव्यके २० सर्गों में श्रीकृष्णजीने किस

युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें चेदिदेशके राजा शिशुपालका वध किया सो वर्णित है। इतिहासका भाग तो केवल इतना ही है पर राजनीति, द्वारकापुरी, रैवतगिरि, वन, जलक्रीडा, पुष्पावचय, मद्यपान, युद्धक्षेत्र, यज्ञ आदिका वर्णन इसमें बहुत अच्छी रीतिसे किया गया है और प्राय. प्रत्येक स्थलपर भारविकृत किराताजुर्नीयका अनुकरण हुआ है। वास्तवमें माघ कोई अनुपम शक्ति विशिष्ट योग्य कवि थे और केवल इसी एक ग्रन्थके कारण इन्होंने ससारमें अक्षय कीर्त्ति प्राप्त की है।

माघने शिशुपालवधकी समाप्तिमें अपने पितामह सुप्रभदेव, और पिता 'दत्तक'का नामोल्लेख किया है। दत्तकके भाई शुभकरके पुत्र सिद्धार्थ भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार हैं। लोगोंने माघकविका प्रादुर्भावकाल सवत् ९०७ के लगभग अनुमान किया है।

(१९) राजशेखर

यह कवि कन्नौजके राजा महेन्द्रपाल और उसके पुत्र भोजके दरबारमें उपस्थित थे। यह राजा महेन्द्रपालके गुरु भी थे। राजशेखरने कालिदास और भवभूतिका अनुकरण करके कई एक नाटक लिखे हैं जोकि मनोहर हैं पर कालिदास अथवा भवभूति विरचित नाटकोंकी समताको नहीं पहुंच सकते। हां, कवितामें राजशेखर भी ससारमें प्रसिद्धि पा गये हैं। इनके बनाये ग्रन्थ निम्नलिखित हैं।

(१) बालरामायण—जिसमें रामके जन्मसे लेकर उनके राज्याभिषेकतक रामायणकी कथाका वर्णन सात अङ्कोंमें दिखलाया गया है। यह नाटक कुछ विस्तृत हो गया है।

(२) बालभारत—इसमें द्रौपदीके विवाहसे लेके द्यूत-क्रीडाकी समाप्तिके अनन्तर पाण्डवोंके वनगमनतककी महाभारतकी कथाका भाग है।

(३) विद्धशालभंजिका—यह श्रीहर्षकी रत्नावलीके समान कथासे पूरित पर उसकी अपेक्षा कम मनोहर नाटक है।

(४) कर्पूरमंजरी—यह एक अत्यन्त छोटा नाटक प्राकृत भाषामें लिखा गया है *।

(२०) धनंजय और धनिक

ये दोनों भाई अवन्तीपुरीकी धारा नगरीमें भोजके चचा मुञ्जके सभारत्न थे। इनके पिताका नाम विष्णु था। धनञ्जयने दशरूपक नामका एक अलङ्कार ग्रन्थ लिखा है और धनिकने उसपर दशरूपकावलोक नामकी टीका रची है। राजा मुञ्ज और भोजका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उनके समकालीन इन दोनों भाइयोंका समय दसवीं शताब्दी जान पड़ती है। इन दोनों भाइयोंके समकालीन पद्मगुप्त (परिमल) और हलायुध आदि ग्रन्थकार हैं। पद्मगुप्त तो "नवसाहसाङ्कचरित" नामक ग्रन्थके रचयिता हैं और हलायुध एक प्रसिद्ध संस्कृत कोशके लेखक तथा पिङ्गलसूत्रोंके टीकाकार हैं। रघुवंश आदि काव्योंके प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथने जहां तहां हलायुधके कोशसे प्रमाण उद्धृत किये हैं। अत्यन्त सम्भव है कि ये हलायुध यही मुञ्जके समकालीन व्यक्ति हों। धनिकने दशरूपकावलोकमें विद्धशालभञ्जिकासे श्लोक उद्धृत किये हैं जिससे स्पष्ट है कि यह राजशेखर कविसे पिछले हैं। दशरूपकावलोकमे रुद्र नामक किसी कविका उल्लेख मिलता है। अनुमान होता है कि ये रुद्र कदाचित् काव्यालंकारके रचयिता कश्मीरी कवि रुद्रट हैं। राजतरङ्गिणी आदिके अनुसार रुद्रटका समय संवत् ९०७के लगभग है अर्थात् रुद्रट कवि धनिकसे डेढ़ दोसौ वर्ष पूर्वके व्यक्ति हैं।

---

* राजशेखरका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और अपने विषयका संस्कृतमें एकही ग्रन्थ "काव्यमीमांसा" अभी हालमें मिला है, जो बड़ोदा राजकीय संस्कृत विभागकी ओरसे प्रकाशित हुआ है। —सं०

(२१) भोजराज

ये महाशय मालवाधीश प्रसिद्ध भोजराज हैं। इनकी राजधानी धारानगरी थी जो आजकल मालवेकी धार नामक छोटी रियासत है। भारतमें महाराज विक्रमके अनन्तर इन्हीं भोजराजकी प्रसिद्धि है। ये परम विद्वान् और गुणग्राही थे। इनके रचित ग्रन्थोंके नाम सरस्वतिकण्ठाभरण, रसकौमुदी और युक्ति कल्पद्रुम आदि हैं। सरस्वतिकण्ठाभरणमें विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस नाम नाटकसे, एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे सिद्ध होता है कि भोजराज विशाखदत्तसे पीछे हुए हैं। मम्मट कविने काव्यप्रकाशमें एक श्लोक उद्धृत किया है जो धाराके भोजराजके दानकी प्रशंसा करता है जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि भोज मम्मटसे पहले हुए हैं।

प्राचीन लेखमालामें भोजराजका एक लेख छपा है जो संवत् १०७८में लिखा गया है। उसमें भोजके पिताका नाम सिन्धुराज और पितामहका नाम वाक्पति श्रीराजदेव लिखा है। भोजके पितृव्य मालवाधीश मुञ्ज थे। एक कथानक प्रसिद्ध है कि मुञ्जने राज्यासन ग्रहण करके ज्योतिषियोंसे भोजके भावी प्रतापका वर्णन सुना और गुप्त रीतिसे उसके वधकी चेष्टा की। पर भोजके प्राण किसी प्रकार बच गये। मुञ्जको अपने जघन्य कार्यपर इतना अधिक पछतावा हुआ कि पीछेसे भोजके हाथ राज्य सौंप दक्षिण दिशाको चला गया। चालुक्य राजा तैलपने मुञ्जको बन्दी किया और अन्तमें मरवा डाला।

विद्वज्जनोंने निर्णय किया है कि धारानगरीमें महाराज भोजने प्राय संवत् १०५२ से लेकर ११०८ तक राज्य किया होगा। ये महाराज भोज गज़नीके प्रसिद्ध लुटेरे महमूदके समकालीन थे। जिस समय सोमनाथकी लूट हुई भोजराजने भी गज़नवीको मार्गमें रोकनेकी चेष्टा की थी।

भोज बड़े प्रतापी, यशस्वी, न्यायी, धर्मात्मा, धनी, दानी, विद्वान और गुणज्ञ थे। ये परमारवंशी राजकुमार थे और मालवेके परमारवंशी राजाओंके बीच इनका तथा इनके पितृव्य मुञ्जका वर्णन किया जा चुका है।

(२१) मम्मटभट्ट

कश्मीर देशमें जो संस्कृतके अनुपम विद्वान् पण्डित हो चुके हैं उनमेंसे मम्मटभट्ट भी एक हैं। इनके बनाये काव्यप्रकाश नाम ग्रन्थको संस्कृत साहित्यका कौन रसिक नहीं जानता। लोग कहते हैं कि नैषध काव्यके रचयिता श्रीहर्ष मम्मटके भानजे थे और श्रीहर्षने नैषधचरित नाम काव्य जब लिखा था अपने मातुलको भी दिखलाया था।

मम्मटने काव्यप्रकाशमें भट्टलोल्लट, श्रीशङ्कुक, भट्टनायक, अभिनवगुप्त, आनन्दवर्द्धन (ध्वनिकार), भामह, रुद्रट, और भट्टोद्भटका नाम लिखा है और पतञ्जलि, कात्यायन तथा भरतमुनि आदिके वाक्य जहां तहां उद्धृत किये हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जैसे गाथा सप्तशती, महावीरचरित, मालतीमाधव, रघुवंश, मेघदूत, शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी, बालरामायण, विद्धशालभञ्जिका, हनुमन्नाटक, ध्वन्यालोक, कुट्टिनीमत, विष्णुपुराण, किरातार्जुनीय, वेणीसंहार, काव्यादर्श, भर्तृहरिशतक, हयग्रीववध, रत्नावली, नागानन्द, अमरुशतक, सूर्यशतक, माघ, पञ्चतन्त्र, हर्षचरित, भट्टिकाव्य इत्यादिसे अनेक अवतरण काव्यप्रकाशमें देख पड़ते हैं जिससे यह बात सिद्ध होती है कि उन सब ग्रन्थोंसे काव्यप्रकाश पीछे लिखा गया है। शीलाभट्टारिका, विज्जिका आदि स्त्री कवि और भासके स्फुट पद्य भी इस पुस्तकमें उद्धृत हैं।

मम्मटके पिताका नाम जैय्यट और छोटे भाइयोंके नाम कैय्यट और उव्वट हैं। कैय्यटने पतञ्जलिके महाभाष्यपर टीका लिखी है। मम्मटभट्ट कश्मीरके निवासी हैं, यह प्रसिद्ध है कि

इन्होंने काशीमें भी विद्याध्ययन किया था। मम्मटके पाण्डित्यकी जो कुछ बड़ाई की जाय थोड़ी है। वैयाकरण और दार्शनिक तो ये हैं ही पर साहित्यमें इनके विशेष ज्ञानका साक्षी स्वयं काव्यप्रकाश ग्रन्थ है। काव्यप्रकाशकी कारिका और वृत्ति दोनों मम्मटभट्टकी लिखी हैं। परन्तु उदाहरणके श्लोक प्रायः ग्रन्थान्तरोंसे उद्धृत हैं। इस पुस्तककी कई टीकाएँ हैं जिनमेंसे माणिक्यचन्द्रकी सबसे प्राचीन है और संवत् १२१७ में लिखी गयी है।

मम्मटभट्ट भोजराजके समकालीन और ग्यारहवीं शताब्दीसे कुछ पहलेके व्यक्ति जान पड़ते हैं।

(२१) क्षेमेन्द्र

यह एक प्रसिद्ध कवि कश्मीरके निवासी हैं। कुछ लोगोंका मत है कि संवत् ११०७ में राजा अनन्तके राज्यकालमें क्षेमेन्द्रने समयमातृका बनायी। बूलर साहबका मत है कि क्षेमेन्द्रका विद्यासम्बन्धी जीवन १०८२ से ११३२ तक रहा होगा। क्षेमेन्द्रका जीवनकाल ग्यारहवीं शताब्दी स्थिर होता है। इनके बनाये अट्ठाईस ग्रन्थ सुन पड़ते हैं। जिनमेंसे औचित्य विचारचर्चा, कलाविलास, दर्पदलन, कविकण्ठाभरण, चतुर्वर्गसंग्रह, चारुचर्या, बृहत्कथामञ्जरी, रामायणमंजरी, भारतमंजरी, समयमातृका और सुवृत्ततिलक बहुत प्रसिद्ध हैं।

इनके ग्रन्थोंसे विदित होता है कि ये बड़े विलक्षण और व्यवहारकुशल कवि थे। इन्होंने † कायस्थों और मुसलमानोंको बड़ी निन्दा की है। समयमातृका नामक ग्रन्थका विषय दामोदर गुप्तके 'कुट्टनीमत' से बहुत कुछ मिलता है और बिलकुल उसी

† क्षेमेन्द्रने और राजतरङ्गिणीकार कल्हणने जो कायस्थोंका उल्लेख किया है, वह जातिविशेषका नाम नहीं किन्तु वहां कायस्थोंसे अभिप्राय सरकारी अहलकारोंसे है। स्टाइन साहबने राजतरङ्गिणीकी टिप्पणियोंसे यह बात सिद्ध की है।

ढङ्गपर लिखा गया है। क्षेमेन्द्रने 'अवदानकल्पलता' नाम पुस्तकमें बौद्धधर्मके प्रसिद्ध महात्माओंके उपदेश और इतिहास लिखे हैं।

(२४) आर्यक्षेमीश्वर

चण्डकौशिक नाटक इन्हींका बनाया हुआ है। साहित्यदर्पणको छोड और किसी ग्रन्थमें इस नाटकका उल्लेख नहीं पाया जाता है। अतएव सम्भव है कि आर्यक्षेमीश्वर संवत् १५२४ से पूर्वके व्यक्ति हों। आर्यक्षेमीश्वरने राजा महीपालदेवके आज्ञानुसार चण्डकौशिक लिखा और कार्त्तिकेय नाम किसी राजाके वे सभासद थे। महीपालदेव बंगालके पालवंशी राजा थे और उनका राज्यकाल संवत् १०८३ से १०९७ तक रहा होगा। अतएव आर्यक्षेमीश्वरका समय ग्यारहवीं शताब्दीमें मान लेना चाहिये।

(२५) दामोदरमिश्र

हनुमन्नाटक या महानाटकके देखनेसे अनुमान होता है कि उसका संग्रह दामोदरमिश्रने किया है। भोजप्रबन्धमें लिखा है कि राजा भोजके समयमें मल्लाहोंने नदीमें जाल डालकर एक पत्थर निकाला जिसमें कुछ लेख खुदा था। राजाने अपने सभासदोंसे उस लेखको पढवाया तो जान पडा कि रामायणकी कथाका कोई भाग है। लोगोंने अनुमान किया कि हनुमानजीने कोई रामायण बना समुद्रमें डाल दी थी उसीका कुछ अंश यह है। दामोदरमिश्रने तदनन्तर एक नाटक रचके इसका नाम हनुमन्नाटक रखा। यह नाटक संस्कृतमें तो लिखा गया है पर कालिदास या भवभूति आदिकी नाईं प्रौढ या गम्भीर कविता इसमें नहीं है। नाटकके नियमोंका इस पुस्तकमें पालन नहीं किया गया है और कहीं कहीं पर और और कवियोंके भी रचित श्लोक इसमें उद्धृत देख पडते हैं। वास्तवमें यह स्वतन्त्र रचना नहीं, संग्रह है। लोग हनुमन्नाटकको वीररस-प्रधान ग्रन्थ मानते

हैं, पर इसमें सीताराम विषयक शृंगार रसकी भी भरमार है। द्वितीय अंकका नाम ही 'जानकीविलास' है।

दामोदरमिश्र मम्मटभट्टसे प्राचीन वा उनके समकालीन जान पडते हैं परन्तु यह बहुत संभव है कि वे मालवेके भोजराजके भी समकालीन रहे हों। इनका भी समय ग्यारहवीं शताब्दी ही माना जा सकता है।

(२६) कृष्णमिश्र

प्रबोधचन्द्रोदय नाम संस्कृत नाटक इन्हींका लिखा हुआ है। नाटकसे विदित होता है कि चदेल राजा कीर्त्तिवर्माने युद्धमें चेदिमंडलके राजा कर्णदेवको परास्त किया। बनारसमें इसी राजा कर्णदेवके नामसे खोदे गये लेख ताम्रेपर मिले हैं और उसका समय संवत् १०९९ निर्णय होता है। हेमचन्द्र और बिल्हणके ग्रन्थोंसे विदित होता है कि और और राजाओंने भी इसे पराजित किया था। कर्णदेवको विजय करनेवाले चदेल राजा कीर्त्तिवर्म्मदेव संवत् ११०७ से ११७३ तक विद्यमान थे। उन्हींके सभासद होनेके कारण कृष्णमिश्रका समय भी ग्यारहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध मानना चाहिये।

(२७) सोमदेव भट्ट

यह एक प्रसिद्ध कश्मीरी कवि हुए हैं जो कश्मीरके राजा अनन्तदेवके राज्यकालमें विद्यमान थे। राजतरङ्गिणीके अनुसार अनन्तदेवने संवत् १०८५ से ११२१ तक राज्य किया। सोमदेवका बनाया प्रसिद्ध ग्रन्थ कथासरित्सागर है जिसमें लगभग २२००० श्लोक हैं। ग्रंथकी समाप्तिमें भट्टजी लिखते हैं कि उन्होंने इस ग्रंथको राजा अनन्तदेवकी रानी सूर्यमती वा सुभटाके मन-विनोदार्थ रचा। कथासरित्सागरमें जो उपाख्यान लिखे गये हैं वैसे अधिक मनोरम नहीं हैं जैसे कि अद्भुत व्यापारोंके निदर्शन हैं। ऐसे उपाख्यानोंका किसी समय भारतमें बहुत प्रचार था

और अच्छे समझे जाते थे पर अब ऐसी कथाओंमें प्राय, लोगों-की रुचि हटती जाती है। कथासरित्सागरमें वृहत्कथाके उपाख्यानोंका समावेश किया गया है। बाणभट्टरचित कादम्बरीकी कथाका बीज भी कथासरित्सागरमें है। इसी प्रकार बैताल पंचविंशतिकी सभी कथाएं कथासरित्सागरमें हैं। ग्रन्थ आरम्भसे अन्ततक पद्योंहीमें है। व्याडि, पाणिनि, वररुचि आदि वैयाकरण पंडितोंके तथा नरवाहनदत्त, त्रिविक्रमसेन आदि राजाओंकी कथाएं पुस्तकमें जहां तहां पाई जाती हैं। सोमदेवभट्ट भी ११ वीं शताब्दीके व्यक्ति हैं।

(२८) बिल्हण

यह भी एक प्रसिद्ध कश्मीरी कवि हैं और लोगोंने चौरकवि भी शायद इन्हींका नामान्तर रखा होगा। इनके बनाये ग्रंथोंके नाम चौरपञ्चाशिका, विक्रमाङ्कदेवचरित और कर्णसुन्दरी नाटिका हैं। इन्होंने और भी कई ग्रन्थ बनाये होंगे पर उक्त तीनको छोड़ शेषका पता नहीं लगता। कुछ पद्य सुभाषितावलिमें विल्हण कविके नामसे उद्धृत देख पड़ते हैं पर वे उक्त तीनों ग्रन्थोंमें न पाये जानेसे यह अनुमान पुष्ट होता है। चौरपञ्चाशिका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसके निर्माणके विषयमें एक ऊटपटांग कथानक मशहूर है कि बिल्हण जब गुजरातके राजा वैरिसिंहकी बेटी शशिकलाके शिक्षक नियत हुए तो राजकन्याके यौवन सौन्दर्यपर मोहित हो गुप्त गान्धर्व विवाह कर लिया। यह समाचार अति शीघ्र राजाके कानोंतक पहुंचा। राजाने कविको प्राणदण्डकी आज्ञा दी। वधस्थानपर पहुँचते पहुँचते कविने अपनी प्रियतमाके वर्णनमें ५० श्लोक रच डाले। जब राजाने इस काव्यरचनाका समाचार सुना तो प्रसन्न हो उसने न केवल कविके प्राणही छोड़ दिये किन्तु अपनी कन्या भी उसे विवाह दी। परन्तु यह कथानक असम्भव सा जान पड़ता है क्योंकि गुजरातका इस

वैरिसिंह संवत् ८७७ में मर गया और विक्रमांकदेवचरित द्वारा विदित होता है कि बिल्हण ११ वीं शताब्दीके प्रारंभमें कश्मीरसे बाहर निकले थे। गुजरातमें उस समय चालुक्यवंशी भीमदेवका पुत्र कर्णदेव राज कर रहा था। इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि बिल्हणको कुछ क्लेश मिला जिसे उन्होंने सोमनाथका दर्शन करके दूर किया। इस समय सोमनाथकी वह शोभा न रही होगी जैसी कि महमूद गजनवीकी चढ़ाईके पूर्व थी और जिसका वर्णन मार्शम्यान आदि इतिहासलेखकोंने किया है। यदि बिल्हणने गजनीके लुटेरेके आगमनसे पूर्व सोमनाथका दर्शन किया होता तो संभवतः वैरिसिंहके समकालीन होते। राजतरंगिणी और विक्रमांकदेवचरितसे यह बात नहीं सिद्ध होती कि महमूदसे पहले बिल्हण गुजरातमें पहुँच सके हों। राजतरंगिणीके द्वारा ज्ञात होता है कि कश्मीरके राजा कलशने संवत् ११२१से ११४५ तक राज किया। इसी राजाके समयमें बिल्हण कश्मीर देशको छोड़ भ्रमणके लिये बाहर निकले। विक्रमाङ्कदेवचरित द्वारा जाना जाता है कि बिल्हण मथुरा, कन्नौज, काशी, प्रयाग, अयोध्या, धारा, गुजरात आदि स्थानोंमें घूमते हुये सेतुबन्ध रामेश्वर तक गये थे। बूलरसाहब अनुमान करते हैं कि बिल्हण लगभग संवत् ११२२ में भारतवर्षके भिन्न भिन्न राजाओंके दरबारमें गये होंगे और अन्तमें जाके पश्चिमी चालुक्य राजा विक्रमादित्यके यहां रहे जिनके वर्णनमें उन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक काव्य बनाया। पश्चिमीय चालुक्य राजा विक्रमादित्य छठा संवत् ११२३ में राजगद्दीपर बैठा था। विक्रमादित्यके पिताका नाम सोमेश्वर था। विक्रमादित्यके उत्तराधिकारीका नाम भी सोमेश्वर मिलता है। विक्रमादित्यने संवत् ११८३ तक राज्य किया होगा।

बिल्हणने विक्रमाङ्कदेवचरितमें अपने वंशका कुछ वर्णन भी किया है। उन्होंने अपने पुरखोंका निवासस्थान खोनमुख नाम

कश्मीरका एक गाव बतलाया है। खोनमुखमें कौशिक गोत्रोत्पन्न वेद शास्त्रादिमें निपुण मुक्तिकलश नाम एक पंडित थे। मुक्तिकलशके पुत्रका नाम राजकलश और राजकलशके बेटेका नाम ज्येष्ठकलश था। ज्येष्ठकलशकी पत्नी नागादेवी बिल्हण कविकी माता थीं। बिल्हणके जेठे भाईका नाम इष्टराम और कनिष्ठ भाईका नाम आनन्द था।

बिल्हण शरीरमें आदर्श सुन्दर थे। यदि चौरपञ्चाशिकाका कथानक सत्य हो तो अचरज नहीं कि राजकन्या इनके गुणोंमेंसे सौन्दर्य हीको प्रधान समझ इनपर मुग्ध हुई हो। बिल्हणने कर्णसुन्दरी नाटिकाके मंगलाचरणमें नागानन्दकी नाई जिन (अर्हंतदेव) से सभासदोंके कल्याणार्थ प्रार्थना की है। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दीका प्रथम भाग है।

(२९) जयदेव

ये महाशय गीतगोविन्दके रचयिता अत्यन्त मधुर और ललित कविता बनानेके कारण प्रसिद्ध हैं। इन्होंने निज रचित गीतगोविन्दमें अपनी माताका नाम वामादेवी और पिताका नाम भोजदेव लिखा है। बंगालमें वीरभूमिसे कुछ दूर हटकर भागीरथीमें गिरनेवाला एक अजयनद है। इसी नदके तीरपर केंदुली नाम गांव जयदेवकी जन्मभूमि है। जयदेव बङ्गालके सेनवंशी राजा लक्ष्मणसेनकी राजसभामें उपस्थित थे और उमापतिधर आदिके समकालीन हैं। गीतगोविन्दमें जयदेवने उमापतिधर, शरण और धोयी कविका नामोल्लेख किया है। जान पडता है कि ये सब कवि राजा लक्ष्मणसेनके सभासद थे।

पृथ्वीराज रासोके रचयिता कविचन्दने बारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें जो अपना ग्रन्थ लिखा उसमें गीतगोविन्दका उल्लेख किया है। गीतगोविन्दकी संस्कृतमें अनेक टीकाएं हैं। सबसे प्राचीन भगवती भवेशके पुत्र मैथिल कृष्णदत्तकी है। पण्डित लोग गीतगोविन्दको बडा आदर देते हैं और लोग

वैरिसिह संवत् ८७७ में मर गया और विक्रमाकदेवचरित द्वारा विदित होता है कि विल्हण ११ वो शताब्दीके प्रारम्भमें कश्मीरसे बाहर निकले थे। गुजरातमें उस समय चालुक्यवशी भीमदेवका पुत्र कर्णदेव राज कर रहा था। इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि बिल्हणको कुछ क्लेश मिला जिसे उन्होंने सोमनाथका दर्शन करके दूर किया। इस समय सोमनाथकी वह शोभा न रही होगी जैसी कि महमूद गजनवीकी चढाईके पूर्व थी और जिसका वर्णन माशेश्यान आदि इतिहासलेखकोंने किया है। यदि बिल्हणने गजनीके लुटेरेके आगमनसे पूर्व सोमनाथका दर्शन किया होता तो सभवत वैरिसिंहके समकालीन होते। राजतरंगिणी और विक्रमाकदेवचरितसे यह बात नही सिद्ध होती कि महमूदसे पहले बिल्हण गुजरातमें पहुँच सके हों। राजतरगिणीके द्वारा ज्ञात होता है कि कश्मीरके राजा कलशने सवत् ११२१से ११४५ तक राज किया। इसी राजाके समयमें बिल्हण कश्मीर देशको छोड भ्रमणके लिये बाहर निकले। विक्रमाङ्कदेवचरित द्वारा जाना जाता है कि बिल्हण मथुरा, कन्नौज, काशी, प्रयाग, अयोध्या, धारा, गुजरात आदि स्थानोंमें घूमते हुये सेतबन्ध रामेश्वर तक गये थे। बूलरसाहब अनुमान करते हैं कि बिल्हण लगभग सवत् ११२२ में भारतवर्षके भिन्न भिन्न राजाओंके दरबारमें गये होंगे और अन्तमें जाके पश्चिमी चालुक्य राजा विक्रमादित्यके यहा रहे जिनके वर्णनमें उन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक काव्य बनाया। पश्चिमीय चालुक्य राजा विक्रमादित्य छठा सवत् ११२३ में राजगद्दीपर बैठा था। विक्रमादित्यके पिताका नाम सोमेश्वर था। विक्रमादित्यके उत्तराधिकारीका नाम भी सोमेश्वर मिलता है। विक्रमादित्यने सवत् ११८३ तक राज्य किया होगा।

बिल्हणने विक्रमाङ्कदेवचरितमें अपने वंशका कुछ वर्णन भी किया है। उन्होंने अपने पुरखोंका निवासस्थान खोनमुख नाम

(३१) श्रीहर्ष ।

ये महाकवि और दार्शनिक भी थे। कन्नौजके जिस राजा जयचन्द्रने कि संवत् १२०७ से १२५१ तक राज्य किया और अन्तमें भारतका विनाश किया उसीके दर्बारमें श्रीहर्ष उपस्थित थे। कुछ लोग उन्हें काव्यप्रकाशके रचयिता मम्मटभट्टका भाजा बतलाते हैं। बंगालमें आदिशूरने जिन पांच ब्राह्मणोंको कान्यकुब्ज देशसे बुला भेजा था उनमेंसे श्रीहर्ष भी एक हैं। पर ये श्रीहर्ष वही हैं या दूसरे इसका निर्णय कठिन है। श्रीहर्षने नैषधीय चरित नामक काव्य २२ सर्गोंमें लिखा जिसमें विदर्भ देशकी राजकुमारी दमयन्तीका निषध देशके राजा नलके साथ विवाहका वर्णन है। यह काव्य बहुत ललित मनोहर परन्तु क्लिष्ट है। श्रीहर्षने अपने पिताका नाम श्रीहरि और माताका मामल्लदेवी लिखा है। श्रीहर्षका लिखा एक और भी प्रसिद्ध ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य नामक है जो दार्शनिकोंके लिये परमोपयोगी है। कन्नौजके राजा जयचन्द्रके समयमें होनेके कारण श्रीहर्षको बारहवीं शताब्दीका व्यक्ति अनुमान करते हैं।

ये प्रसिद्ध राघवपाण्डवीय श्लेष काव्यके रचयिता हैं। जिसमें इन्होंने एकही शब्दोंमें रामायण तथा महाभारतकी कथाओंका वर्णन किया है। श्लेष रचनामें लोग इन्हें सुबन्धुका समकक्ष गिनते हैं। कविराज नामही जान पड़ता है, कदाचित् उपाधि हो। ये कवि आसाम जयन्तीपुरके निवासी और राजा कामदेवके सभासद थे। कविराजने अपनी पुस्तकमें भोजके चाचा मुंजका उल्लेख भी किया है। इनका समय बारहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध अनुमान करते हैं।

(३२) कल्हण

ये महाशय कश्मीरके प्रसिद्ध और प्रामाणिक इतिहासलेखक हैं और इन्होंने संवत् ११४८ में राजतरंगिणी लिखी। इस ग्रन्थसे

कहते हैं कि भगवान श्रीकृष्णजी स्वयं इसके गानसे प्रसन्न होते हैं। संस्कृत साहित्यप्रेमियोंके बीच जयदेव कृत गीतगोविन्दका बहुत ही अधिक प्रचार है। जयदेव भगवानके परमभक्त और विद्याव्यसनी थे। उड़ीसा प्रान्तके किसी ब्राह्मणने अपनी पद्मावती नामक कन्याको जयदेवके हाथ समर्पण किया यह जयदेवकी परम प्यारी पत्नी और पतिव्रता स्त्रियोंके बीच आदर्श थी। अपने गुणोंसे जयदेव अनेक राजसभाओंमें पूजित और लब्धप्रतिष्ठ हुये। जयदेवका जीवनकाल ग्यारहवीं शताब्दीका माना जाता है।

(३०) गोवर्द्धनाचार्य

ये महाकवि गीतगोविन्दके रचयिता जयदेव तथा उमापतिधर महाकवियोंके समकालीन हैं। गीतगोविन्दमें जयदेवने इनका उल्लेख करके बड़ाई की है कि शृंगाररसकी कविता करनेमें इनकी टक्करका कोई नहीं है। आर्यासप्तशती नाम ग्रन्थ इनका बनाया है। गोवर्द्धनने अपने पिताका नाम नीलाम्बर लिखा है। निज ग्रन्थमें वाल्मीकि, व्यास, गुणाढ्य, कालिदास, भवभूति आदिका उल्लेख भी किया है। राढदेशमें मल्लभूमिकी राजधानी विष्णुपुर है। वहाँके राजाके आश्रित मुरारि कवि संवत् १२३५के पूर्व विद्यमान था, उसने अपनेको कवि गोवर्द्धनका पुत्र बताया है। कौन जाने यह गोवर्द्धनाचार्य उन्हीं मुरारिके पिता हों। गोवर्द्धनने अपने शिष्यका नाम उदयन लिखा है। कदाचित् यही उदयन प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य हों* जयदेवके समकालीन होनेसे गोवर्द्धनाचार्यका समय भी ११ वीं शताब्दीका मानना उचित है। यह लक्ष्मणसेनकी सभामें थे।

---

* न्यायकुसुमाञ्जलिके कर्ता प्रसिद्ध न्यायाचार्य उदयन गोवर्द्धनाचार्यके शिष्य थे। बलभद्राचार्य गोवर्द्धनाचार्यके भाई थे, जिन्होंने "न्यायलीलावती" बनायी है "आर्यासप्तशती" में इन्हीं दोनोंका उल्लेख 'उदयन-बलभद्राभ्यां शिष्यसोदराभ्यां' कहकर किया गया है।

मारेंगे। स्वयं दुःख उठायेंगे, छटपटायेंगे, परन्तु दूसरोंको दुःख न देंगे।"

"जो अहिंसा-धर्मका पूरा पूरा पालन करता है, उसके चरणों पर सारा संसार आ गिरता है।"

"अहिंसाका वास्तविक अर्थ यह है कि तुम किसी मनुष्य (प्राणी)का चित्त मत दुखाओ और जो तुम्हें अपना शत्रु समझता हो उसके प्रति भी अपने हृदयमें कोई बुरा भाव न रखो। जो मनुष्य अहिंसाके सिद्धान्तपर चलता है उसका कोई शत्रु रहही नहीं जाता।"

"जीवनदान सब दानोंसे बढ़कर है। जो मनुष्य वास्तवमें जीवनदान करता है वह सब प्रकारकी शत्रुताका नाशकर देता है। वह परस्पर उत्तम विचारों और भावोंके लिये मार्ग तैयार कर देता है।"

"सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और न "अहिंसा परमो-धर्म" "से बढ़कर कोई आचार।"

"जहा सत्य और धर्म है केवल वहीं विजय है।"

"भारतवर्षमें 'शरीर-बल सत्य है' इस सूत्रके बदले 'सत्यमेव जयते' का ही आदर होगा।"

"सत्यकी कभी हत्या नहीं हो सकती।"

"मेरा विश्वास है कि धर्म-शून्य जीवन सिद्धान्तशून्य जीवन होता है, और सिद्धान्तशून्य जीवन बेपतवारके जहाजकी भांति है। जैसे पतवार रहित जहाज इधरसे उधर मारा मारा फिरता है और कभी उद्दिष्ट स्थानतक नहीं पहुँच सकता वैसेही धर्म-हीन मनुष्य भी ससारसागरमें इधर उधर भटकता है, कभी अपने उद्दिष्ट स्थानतक नहीं पहुँचता।

"देशहितका भाव दृढ धार्मिकतासे जाग्रत होनेपर वह खूब अच्छी तरह विकसित होता है।"

"वज्रके समान कठोर हृदयवाला भी आत्म-बलकी अग्निमें

कश्मीरका इतिहास जानने तथा भारतकी अनेक प्रसिद्ध घटनाओंके समय-निर्णयमें सहायता मिलती है कल्हण बड़े पण्डित, अनुभवी और प्रवीण ग्रन्थकार थे। प्राचीन पुस्तकोंकी देखभाल करके ब्योरेवार कश्मीरका इतिहास इन्होंने बड़ी निपुणतासे लिखा है।

—हरिमंगल मिश्र

४ महात्मा गांधीकी दिव्यवाणी।

"हमारे भाई यदि ईश्वर और आत्माके अस्तित्वका विश्वास करते होंगे तो वे इस बातको सहजही स्वीकार कर लेंगे कि शासक हमारे शरीरके मालिक हैं, उसे वे चाहे कैद करें, देश निकाला दें या फांसीपर लटकावें। पर देशनिवासियोंके मन, आकांक्षाएं, अन्त करण और आत्माएं सदा-सर्वदा आकाशमें उड़नेवाले पक्षीकी तरह स्वाधीन हैं, तीखे तीखे बाणभी उनतक नहीं पहुँच सकते।"

"जिसका ईश्वरके सिवा और कोई अवलंब नहीं है, वह जानताही नहीं कि संसारमें पराभव भी कोई चीज है।"

"यदि संसारको आत्माके अस्तित्वका विश्वास हो तो इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि शारीरिक बलकी अपेक्षा आत्मिक बल कहीं श्रेष्ठ है। यह प्रेमका वह पवित्र सिद्धान्त है जिससे पर्वत भी हिल जाते हैं।"

"भारत आत्म-बलसे सब कुछ जीत सकता है। आत्माकी शक्तिके आगे शरीरकी शक्ति तृणवत् है।"

"आत्माका ज्ञान प्राप्त करना हमारा सबसे पहला और आवश्यक कर्त्तव्य है। आत्म-ज्ञान चरित्रके द्वारा प्राप्त होता है। चरित्रवान् व्यक्ति सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, अपरिग्रह, निर्भयता आदि व्रतोंका पालन करते हुए देखे जाते हैं। वे प्राण दे देंगे पर सत्यको न छोड़ेंगे। स्वयं मर जायगे, पर दूसरोंको न

मारेंगे। स्वय दु ख उठायेंगे, छटपटायेंगे, परन्तु दूसरोंको दु ख न देंगे।"

"जो अहिंसा-धर्मका पूरा पूरा पालन करता है, उसके चरणों पर सारा ससार आ गिरता है।"

"अहिंसाका वास्तविक अर्थ यह है कि तुम किसी मनुष्य (प्राणी)का चित्त मत दुखाओ और जो तुम्हें अपना शत्रु समझता हो उसके प्रति भी अपने हृदयमें कोई बुरा भाव न रखो। जो मनुष्य अहिंसाके सिद्धान्तपर चलता है उसका कोई शत्रु रहही नहीं जाता।"

"जीवनदान सब दानोंसे बढकर है। जो मनुष्य वास्तवमें जीवनदान करता है वह सब प्रकारकी शत्रुताका नाशकर देता है। वह परस्पर उत्तम विचारों और भावोंके लिये मार्ग तैयार कर देता है।"

"सत्यसे बढकर कोई धर्म नही है और न "अहिंसा परमो-धर्म" "से बढकर कोई आचार।"

"जहां सत्य और धर्म है केवल वहीं विजय है।"

"भारतवर्षमें 'शरीर-बल सत्य है' इस सूत्रके बदले 'सत्यमेव जयते' का ही आदर होगा।"

"सत्यकी कभी हत्या नही हो सकती।"

"मेरा विश्वास है कि धर्म-शून्य जीवन सिद्धान्तशून्य जीवन होता है, और सिद्धान्तशून्य जीवन बेपतवारके जहाजकी भांति है। जैसे पतवार रहित जहाज इधरसे उधर मारा मारा फिरता है और कभी उद्दिष्ट स्थानतक नहीं पहुँच सकता वैसेही धर्म-हीन मनुष्य भी ससारसागरमें इधर उधर भटकता है, कभी अपने उद्दिष्ट स्थानतक नहीं पहुँचता।

"देशहितका भाव दृढ धार्मिकतासे जाग्रत होनेपर वह खूब अच्छी तरह विकसित होता है।"

"वज्रके समान कठोर हृदयवाला भी आत्म-बलकी अग्निमें

पिघल सकता है। यह अतिशयोक्ति नहीं, गणितके अङ्कोंके समान सच है।"

भिन्न भिन्न धर्म एकही स्थानपर पहुँचनेके मार्ग हैं, अगर हम भिन्न भिन्न रास्तोंसे अपने उद्दिष्टस्थानको जाते हैं तो इसमें हर्ज क्या है?"

"सत्याग्रह विशुद्ध आत्मिक शक्ति है, आत्मा सत्यका स्वरूप है। इसीलिये इस शक्तिको सत्याग्रह कहते हैं। आत्मा ज्ञानमय है। उसमें प्रेम-भाव प्रज्ज्वलित होता है। अज्ञानवश यदि हमें कोई कष्ट देगा तो हम उसको प्रेम-भावसे जीत लेंगे। प्रेमके वश होकर संसार चलता है।"

"सत्याग्रही अपने शरीरकी परवा नहीं रखते। वे जिस बातको सत्य समझते हैं उसे छोडते नहीं। वे शत्रुका नाश नहीं चाहते, शत्रुको दबाते नहीं, किन्तु उसपर दयाभाव रखते हैं।"

"जिसने सत्याग्रहके लिये सर्वस्व त्याग दिया उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया क्योंकि उसके पास सन्तोष ही सुख है। और नहीं तो सुख किसने पाया है? अन्य सुख मृगजलके समान हैं। ज्यों ज्यों उनके निकट जानेका उद्योग कीजिये त्यों त्यों वे दूर होते जाते हैं।"

"सत्याग्रही वही हो सकता है जिसकी धर्ममें सच्ची निष्ठा हो। 'मुखमें राम बगलमें छुरी' को निष्ठा नहीं कहते। धर्मका नाम लेकर उलटे काम करना धर्म नहीं है।"

"दया-बल ही आत्म-बल अथवा सत्याग्रह है। इस बलकी सिद्धिके प्रमाण पग पगपर मिलते हैं। यदि यह बल न होता तो पृथ्वी कभीकी रसातल पहुँच गयी होती।"

"सत्याग्रह दुधारी तलवारकी तरह है, उसका उपयोग हर तरहसे हो सकता है। वह बून्दभर रक्त गिराये बिना चलाने वालेका भी कल्याण करती है और जिसपर चलायी जाती है उसका भी। उसके परिणाम बहुत ही गूढ़ और गहन होते हैं।

न तो उसमें मोरचा लगता है और न कोई उसे चुरा सकता है। सत्याग्रही आपसके मुकाबलेमें भी कभी नहीं थकते। सत्याग्रहकी तलवारके लिये न तो किसी म्यानकी जरूरत होती है और न कोई जबरदस्ती उसे छीन ही सकता है।"

"सच्चा वीर वही है जो गोलियोंकी वर्षामें भी अपने स्थानपर दृढतापूर्वक खड़ा रहे। राजा अम्बरीष ऐसेही वीर थे। वे अपने स्थानपर बराबर खड़े रहे, यद्यपि दुर्वासाने उनके साथ जो कुछ बुरासे बुरा करना चाहा वह सब कुछ कर डाला, तथापि उन्होंने उँगली तक न उठायी।"

"पश्चिमी या युरोपियन सभ्यता कोई चीज नहीं है, यह हालहीकी है। यह सिर्फ इसी दुनियाकी बातोंसे सम्बन्ध रखती है।"

"पश्चिमी सभ्यता निरीश्वरी है, भारतकी ईश्वरी। यह समझकर भारत भूमिके हितेच्छुओंको अपनी सभ्यतासे उसी प्रकार लिपटे रहना चाहिये जिस प्रकार बच्चा मासे लिपटा रहता है।"

"सभ्यता उस आचरणका नाम है, जिससे मनुष्य अपना कर्त्तव्य पालन करता रहता है। नीतिका पालन करना अपने मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखना है। ऐसा करनेसे हम अपनेको पहचान सकते हैं। यही सभ्यता है, इसके विरुद्ध जो है वह असभ्यता है।"

"भारतीय सभ्यताकी प्रवृति नीतिको दृढ करनेकी ओर है। पाश्चात्य सभ्यताका झुकाव अनीतिको दृढ करनेकी ओर है।"

"हम सदाचारद्वारा ईश्वरके कृपापात्र हो जायँ तो फिर जैसी कि उसने प्रतिज्ञा कर रखी है, हमें किसी बातकी कमी न होगी। यही सच्चा 'अर्थशास्त्र' है। हमें इसे प्रेमपूर्वक अंगीकार कर अपने दैनिक व्यवहारोंमें इसका आचरण करना चाहिये।"

"मेरी दृढ धारणा है कि कोई मनुष्य उस समयतक बड़ा

काम अथवा राष्ट्रोन्नति करनेमें समर्थ नहीं हो सकता जब-तक उसके आचरण सच्चे न हों और उसके वचनोंका मूल्य न हो।"

"जो लोग जातीय सेवा करना चाहते हों अथवा जो लोग वास्तविक जीवनका आनन्द लेना चाहते हों, चाहे वे विवाहित हों या अविवाहित, उन्हें सदा ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिये।"

"खाने-पीने और विषयवृत्तियोंको सन्तुष्ट करनेमें हम पशुओंके समान हैं, लेकिन क्या आपने कभी किसी घोड़े या गौमें उतना अधिक चटोरापन देखा है जितना अधिक चटोरापन हम लोगोंमें होता है ? क्या आप समझते हैं कि अपने खाद्य पदार्थों-की संख्याको उस सीमातक पहुँचा देना कि जहां हमें स्वयं अपनी दशाका भी ज्ञान न रहे, वास्तविक जीवन और सभ्यताका चिह्न है ?"

"खाने और बोलनेके सम्बन्धमें जिसने जिह्वाकी चपलता पर अधिकार जमा लिया उसने मानों सबको अपने वशमें कर लिया।"

"निश्चय समझ रखिये कि अगर हमारा जीवन संयममय हो जायगा तो हम जो चाहेंगे प्राप्त कर सकेंगे।"

"प्राचीन कालमें जीवन का आधार संयम था, पर आजकल ऐश आराम हो रहा है। नतीजा यह हुआ है कि हम निर्बल होकर कायर हो गये हैं।"

"शिक्षाको जीविकाका साधन बनाना नीच काम है। कमाईका साधन शरीर है, फिर आत्मापर यह बोझ क्यों लादा जाय ?"

"मस्तिष्कमें भरे हुए ज्ञानका जितना अंश काममें लाया जाय उतनेहीका कुछ मूल्य है, बाकी सब व्यर्थ भाररूप है।"

"बालकके लिये लिखना पढ़ना सीखने और दुनियाको जान-

कारी प्राप्त करनेके पहले इस बातका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है कि आत्मा क्या है, सत्य क्या है, प्रेम क्या है और आत्माके अन्दर कौन कौन शक्तिया छिपी हुई हैं।"

"इस बातका ज्ञान प्राप्त करना बालककी वास्तविक शिक्षाका एक आवश्यक अङ्ग होना चाहिये कि वह जीवन सग्राममें प्रेमके द्वारा घृणापर, सत्यके द्वारा असत्यपर और कष्ट-सहनके द्वारा बल प्रयोगपर सहजमें विजय प्राप्त कर सके।"

"भारतवासियोंको मशीनका बना हुआ कोई कपडा न पहनना चाहिये, चाहे वह युरोपकी मिलका बना हुआ हो चाहे भारतकी मिलोंका।"

"मशीनें आधुनिक सभ्यताके मुख्य चिह्न हैं। मेरी दृष्टिमें वे स्पष्ट रूपसे महापाप हैं।"

"मिलोंकी बदौलत जो लोग करोड़पति बन बैठे हैं उनकी नीति औरोंसे अच्छी नहीं हो सकती। निर्धन भारतके लिये मुक्तिकी कुछ आशा है, पर अनीति भरे धनवान भारतके लिये कुछ भी आशा नहीं। पैसा मनुष्यको नीच बना देता है। इसकी जोडकी इससे मिलती जुलती दूसरी वस्तु विषयासक्ति है। दोनों न सर्प दशनसे भी अधिक भयङ्कर हैं। सांपका दशन देहकी बलि लेकरही शान्त हो जाता है परन्तु धन या विषयासक्तिका दशन शरीर, प्राण, मन सब कुछ लेकर भी पीछा नहीं छोडता। इसलिये देशमें मिलोंकी संख्या बढनेपर खुश होना नादानी है।"

"साधारणत यह कहा जा सकता है कि आर्थिक या पैदिक सुखोंकी वृद्धिसे कभी किसी प्रकारकी नैतिक उन्नति नहीं हो सकती।"

"भारत रेलों, वकीलों और डाक्टरोंकी बदौलत कङ्गाल हुआ है। ये चीजें ऐसी हैं कि यदि आप समय रहते सावधान न हुए तो ये आपको चारों ओरसे घेर लेंगी।"

डाक्टर हमको धर्म भ्रष्ट करते हैं। उनकी बहुतसी दवाइयोंमें चर्बी अथवा मदिरा मिली रहती है। इनमेंसे एक वस्तु भी हिन्दु अथवा मुसलमानके कामकी नहीं है।"

"औषधालय पापके मूल हैं। इनके कारण लोग शरीरकी रक्षासे उदासीन हो जाते हैं और अनीतिकी वृद्धि करते हैं।"

"अस्पताल ऐसे साधन हैं जिन्हें शैतान अपने राज्यपर अधिकार रखनेके लिये, अपना काम चलानेके लिये व्यवहारमें ला रहा है। उनसे दोष, कष्ट, पतन और वास्तविक गुलामी और भी स्थायी होती जाती है। यदि गर्मी, सूजाक आदि इन्द्रिय सम्बन्धी रोगोंके लिये और यहांतक कि क्षयीके लिये भी अस्पताल बिलकुल न होते तो हम लोगोंमें क्षयी और इन्द्रिय सम्बन्धी रोग बहुत ही कम होते।"

"भारतका कल्याण इसीमें है कि गत पचास वर्षोंमें उसने जो कुछ सीखा है वह भूल जाय। रेल, तार, अस्पताल, वकील, डाक्टर आदि किसीको न रह जाना चाहिये। जो लोग उच्च वर्गके कहलाते हैं उन्हें विवेक और धर्म भावके साथ सादे कृषक-जीवनको जीवनदाता और सच्चा सुख समझना चाहिये और वही जीवन बिताना चाहिये।"

"मेरी धारणा है कि हिन्दु-समाज रूपी इमारतके अबतक स्थिर रहनेका कारण यह है कि उसकी रचना जाति-भेदकी नींवपर हुई है।"

"जाति-भेद हिन्दू धर्मका बडा भारी बल और मूलमन्त्र है।"

"हमें अस्पृश्यताकी कल्पनाका दोष धर्मसे अवश्य दूर कर देना होगा। इसके बिना प्लेग, हैजे आदि रोगोंकी जड नहीं कट सकती।"

"अन्त्यजोंके धन्धोंमें नीचताकी कोई बात नहीं है। डाक्टर और हमारी माताएं भी तो वैसे ही काम करती हैं।

"यदि हम लोगोंमें उन भाषाओंके प्रति आदर न होगा जिन्हें

हमारी माताएं बोलती हैं तो हमारा राष्ट्र कभी स्वराज्यभोगी न होगा।"

"यदि हमको अपनी भाषापर अरुचि हो, अपने कपड़े अच्छे न लगें, अपना पहनावा पोशाक बुरी मालूम हो, अपनी चोटीसे शरम आवे, अपनी वायु और भोजन अच्छा मालूम न हो, अपने आदमी अपने साथ रहनेके योग्य न जान पड़ें, अपनी सभ्यता अच्छी न लगे और विदेशी सब कुछ अच्छा मालूम हो तो फिर स्वराज्यसे मतलब ही क्या ?"

"स्वाधीनता और गुलामी मनके खेल हैं। जिसका मन स्वाधीन है वह विष्ठाका टोकरा उठाते भी राजा है।"

"जबतक हिन्दू, मुसलमान, या ईसाई सभी लोग एक मात्र ईश्वरको अपना लक्ष्य न बनावेंगे, सत्यके मार्गपर न चलने लगेंगे, अपनी प्राचीन नम्रताको फिरसे धारण न करेंगे, स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर परमार्थका आश्रय न लेंगे, तबतक राजनीतिमें वे चाहे जितना पुरुषार्थ करें, उससे कुछ भी सुधार न होगा।"

"सत्य, प्रेम और अहिंसापर जबतक हमारी अचल श्रद्धा न होगी, तबतक हम उन्नति नहीं कर सकते। इन बातोंको छोड़कर अगर हम युरोपकी सभ्यताका अनुकरण करेंगे तो हमारा नाश हो जायगा।"

"यदि कोई मनुष्य तुम्हें जल पिलावे और उसके बदलेमें तुम भी उसे जल पिला दो तो तुम्हारा यह काम कुछ भी नहीं है। शोभा इसीमें है कि अपकार करनेवालेके साथ भी तुम उपकार करो।"

"हमारे धर्मका मूल कर्त्तव्य-पालनसे मिल सकता है तो आप सदा अपने कर्त्तव्यकाही ध्यान रखिये। कर्त्तव्य-पालनमें आपको कभी किसी मनुष्यसे डरनेकी आवश्यकता न होगी। केवल परमेश्वरसे डरना होगा।"

"हमने धर्मकी लगन छोड दी। वर्त्तमान-युगके ववण्डरमें हमारी समाजरूपी नाव नयी सभ्यताके तूफानमें पडी हुई है कोई लङ्गर नहीं रहा इसीसे इस समय इधर उधरको डगमगा ती हमें बहा रही है।"

'आध्यात्मिक दृष्टिसे हमारे देशको तभी वस्तुत. प्राधान्य मिलेगा जब उसमें सुवर्णकी अपेक्षा सत्यकी, ऐश्वर्यकी अपेक्षा निर्भयताकी, देहासक्तिकी अपेक्षा परोपकारक समृद्धि देख पडेगी।"

"प्रेम आत्माका रूप है। उसका गुण आत्मिक है। यदि प्रेममें हमारा विश्वास होगा तो प्रेम शक्तिके द्वारा हम सारे संसारको हिला दे सकते हैं।"

"केवल अपने पडोसियोंसे ही प्रेम मत कीजिए, केवल अपने मित्रोंसे ही प्रेम मत कीजिये, बल्कि उन लोगोंसे भी प्रेम कीजिये जो आपके शत्रु हैं।"

"जबतक हिन्दू, मुसलमान या ईसाई ईश्वरसे लगन नहीं लगाते, सचाईके रास्ते नहीं चलते, अपनी असली नम्रताको फिरसे धारण नहीं करते और स्वार्थको तिलाञ्जलि देकर पर-मार्थको नहीं पकडते तबतक राजनैतिक विषयोंमें चाहे जितना उद्योग करें कुछ लाभ न होगा।"

"तुम्हें संसारभरका भार उठानेको कोई नहीं कहता। ऐसा सोचना भी अहंकारका लक्षण है। हमें चाहिये कि जो उचित है उसे कर्त्तव्य समझकर करते रहें।"

"धर्मका पालन खाडेकी धारपर चलनेके बराबर है। लेकिन उसी हिसाबसे उसका फल भी बडा भारी है। तुमने अपना धर्म पाला? इसी सवालके जवाबपर हिन्दुस्तानका भविष्य निर्भर है।"

"दुराग्रही मनुष्य तेलीके बैलकी तरह चक्कर लगाता रहता है यह गति है, प्रगति नहीं। और सत्याग्रही सदा आगेही बढता रहता है।" —महात्मा गांधी

५. लाल फीता

१

जाड़ेके दिन थे। डिप्टी हरिविलास बालबच्चोंके साथ दौरे-पर थे। बड़े दिनकी तातील हो गयी थी इसलिये तीनों लड़के भी आये हुए थे। बड़ा-शिवविलास लाहौरके मेडिकल कालेजमें पढ़ता था। मँझला सतविलास इलाहाबादमें कानून पढ़ता था और छोटा श्रीविलास लखनऊके ही एक स्कूलका विद्यार्थी था। शाम हो रही थी। डिप्टी साहब अपने तम्बूके सामने एक पेड़के नीचे कुर्सीपर बैठे हुए थे। इलाकेके कई जमींदार भी मौजूद थे।

एक मुसलमान महाशयने कहा, हजूर आजकल तालमें चिड़िया खूब हैं। शिकार खेलनेका अच्छा मौका है।

दूसरे महाशय बोले, हुजूर जिस दिन चलनेको कहें बेगार ठीक कर लिये जायं। दो तीन डोंगिया भी जमा कर ली जायं।

शिवविलास—क्या अभीतक आप लोग बेगार लेते ही जाते हैं?

"जी हां, इसके बगैर काम कैसे चलेगा। मगर हां, अब मारपीट बहुत करनी पड़ती है।"

एक ठाकुर साहब बोले, जबसे गांवके मनई बसरामें मजूर होके गये तबसे कोऊका मिजाजै नहीं मिलत। बाततक नों सुनत नहीं हैं। ई लड़ाई हमका मलियामेट कै दिहेस।

शिवविलास—आप लोग मजूरी भी तो बहुत कम देते हैं।

ठाकुर—हजूर, पहले दिनभरे क दुइ पैसा देत रहेन, अब तो चार देइत है तानोंपर कोऊ बिना मार गारी खाये बात नहीं सुनत है।

शिवविलास—खूब, चार पैसे तो आप मजदूरी देते हैं और चाहते हैं कि आदमियोंको गुलाम बना लें? शहरोंमें कोई मजदूर ।।) से कममें नहीं मिल सकता।

मुसलमान महाशयने कहा, हजूर बजा फरमाते हैं। चार दसेमें तो एक वक्तकी रोटियां भी नहीं चल सकतीं। मगर यहांकी रिआया सख्तीकी ऐसी आदी हो गई है कि हम चाहे [illegible] ही क्यों न दें पर बिला सख्ती किये मुत्तातिय ही नहीं होती। हां, यह तो बतलाइये हजूर, यह आजकल क्या हवा फिर गयी है कि जहा देखिये वही मदरसे बन्द होते जाते हैं। सुनता हूं बड़े बड़े कालिज भी टूट रहे हैं। इससे तो तालीमका बडा नुकसान होगा।

बाबू हरिविलासको मालूम था कि शिवविलास इसका क्या जवाब देगा। उसके राजनीतिक विचारोंसे परिचित थे। दोनों आदमियोंमें प्राय इस विषयपर वाद विवाद होता रहता था। लेकिन वह न चाहते थे कि इन जमीदारोंके सामने वह अपने स्वाधीन विचार प्रकट करे। शिवविलासको बोलनेका अवसर न देकर आपही बोले, मैं तो इसे पागलपन समझता हू, निरा पागल पन। यह लोग समझते हैं कि इन कार्रवाइयोंसे वह हमारी सरकारको परास्त कर देंगे। कुछ लोग देहातोंमें पञ्चायतें भी बनाते फिरते हैं। इसका मतलब भी यही है कि सरकारी अदालतोंकी जड खोदी जाय, लेकिन कोई इन भलेमानसोंसे पूछे कि क्या कानूनकी गुत्थियां इन देहातियोंके सुलझाये सुलझ जायँगी। जिस कानूनके पढने और समझनेमें उमरें गुजर जाती हैं उसका व्यवहार यह हलकुत्ते क्या खाकर करेंगे। शासनकी बुनियाद परम्परासे सत्य और न्यायपर स्थित रही है और जबतक शासक लोग इस मूल तत्त्वको भूल न जाय राज्यकी अवनति नहीं हो सकती। हमारी सरकारने सदैव इस आदर्शको अपने सामने रखा है। प्रत्येक जातिको, प्रत्येक व्यक्तिको उस रेखातक कर्म और वचनकी पूर्ण स्वाधीनता दे दी है कि जहातक उससे [illegible] को कोई हानि न हो। यही न्यायप्रियता हमारी सरकारको बनाये हुए है। जोर दिया जा रहा है कि लोग

छोड दें। इस उद्देश्यका पूरा होना और भी कठिन है। मैं यह मानता हूं कि कर्मचारी लोग बडी संख्यामें इस नीतिपर चलें तो सरकारके काममें बाधा पड सकती है लेकिन ऐसा होना असंभवसा जान पडता है। कर्मचारियोंमें अच्छे और बुरे दोनों ही हैं। जो बुरे हैं वह नौकरी कभी न छोडेंगे इसलिये कि बेई-मानी और रिश्वतके ऐसे अवसर और कहीं नहीं मिल सकते। जो अच्छे हैं उनके लिये भी यहा जातिसेवा और उपकारका बडा विस्तृत क्षेत्र है। उन्हें किसीपर अन्याय करनेके लिये मजबूर नहीं किया जाता। सरकार किसी गुप्त और प्रजाघातक नीतिका व्यवहार नहीं करती। ऐसी दशामें यह लोग भी पृथक् नहीं हो सकते। नौकरीको गुलामी कहकर उसकी निन्दा की जाती है। लेकिन मैं उस वक्ततक इसे गुलामी नहीं समझ सकता जब तक हमें अपने धर्म और आत्माके विरुद्ध चलनेपर विवश न किया जाय। जमींदारोंने यह बातें बडे ध्यानसे सुनीं। ऐसा जान पडता था कि इस विषयमें सबके सब बाबू हरिविलाससे सहमत हैं। हां, शिवविलास इन युक्तियोंका प्रतिवाद करनेके लिये अधीर हो रहे थे पर इतने आदमियोंके सामने मुँह खोलनेका साहस न होता था।

इतनेमें बेगारने चिट्ठियोंका थैला लाकर डिप्टी साहबके आगे रख दिया। यद्यपि शहर यहासे १५ मीलके लगभग था पर एक बेगार प्रतिदिन डाक लानेके लिये भेजा जाता था। डिप्टी साहबने उत्सुकताके साथ थैला खोला तो उसमें लाल फीतेसे बँधा हुआ एक सरकारी "कम्युनिक" (प्रकाशपत्र) निकल पडा। उसे गौरसे पढने लगे।

२

आधी रात जा चुकी थी किन्तु हरिविलास अभीतक करवटें बदल रहे थे। मेजपर लैम्प जल रहा था। वह उसी लाल फीतेसे

बँधे हुए पत्रको बारबार देखते और विचारोंमें डूब जाते थे। वह लाल फीता उन्हें न्याय और सत्यके खूनमें रँगा हुआ जान पड़ता था। किसी घातककी रक्तमय आँखें थीं जो उनकी ओर घूर रही थीं, या एक ज्वालाशिखा जो उनकी आत्मा और सत्य ज्ञानको निगल जानेके लिये उनकी ओर लपकी चली आती थी। वह सोच रहे थे, अबतक मैं समझता था कि मेरा कर्त्तव्य न्यायपर चलना है। अब मालूम हुआ कि यह मेरी भूल थी। मेरा कर्त्तव्य न्यायका गला घोंटना है, नहीं तो मुझे ऐसे आदेश क्यों मिलते? क्या समाचारपत्रोंका पढ़ना भी कोई अपराध है? क्या दीन किसानोंकी रक्षा करना भी कोई पाप है? मैं ऐसा नहीं समझता। मुझे उन साधु सन्यासियोंपर कड़ी दृष्टि रखनेका हुक्म दिया गया है जो धर्मोपदेश करते हुये दिखाई दें। यही नहीं, मुझे यह भी देखना चाहिये कि कौन गजी गाढ़ेके कपड़े पहने हुये हैं, किसके सिरपर कैसी टोपी है, उस टोपीपर कैसी छाप लगी हुई है। चरखा चलानेवालोंपर भी नजर रखनी चाहिये। मुझे उन लोगोंके नाम भी अपने रोजनामचेमें दर्ज करने चाहिये, जो राष्ट्रीय पाठशालायें खोलें, जो देहातोंमें पंचायतें बनायें, जो जनताको नशेकी चीजें त्याग करनेका उपदेश करें। इस आज्ञाके अनुसार वह भी राजद्रोही हैं जो लोगोंमें स्वास्थ्यके नियमोंका प्रचार करें, ताऊन और हैजेके प्रकोपमें जनताकी रक्षा करें, उन्हें मुफ्त दवायें दें। सारांश यह कि मुझे जातिके सेवकोंका, हितैषियोंका, शत्रु बनना चाहिये इस लिये कि मैं भी शासनका एक अंग हूँ।

उन्होंने एकबार फिर लाल फीतेकी ओर देखा। हाँ, तो इस दशामें मेरा कर्त्तव्य क्या है? अपनी जातिका साथ दूँ या विजातीय सरकारका? इस समस्याका कारण यही है कि हमारे शासक विजातीय हैं और उनका स्वार्थ प्रजाके हितसे भिन्न है। वह अपनी जातिके स्वार्थके लिये, गौरवके लिये, व्यापारिक उन्नतिके लिये यहाँके लोगोंको अनन्त कालतक इसी दशामें रखना चाहते

हैं। इसीलिये ये प्रजाके राष्ट्रीय भावोंको जागते देखकर उनको दबानेपर तुल जाते हैं। उन्हें वह सरल व्यवस्थायें भी आपत्तिजनक जचने लगती हैं जिन्हें प्रजा अपने आत्मसुधारके लिये करती है। नहीं तो क्या पदत्यागके उपदेश भी सरकारकी आखोंमें खटकते? शासनका मुख्य धर्म है प्रजाकी रक्षा, न्याय और शान्तिका विधान। अबतक मैं समझता था कि सरकार इस कर्त्तव्यको सर्वोपरि समझती है, इसीलिये मैं उसका सेवक था। जब सरकार अपने धर्मपथसे हट जाती है तो मेरा धर्म भी यही है कि उसका साथ छोड़ दूं। अपने स्वार्थके लिये देशका द्रोही नहीं बन सकता। सरकारसे मेरा थोड़े दिनोंका नाता है, देशसे जन्मभरका। क्या इस स्थायी अधिकारके गर्वमें अपने स्थायी सम्बन्धको भूल जाऊं? इस अधिकारके लिये मुझे देशका शत्रु बनना पड़ेगा। क्या देशको अपने स्वार्थपर न्योछावर कर दूं। एक तो वह हैं जो देशसेवापर आत्मसमर्पण कर देते हैं, उसके लिये नाना प्रकारके कष्ट झेलते हैं, एक मैं अभागा हूं जिसका काम यह है कि उन देशसेवकोंकी जानका ग्राहक बनूं। लेकिन यह सम्बन्ध तोड़ दूं तो निर्वाह कैसे हो? जिन बच्चोंको अबतक सभी सुख प्राप्त थे उन्हें अब दरिद्रताका शिकार बनना पड़ेगा। जिस परिवारका पालन पोषण अबतक अमीरोंके ढंगपर होता था उसे अब रो रोकर दिन काटने पड़ेंगे। घरकी जायदाद मेरी शिक्षाकी भेंट हो चुकी, नहीं तो कुछ खेतीबारी ही करके गुजर करता। वही तो मेरा मौरूसी पेशा था। कैसा सतोषमय जीवन था, अपने पसीनेकी कमाई खाते थे और सुखकी नींद सोते थे। इस शिक्षाने मुझे चौपट कर दिया, विलासका दास बना दिया, अनावश्यक आवश्यकताओंकी बेड़ी पैरोंमें डाल दी। अब तो उस पुराने जीवनकी कल्पना मात्रसे प्राण सूख जाता है।

हा! हृदयमें कैसी कैसी अभिलाषायें थीं, कैसे कैसे

मोदक खाता था। शिवविलास विलायत जाकर डाक्टरी पढ़नेका स्वप्न देख रहा है। सन्तविलासको वकालतकी धुन सवार, छोटा श्रीविलास अभीसे सिविल सरविसकी तैयारी कर रहा है। अब इन सभोंके मन्सूबे कैसे पूरे होंगे। लड़कोंको तो खैर छोड़ भी दूं तो वह किसी न किसी तरह गुजर कर ही लेंगे, लड़कियोंको क्या करूं। सोचा था इनका विवाह उच्च कुलमें करूंगा, जातिका भेद मिटा दूंगा। यह मनोकामना भी पूरी होती नहीं दीखती। कहीं दूसरी जगह नौकरीकी तलाश करूं तो इतना वेतन कहां मिला जाता है। रईसोंके दरबारमें पहुंचना कठिन है सरकारकी अवज्ञा करनेवालेको धर्ती आकाश कहीं ठिकाना नहीं। परमात्मन्, तुम्हीं सुझाओ क्या करूं!

इन्हीं चिन्ताओंमें पड़े पड़े उन्हें नींद आ गयी।

२

आठवें दिन उन्हें खबर मिली कि इस इलाकेमें मादक वस्तुओंका निषेध करनेके लिये किसानोंकी एक पंचायत होनेवाली है, उपदेश होंगे, भजन गाये जायँगे और लोगोंसे मद्यत्यागकी प्रतिज्ञा ली जायगी। हरिविलास मानते थे कि नशेके व्यसनसे देशका सर्वनाश हुआ जाता है, यहांतक कि नीची श्रेणीके मनुष्योंको तो इसने अपना गुलाम बना लिया है, अतएव इसका बहिष्कार सर्वथा स्तुत्य है। पहले एकबार वह मादक वस्तु-विभागमें रह चुके थे, और उनके समयमें इस विभागकी आम-दनी खूब बढ़ गई थी। उस वक्त इस प्रश्नको वह अधिकारियोंकी आंखसे देखते थे। टेम्परेन्सके
विरोधी समझते थे। लेकिन इस ल
काया ही पलट दी थी। सरकारी
मात्र भी विश्वास न रहा था।
कर्तव्य था कि

यदि उसके त्यागके लिये किसीकेसाथ सख्ती या तिरस्कार करते पायें तो तुरन्त उसे बन्द कर दें। मनुष्योचित और पदोचित कर्त्तव्योंमें घोर सग्राम हो रहा था। इसी बीचमें हल्केका दरोगा कई सशस्त्र कान्सटेबलों और चौकीदारोंके साथ आ पहुचा और सलाम करनेको हाजिर हुआ। हरिविलास उसकी सूरत देखते ही लाल हो गये, जैसे फूसमें आग लग जाय। कठोर स्वरसे बोले, आप यहा कैसे आये?

दारोगा—हजूरको इस पंचायतकी इत्तला तो मिलीही होगी। वहा फिसाद होनेका खौफ है। इसलिये हजूरकी खिदमतमें हाजिर हुआ हू।

हरिविलास—मुझे इसका कोई भय नही है। हा, आपके जानेसे फिसाद हो सकता है।

दारोगाने विस्मित होकर कहा, "मेरे जानेसे!"

हरिविलास—हा, आपके जानेसे। रिआयाको आपसमें लडाकर आप अपना उल्लू सीधा करते हैं। मैं आपके हथकडोंसे खूब वाकिफ हू। आपको मेरे साथ चलनेकी जरूरत नहीं।

दारोगा—सुपरिंटेंडेंट साहब बहादुरका सख्त हुक्म है कि इस मौकेपर हजूरकी खिदमतमें हाजिर रहू।

हरिविलास—तो क्या आप मुझे नजरबन्द करने आये हैं।

दारोगाने भयभीत होकर कहा, हजूरकी शानमें मुझसे ऐसी

हरिविलास—मैं तुम्हारे साहबका गुलाम नही हू।

दारोगा—तो मेरे लिये क्या आर्डर होता है?

हरिविलास—जाकर अपने साफेको जला डालिये और वरदीको फाडकर फेंक दीजिये और इस गुलामीकी जंजीरको जो आपकी कमरमें है और जिसे आप हुकूमतका निशान समझते हैं तोडकर आजाद हो जाइये। सरकारी हुक्मोंकी बहुत तामील कर चुके, डाके और चोरीकी खूब तफतीश की और हरामका

माल खूब जमा किया। अब जाकर कुछ दिन घर बैठिये और अपने पापोंका प्रायश्चित्त कीजिये। रिआयाकी जान व मालकी हिफाजत करनेका स्वांग भरकर उनको अजाबमें न डालिये। यह किसानोंकी पञ्चायत है, लुटेरोंका जत्था नहीं है, सब एक जगह बैठकर नशेबाजी बन्द करनेकी तदबीरें सोचेंगे। आपको मेरे साथ चलनेकी मुतलक जरूरत नहीं है।

बाबू हरिविलासका मुखमण्डल विमल क्रोधसे उत्तेजित हो रहा था और आखोंसे ज्योति निकल रही थी। दारोगाजीपर रोब छा गया, और यह सोचते हुये कि याती इन्होंने आज शराब पी है या इनपर कोई सख्त सदमा आ पडा है, थाने चले गये। यह शब्द बाबू हरिविलासके अन्त करणसे निकले थे। यह उनके अन्तिम निश्चयकी घोषणा थी। दारोगाजीने इधर पीठ फेरी उधर उन्होंनें अपना इस्तीफा लिखना शुरू किया।

"महाशय! मेरा विश्वास है कि शासन सत्ता ईश्वरीय इच्छाका बाह्य स्वरूप है और उसके नियम भी ईश्वरीय नियमोंकी भांति दया, सत्य और न्यायपर अवलम्बित हैं। मैंने इसी विश्वासके अधीन २० वर्षतक सरकारकी सेवा की। जब कभी मेरे आत्मिक आदेश और सरकारी हुक्ममें विरोध हुआ मैंने यथा-साध्य आत्माका आदेश पालन किया। मैंने अपनेको कभी प्रजाका स्वामी नही समझा, सदैव सेवक समझता रहा। इस-लिये सरकारी पत्र नं०—तारीख—में जो आज्ञा दी गई है वह मेरी आत्मा और धर्मके इतनी विरुद्ध है और उसमे न्यायकी हत्या की गयी है कि मैं उसका पालन करना घोर पाप सम-झता हू। मेरे विचारमें वर्त्तमान शासन सत्पथसे सम्पूर्णत विच-लित हो गया है। यह आज्ञा प्रजाके जन्मसिद्ध स्वत्वोंको छीनना और उनके राष्ट्रीय भावोंको वध करना चाहती है। यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि शासकवृन्द प्रजाको अनन्त कालतक मूर्खता और अज्ञानमें व्यस्त रखना चाहते हैं और उसकी जागृतिसे सशंक

हैं। वह अपने उत्थान और सुधारके लिये जो प्रयत्न करना चाहती है उसे भी ताड़नीय समझते हैं। ऐसे शासनमें, ऐसे दुष्कार्य्यमें योग देना अपनी आत्मा, विवेक और जातीयताका खून करना है। अतएव अब मुझे इस राज संस्थासे असहयोग करनेके सिवा, और कोई उपाय नहीं है। मैं अपना पदत्याग करता हूं और प्रार्थना करता हूं कि मुझे बिना विलम्ब इस बन्धनसे मुक्त किया जाय।"

४

बाबू हरिविलासने समझा था कि इस्तीफा मंजूर होनेमें कुछ देर लगेगी लेकिन दूसरेही दिन तारद्वारा उसकी मंजूरी आ गयी। उनकी जगहपर एक महाशय नियुक्त हो गये। हरिविलासने बड़ी खुशीसे चार्ज दिया, किन्तु शाम होते होते उनकी यह खुशी गायब हो गयी और अनेक चिन्ताओंने आ घेरा। बजाजके कई सौ रुपये बाकी थे, नौकरोंका वेतन भी बाकी पड़ा हुआ था, बंगलेका किराया ६ महीनेसे न दिया गया था हलवाईका हिसाब-किताब चुकाना था, ग्वालेके कुछ रुपये आते थे। इधर वह इजलासपर बैठे हुए चार्ज दे रहे थे उधर उनकी कोठीके द्वारपर लेनदारोंकी भीड़ लगी हुई थी। वह चार्ज देकर लौटे तो यह समूह देखकर उनका दिल बैठ गया। यों वह कुछ हाल और कुछ बकायाके रुपये अपनी सुविधाके अनुसार दे दिया करते थे। लेकिन आज जब हाल और बकाया दोनोंही चुकाना पड़ा तो यह रकम इस तरह बढ़ी जैसे साफ फर्शको हटा देनेसे नीचे गर्दका एक ढेर दिखाई देने लगता है। उन्हें अबतक यह अनुमान ही न हुआ था कि मैं इतने रुपयोंका देनदार हूं। सेविंग बैंककी सारी बचत इसी फुटकर हिसाबके चुकानेमें समाप्त हो गयी। अब घोड़े, टमटम आदिकी भी जरूरत न थी। उन्हें नीलाम करके हाथमें कुछ रुपये कर लिये। गांव आनेकी तय्यारियां हो गयीं।

५

हरि०—तुम कब जाओगे सन्तू ?

सन्त—मैं भी १५ जनवरीको जाऊंगा।

हरिविलास—तुम्हें कितने रुपयोंकी जरूरत होगी ? इसी महीनेमें तो तुम्हें इम्तहानकी फीस भी देनी होगी ?

सन्त—जी हां, कोई ढाई सौकी जरूरत है।

हरिविलास—(बगलें झाकते हुए) इससे कममें काम न चलेगा ?

सन्त—असम्भव है, छ महीनोंकी पेशगी फीस देनी है, इम्तहानकी फीस, बोर्डिंगकी फीस, सभी तो चुकानी है। एक सूट भी बनवाना चाहता हूं। मेरे पास कोई अच्छा सूट नहीं है।

हरिविलास—इस समय सूट रहने दो, फिर बनवा लेना, हां फीसका प्रबन्ध मैं कर दूंगा। इससे कहां मुक्ति ? पढ़ो तो मुश्किलसे ५ महीने और फीस दो पूरे सालकी।

सन्त—तो फिर कुछ न दीजिये, मैं स्वयं कोई प्रबन्ध कर लूंगा। आपके ऊपर खामख्वाह बोझ नहीं डालना चाहता।

हरिविलास—यह तुम्हारी बुरी आदत है कि जरा जरासी बातपर बिढ़ जाते हो। मेरी हालत देख रहे हो, फिर भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलतीं।

सन्त—तो क्या आपकी इच्छा है कि मैं भी कालेजसे नाम कटा लूं।

हरिविलास—यह तो मेरी इच्छा नहीं है लेकिन अब तुम्हें अवस्थानुसार अपना खर्च घटाना पड़ेगा। मुझे यह देखकर खेद होता है कि वर्तमान दशाओंका तुम्हारे ऊपर बिलकुल असर नहीं हुआ। आजकल समस्त देश सरल जीवनकी ओर झुका हुआ है। कोई मनुष्य अपने ठाटबाट, टीमटामपर गर्व करनेका साहस नहीं कर सकता। रेशमी वस्त्र और डासनके जूते और सुनहरे

चश्मे अब तुच्छ दृष्टिसे देखे जाते हैं। विशेषत शिक्षित समुदायके विलासप्रेमको तो जनता सर्वथा अक्षम्य समझती है। शिक्षित लोगोंसे अब सेवा और उत्सर्गकी आशा की जाती है। वकीलोंपर अब सम्मानकी दृष्टि नहीं पड़ती, लोग उनसे विमुख होते जा रहे हैं। धनलोलुप अध्यापकोंको जनता घृणाकी निगाहसे देखती है। मैंने स्वार्थवश तुम्हें वकालतके लिये प्रेरणा की थी किन्तु अब मुझे विश्वास होता जाता है कि हमारी जातिकी अवनतिका एक मुख्य कारण यही पेशा है। इसकी बदौलत हमारी अदालतोंमें न्याय सर्वसाधारणके लिये अलभ्य हो रहा है। जब एक एक पेशीके लिये दो दो, चार चार सौ, यहा तक कि दो दो चार हजार लिये जाते हैं तो स्पष्ट है कि यह समय या परिश्रमका मूल्य नहीं बल्कि लोगोंकी ईर्षा और दुर्जनताका व्याज है। जिस पेशेका आधार मानवदुर्बलताओंपर हो वह समाजके लिये कभी मगलकारी नहीं हो सकता। मैं तुम्हारे इरादोंमें विघ्न नहीं डालना चाहता, लेकिन यदि तुम वकालतको न्यायरक्षाके लिये नहीं, पेश आरामके लिये ग्रहण करना चाहते हो तो बेहतर है कि तुम इसे तिलाजलि दे दो।

सन्तविलासने कुछ उत्तर न दिया। खिन्न होकर वहासे उठ गये। तब बाबू हरिविलासने श्रीविलाससे पूछा तुम तो इम्तहानकी तैयारी कर रहे हो?

श्रीविलास—जब आप कह रहे हैं कि दौलतवालोंकी आजकल कोई कदर नहीं है तो फिर ऐसी शिक्षासे क्या फायदा जिसका उद्देश्य केवल धन कमाना है। मेरा भी नाम कटवा दीजिये। मैं आपकी सेवामें रहना चाहता हू। मेरा इरादा खेती करनेका है। अंजनी भी मेरी मदद करेगी। आखिर आप देहातमें चलकर कुछ न कुछ खेती जरूर ही करायेंगे। मुझको इस कामके लिए तैयार कर दीजिए।

हरिविलासके मुखमडलपर लाली

दीं। सुमित्रासे बोले, लो श्रीविलासने तुम्हारी चिन्ताओंका अन्त कर दिया। तुम सोच रही थीं कि कैसे क्या होगा। चलकर आरामसे गांवमें रहो। यह खेती करेगा, तुम आरामकी नींद सोओ और रामका नाम लो।

६

इसके तीसरे ही दिन बाबू हरिबिलास अपने गांवमें आ गए। मकान बेमरम्मत पड़ा हुआ था, आगे पीछे घास जम गई थी, गांववालोंने द्वारपर खाद और कूड़ेके ढेर लगा दिये थे। इधर वह कई सालसे घर न आये थे। साफ बंगलोंमें रहनेके आदी हो गये थे। उनके देखते यह घर झोंपड़ेसे भी बदतर था। शिवविलासने असबाब उतारा और झाड़ू लेकर द्वारकी सफाई करने लगा। अंजनी भी घरमें झाड़ू देने लगी। श्रीविलास कुछ देरतक तो खड़ा देखता रहा, फिर टोकरी लेकर कूड़ा फेंकने लगा। गांवमें यह खबर फैल गयी कि हरिविलासने गांधी महात्माके हुक्मसे इस्तीफा दे दिया। लोग इधर उधरसे आने लगे। कोई उनको सत्यवादी कहता था कोई कहता था रिश्वत ली है, बर्खास्त हो गये हैं तो यह बहाना कर रहे हैं। हरिविलास एक टूटी खाटपर उदास बैठे हुए थे, सुमित्रा भीतर खड़ी सोच रही थी, कि यह कूड़ेका पहाड़ क्योंकर हटेगा। पहले यह लोग जब घर आते थे तो गांवके लोग सकोचवश इनके समीप न आते थे। इनके ठाटबाटकी सामग्रियोंको कौतूहलकी दृष्टिसे देखते थे पर कुछ बोलनेकी हिम्मत न पड़ती थी। किन्तु अबकी वह विस्मयकारी वस्तुयें न थीं, न लड़कोंमें वह शेखी थी, न हरिविलास और सुमित्रामें वह बड़प्पनकी ऐंठ। अतएव सबके सब उनसे सहानुभूति करने लगे। स्त्रियां अंजनीके साथ घरकी सफाई करने लगीं, कई आदमियोंने शिवविलासके हाथसे झाड़ू छीन लिया और कूड़ा फेंकने लगे।

रामभरोसे पण्डितने कहा, भैया, भला कियो, इस्तीफा दे दिहेव, देस बिदेस मारे मारे फिरत रह्यो। घर माटीमें मिला जात रहा।

शेख ईदू बोले, चाकरी चाहे छोटी हो या बड़ी ही चाकरी ही है। जब अल्लाहने घरमें सब कुछ दिया है तो काहेको काऊकी, बन्दगी उठाई जाय।

ईदू—बाबू, तुम अब आपन जमीन छोड़ाय लेव और मजेसे खेती करो। चाकरी बहुत दिन किह्यो, अब कुछ दिन गिरहस्तीक मजा लेव। उतना सुख तो न पैहो पर चोला आनन्द रही। परदेशमा जौन कमात रहे होइहौ तौन सब कपड़ा लत्ता, कुरसी, मेच, मेवा, मिठाईमा उड़ जात रहा होई। २५-३०) का तो दूध पी जात रहा होइहौ, ३०-४०) से कम घरका किराया न परत रहा होई। तुम्हार कुल खेत छूट जाय तो मजेसे चार हरकी खेती होय लागे।

हरिविलासने सकोचसे मुस्कुराकर कहा, रुपये कहाँसे लाऊ ? सब आदमियोंने उनकी ओर सदिग्ध भावसे देखा, मानों, यह कोई अनोखी बात कह रहे हैं। अन्तमें भोजू बोला, का कहत हौ भैया, कौन बहुत रुपैया है। तीन चार हजार तो तुम्हरे सदूकके एक कोनेमें धरा होई। इतनी बड़ी तलब पावत रह्यो, नजर नियाज लेते रहे होइहौ इतना सब कहा उडायो ?

हरि—मैंने रिशवत कभी नहीं ली। मासिक वेतनमें खर्च ही कठिनतासे चलता था बचत कहाँसे होती।

भोजू—बेटा, तब तो तुम्हार चाकरी गुनाह बेलज्जत है। नहीं, अस सुबस का होइहौ, दस बीस हजार तो होवै करी।

हरि—नहीं चचा, सच मानो मैं बिलकुल खाली हाथ हूँ।

भोजू—तब गुजर बसर कसस होई ?

हरि-ईश्वर मालिक है।

यही बातें हो रही थीं कि गावके जमींदार ठाकुर करनसिंह

अपने दो मुसाहिबोंके साथ हाथीपर आते दिखायी दिये। लोग तुरन्त चारपाइयोंसे उठ बैठे। हरिविलासके सामने ऐसे कितने ही जमींदार नित्य सलाम करने आया करते थे। पर करनसिंहको देखकर वह भी खड़े हो गये। हाथी रुका। करनसिंह उतर पड़े और हरिविलासका हाथ पकड़कर उन्हें चारपाईपर बैठाकर आप भी बैठ गये।

हरिविलासने कुशल समाचार पूछा। ठाकुरने श्रद्धापूर्ण भावसे कहा, यह भूमि आपके चरणोंसे पवित्र हो गयी। अब यहां सब कुशल है। कल प्रात काल पत्र खोला तो आपहीके आनन्द समाचारपर नजर पड़ी। आपके साहस और पुरुषार्थको धन्य है। मुझे महीनोंसे ज्वर आता था पर सत्य मानिये यह शुभ समाचार देखतेही मैं चंगा हो गया। महीनोंसे दवाइयां खा रहा था चारपाईसे उठना कठिन था। आज आपकी सेवामें खड़ा हूं। यह आपके पदार्पणका शुभ फल है। परमात्माने हम लोगोंका उद्धार करनेके लिये आपके हृदयमें यह प्रेरणा की। हमने इधर कुछ दिनोंसे पंचायत स्थापित की है। उसका कोई ऐसा सरपंच नहीं मिलता था जिसपर जनताको विश्वास हो। आपको परमात्माने उसका बेड़ा पार करनेके लिये भेजा है। उसके प्रधानका आसन ग्रहण करके ... कीजिये। जूहीके राजा साहब, वगदाके खां ... दुनीचन्द उसके सदस्य हैं। मैं उनकी ओरसे यह सेवामें आया हूं।

... हुये कहा,

समझते हैं ... पर ...

अधिकारी

लोग हों ... मैं

आप पहले एक

आपका अधिकार है। क्या छोटे क्या बड़े सब आपको पूज्य समझते हैं। आपको मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ेगी।

हरिविलास इस सम्मानपदके भारसे सिर न उठा सके। करनसिंहने उठकर फूलोंका हार उनके गलेमें डाल दिया।

इसके बाद करनसिंह एक क्षणतक किसी विचारमें डूबे रहे। जान पड़ता था कुछ कहना चाहते हैं पर सकोचके मारे ज़बान नहीं खुलती। अन्तमें लजाते हुए बोले, बाबूजी मेरी एक प्रार्थना तो आपने मान ली, अब मुझे एक दूसरी प्रार्थना करनेका साहस हो रहा है। आज्ञा हो तो कहूं।

हरिविलास—शौकसे कहिये मैं सहर्ष आपकी सेवा करूंगा। करनसिंहने जेबसे एक बन्द लिफाफा निकाला और बोले,- मैं इसे आपके चरणोंपर समर्पण करनेकी आज्ञा चाहता हूं।

हरिविलासने दबी हुई आंखोंसे लिफाफेकी तरफ देखा। लिखा था। —

"रेहन नामा रामविलास महतो, मौजा निदोपुर।"

उनकी आंखोंमें एहसानके आंसू भर आये। कुछ कहना चाहते थे किन्तु करनसिंहने उन्हें बोलनेका अवसर न दिया। उसी दम लिफाफेको फाड़कर फेंक दिया और लोग चकित हो रहे थे कि क्या माजरा है। हरिविलासने उनकी ओर देखकर कहा, आपलोगोंको मालूम हुआ यह कैसा लिफाफा था? यही दादाका लिखा हुआ रेहननामा था। यह कहते कहते उनका कंठस्वर रुक गया।

प्रेमचन्द

६ विद्यार्थियोंको उपदेश

छात्रगण और बन्धुवर्ग! आपने मुझे सम्मेलनके इस अधिवेशनका सभापति बनाकर चिरबाधित किया है। मैं पचीस वर्षसे विद्यार्थियोंके साथ निकट सम्बन्ध रखता आया हू। विद्यार्थियोंका पहला परिचय मुझे दक्षिण अफ्रीकामें प्राप्त हुआ। विलायतमें मैं हमेशा विद्यार्थियोंसे मिलता था। हिन्दुस्तान वापस आनेपर हर जगह विद्यार्थियोंके साथ मिलता जुलता रहा हू। उन लोगोंकी मुझपर असीम प्रीति रही है। आज मुझे सभापतिका आसन प्रदान करना, हिन्दीमें व्याख्यान देने देना तथा इस सभाकी कार्यवाही हिन्दीमें होने देना आपकी प्रीतिका परिचय देता है। इस प्रेमका मैं पात्र बनू और विद्यार्थी-वर्गकी कुछ सेवा कर सकू तो मैं अपनेको कृतार्थ मानूगा। आपका यह निश्चय करना कि इस सभाकी कारवाई इस प्रान्तकी मातृभाषामें,—जो राष्ट्रीय भाषा भी है,—की जाय, आपको दूरदर्शिताका परिचय देता है। इसके लिये मैं आपको बधाई देता हू। मुझे आशा है कि आप इस सिलसिलेको कायम रखेंगे। हम लोगोंने मातृभाषाका निरादर किया है। इस पापका कठिन फल हमको अवश्य भोगना पड़ेगा। हममें और हमारे घरके लोगोंमें कितना अन्तर हो गया है, इसके साक्षी सभी समागत सज्जन हैं। हमने जो कुछ सीखा वह हम न अपनी माताओंको समझाते हैं, न समझा सकते हैं। हम जो शिक्षा प्राप्त करते हैं उसका प्रचार अपने घरमें न हम करते हैं न कर सकते हैं। यह दुःसह परिणाम अंग्रेज कुटुम्बोंमें नहीं देखा जाता है। विलायत या दूसरे मुल्कोंमें, जहा मातृभाषामें शिक्षा दी जाती है वहा लडके पाठशालाओंमें जो पढते या सीखते हैं, वह घरके नौकरों तथा दूसरे लोगोंको भी मालूम होता है। इस तरह जो शिक्षा लडकोंको पाठशालाओंमें

है उसका नफा घरवाले भी उठाते हैं। हम तो अपनी पाठशालाओंमें जो पढते हैं उसको वहीं छोड आते हैं। विद्या बहुत आसानीसे फैलती है, वह हवाके समान फैलनेवाली है। लेकिन, हम अपनी विद्याको कृपणके धनकी भांति अपने ही मनमें रखते हैं, उसका फायदा दूसरोंको नही मिलता है। मातृभाषाका निरादर माताके निरादरके समान है। जो मातृभाषाका निरादर करता है वह स्वदेशभक्त कहलानेके योग्य नहीं है। बहुतसे लोगोंको यह कहते सुना है कि हमारी भाषाओंमें हमारे उच्च विचार प्रकट करने योग्य शब्द नहीं हैं। सज्जनों, यह कुछ भाषाका दोष नहीं है, भाषाको बनाना, बढाना हमारा ही कर्त्तव्य है। एक समय था, जब अंगरेजीभाषाकी भी यही अवस्था थी। अँगरेजी अँगरेजोंके बढानेसे बढी। यदि हम मातृभाषाकी उन्नति न कर सकें और हमारा सिद्धान्त यह हो कि अँगरेजीहीके द्वारा हम अपने उच्च विचार प्रकट कर सकेंगे और पढा सकेंगे तो हम सदाके लिये गुलाम बने रहेंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जबतक हमारी मातृभाषामें हमारे सब विचारोंको प्रकट करनेकी शक्ति न आ जायगी, जबतक हम वैज्ञानिक शास्त्रोंको मातृभाषामें न समझा सकेंगे तबतक जातिमें जीवन नहीं आ सकता। यह स्वयं सिद्ध है कि—

(१) सर्वसाधारणको नये ज्ञानकी आवश्यकता है।

(२) सर्वसाधारण कदापि अँगरेजी नहीं समझ सकते हैं।

(३) अँगरेजी पढनेवाले ही नया ज्ञान पा सकते हैं। सर्वसाधारणको उसका मिलना असम्भव है।

इसका मतलब यह हुआ कि यदि पहले दो पद ठीक हैं तो जाति नष्ट हो जायगी। लेकिन भाषामें दोष नहीं है। तुलसीदासजीने अपने दिव्य विचारोंको भाषामें बतलाया है। रामायणकी तुलनाकी पुस्तकें बहुत कम हैं। जो गृहस्थाश्रमी रहते हुए भी सर्वत्यागी हो गए हैं, ऐसे महान् देशभक्त, भारतभूषण,

परिडत मदनमोहन मालवीयजीको अपने विचारोंको हिन्दीमें प्रकट करनेमें कठिनाई नहीं मालूम पडती है। उनका अँगरेजी व्याख्यान चांदीसा चमकता हुआ कहा जाता है, लेकिन जैसे मानसरोवरमेंसे निकलती हुई गङ्गाकी धारा सूर्यकी किरणोंसे सुवर्णकी भांति झलकती है वैसे ही श्रीमान् पण्डितजीका हिन्दी व्याख्यानप्रवाह भी झलकता है। मैंने कितनेही मौलानाओंको वाज देते सुना है, वे लोग बडी आसानीसे अपने बडे बडे विचार अपनी मातृभाषामें प्रकट कर सकते हैं। तुलसीदासकी भाषा सम्पूर्ण है, अविनाशिनी है। इस भाषामें हम अपने भावोंको न प्रकाशित कर सकें तो दोष हमारा है।

इस त्रुटिका कारण स्पष्ट है। हमारी शिक्षाका माध्यम अँगरेजी है। इस बडे दोषको दूर करनेमें सभी मदद कर सकते हैं। मेरा विचार है कि विद्यार्थीवर्ग इस विषयमें सरकारसे विनीत प्रार्थना कर सकता है। इसके साथ साथ तात्कालिक उपाय विद्यार्थियोंको यह भी है कि जो कुछ पाठशालामें पढते हैं, उसका अनुवाद यथासम्भव प्रतिदिन हिन्दीमें कर लें और घरमें आकर परस्पर व्यवहारमें मातृभाषाका ही प्रयोग करनेकी प्रतिज्ञा करें। एक हिन्दुस्तानीका दूसरे हिन्दुस्तानीको अँगरेजी भाषामें पत्र लिखना मुझे असह्य है। मैंने लाखों अँगरेजोंको बातचीत करते सुना है। वे दूसरी भाषा बोल सकते थे, लेकिन आजतक मैंने दो अंगरेजोंको आपसमें दूसरी भाषामें बोलते नहीं सुना है। जो अत्याचार हम हिन्दुस्तानमें कर रहे हैं उसका उदाहरण इस जगतके इतिहासमें अन्य कहीं नहीं मिल सकता है।

एक वेदान्ती कविने लिखा है कि विना विचारकी शिक्षा मिथ्या है। लेकिन उपरोक्त कारणोंसे विद्यार्थीजीवन विशेष विचारशून्य जान पडता है। विद्यार्थी तेजविहीन हो गये हैं उनमें नवीनता नहीं है। अधिकांश विद्यार्थी निरुत्साही देख पडते

है। मुझे अँगरेजी भाषासे द्वेष नहीं है। इस भाषाका भाण्डार अटूट है। यह राज्यभाषा है, ज्ञान द्रव्यसे भरी हुई है। तथापि, मेरा मन्तव्य है कि समस्त हिन्दुस्तानियोंको यह भाषा सीखनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु इस विचारके विषयमें अभी विशेष कहना नहीं चाहता। विद्यार्थी अँगरेजी पढ रहे हैं, जबतक दूसरा प्रबन्ध नहीं होता या प्रचलित पाठशालाओंमें परिवर्तन नहीं होता तबतक विद्यार्थियोंके लिये दूसरा रास्ता नहीं है। इसलिये मैं इस मातृभाषाके महान् विषयको यहीं समाप्त करता हूं। आपसे इतनी ही प्रार्थना करता हूं कि आपसके व्यवहारमें और जहा जहा हो सके वहाँ वहा सब कोई मातृभाषाका ही प्रयोग करें और विद्यार्थियोंके सिवाय जो महाशय यहा उपस्थित हैं वे मातृभाषाको शिक्षाका माध्यम बनानेके लिये भगीरथ प्रयत्न करें।

मैंने ऊपर कहा है कि बहुतसे विद्यार्थी उत्साहहीन देखनेमें आये हैं। बहुतसे विद्यार्थियोंने प्रश्न किया है कि हमें क्या करना चाहिये। हम देशसेवा किस तरह कर सकते हैं? आजीविकाके लिये विद्यार्थीवर्ग बहुत चिन्तित रहता है। इन प्रश्नोंका उत्तर सोचनेके पहले शिक्षाका उद्देश्य क्या है, यह विचार आवश्यक है। इसलिये साहबने कहा है कि शिक्षाका उद्देश्य चरित्रनिर्माण है। भारतवर्षके ऋषि मुनियोंने कहा है, कि वेदादि सम्पूर्ण शास्त्र जाननेपर भी यदि मनुष्य आत्माको न पहचान सके, सर्व-बन्धन मुक्त होने योग्य न बने तो उसका ज्ञान व्यर्थ है। दूसरा वाक्य यह है कि जिसने आत्माको जाना है वह सब कुछ जानता है। अक्षरज्ञान बिना भी आत्मज्ञान होना सम्भव है। पैगम्बर मुहम्मद साहबने अक्षरज्ञान नहीं पाया था, ईसामसीहने किसी पाठशालामें विद्याभ्यास नहीं किया था, इससे यह कहना कि इन महात्माओंने आत्माको नहीं पहचाना था, धृष्टता होगी। ये हमारे विद्यालयोंमें परीक्षा देने योग्य नहीं थे, तथापि हम इनको पूज्य समझते हैं। विद्याका सब फल इनको मिल गया था।

ये लोग महात्मा थे, इनकी देखादेखी हम विद्यालयोंको छोड दें तो हम भ्रष्ट हो जायगे। लेकिन हमको भी अपने लिये आत्म-ज्ञान चरित्र हीसे मिलता है। चरित्र क्या है? सदाचारी, सत्य-व्रत, अहिंसा, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, अस्तेय, निर्भयता आदि व्रतोंके पालन करनेमें प्रयत्नवान रहता है। वह प्राण दे देगा, किन्तु सत्य नहीं छोडेगा, वह स्वय मर जायगा किन्तु दूसरोंको नही मारेगा, वह स्वय दुःख सहेगा पर दूसरोंको दु ख नहीं देगा अपनी स्त्रीको भी विषयका भाजन न समझ मित्र रूपसे देखेगा। सदाचारी इस तरह ब्रह्मचर्य्यका पालनकर-यथाशक्ति शारीरिक स्वत्वकी रक्षा करता है। वह न चोरी करता है न रिश्वत लेता है, न किसी दूसरेका न अपना समय गँवाता है, वह अकारण धन सचय नही करता है। विलासिता नहीं करता और निकम्मी चीजोंका केवल व्यसनके लिये व्यवहार नही करता है। वह सादगीमें सन्तोष रखता है। आत्माको अच्छी तरह समझता है। आधि, व्याधि, उपाधिका भय छोडता है, चक्रवर्तीसे भी नहीं दबता और निर्भय अपना काम करता जाता है।

यदि हमारे विद्यालयोंमें उपरोक्त शिक्षा नहीं मिलती तो यह विद्यार्थीकी, शिक्षाकी, वा शिक्षककी, अथवा तीनोंकी गलती होगी, लेकिन चरित्रकी त्रुटि दूर करनेका उपाय करना विद्यार्थीके ही हाथमें है। यदि वह चरित्रवान नहीं होना चाहेगा तो शिक्षक या पुस्तक उसको यह वस्तु नहीं दे सकते हैं। इसीलिये मै कह आया हू कि शिक्षाका उद्देश्य समझना आवश्यक है। चरित्रवान बननेकी इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी हर पुस्तकमेंसे चारित्र्यका दोहन कर लेगा। तुलसीदासने कहा है।

जड चेतन गुण दोष मय विश्व कीन्ह कर्तार।

सत हस गुण गहहिं पय परिहरि वारि विकार॥

रामचन्द्रकी मूर्त्तिके दर्शनके पिपासु तुलसीदासको कृष्णकी

मूर्त्ति रामरूपसे दृ ष्टिगोचर हुई। हमारे कितने ही विद्यार्थी विद्यालयके नियम पालनमात्रके लिये बाईबल क्लासमें जाते हैं पर बाईबलकी शिक्षासे अनभिज्ञ रहते हैं। गीताके दोष निकालनेकी इच्छासे गीता पढनेवालोंको गीतामें दोष ही मिलते हैं। मुमुक्षुकी गीता उसे मुक्तिका सर्वोत्तम द्वार बतानेवाली है। कितने ही लोग कुरानशरीफमें सिर्फ गलतियां ही देखते हैं, दूसरे उसका मनन कर इस ससार-सागरको तर गये हैं। इस प्रकार जैसी भावना होती है वैसा ही फल मिलता है। लेकिन मुझे भय है कि बहुतसे विद्यार्थियोंने उद्देश्यका विचार नहीं किया है, केवल रीतिके अनुसार विद्यालयोंमें जा रहे हैं। कितने ही आजीविकाके हेतु जा रहे हैं। शिक्षाको आजीविकाका द्वार समझना मेरी अल्पमतिसे नीच वृत्ति है। आजीविकाका साधन शरीर है, चरित्रकी शाला शरीरके पोषणके लिये है, यह समझना तन्तुके लिये भैंसको मारना है। शरीरका पोषण शरीरसे ही करना चाहिये। आत्माको हम इस कार्य्यमें क्यों लगावें? "अपना पसीना बहाकर अपनी रोटी ले लें" यह महावाक्य ईसामसीहका है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भी मैंने यही ध्वनि सुनी है। इस जगत्के सैकडे निन्नानवे आदमी इसी नियमके अधीन रहते हैं और निर्भय विचरते हैं। जिसको दांत दिया गया है उसको चबानेकी भी चीज मिलेगी यह सिद्धवचन है। लेकिन यह दियोंके लिये नहीं कहा गया है। विद्यार्थियोंको आरम्भमें यह सोच लेनेकी आवश्यकता है कि अपनी आजीविका अपने बाहुबलसे पैदा करनी चाहिये। आजीविकाके लिये मजदूरी करनेमें लज्जित नहीं होना चाहिये। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि हम सब सदैव कुदारही चलाते रहें। पर यह समझना चाहिये, कि दूसरा धन्धा करते हुये भी आजीविकाके लिये कुदार चलाना कुछ बुरा नहीं है और न हमारे मजदूर भाई हमसे नीचे हैं। इस सिद्धान्तको ग्रहणकर इसे अपना आदर्श समझ कोई किसी भी धन्धेमें भले ही [illegible] हो पर उसको कार्य

वाहीमें शुद्धता और असाधारणता मालूम होगी। वह लक्ष्मीका गुलाम नहीं बनेगा, लक्ष्मी उसकी दासी बनी रहेगी। अगर यह विचार ठीक हो तो विद्यार्थियोंको मजदूरी करनेकी आदत रखनी पड़ेगी। इतना तो मैंने धनसम्पादन करनेकी इच्छासे शिक्षा प्राप्त करनेवालोंके सम्बन्धमें कहा है।

जो विद्यार्थी शिक्षाके उद्देश्यपर बिना विचारके ही विद्यालयमें जा रहे हैं उनको उस उद्देश्यका समझना जरूरी है। वे आज निश्चय कर सकते हैं कि हम आजसे विद्यालयको चरित्रबल बढ़ानेका ही द्वार समझेंगे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ऐसे विद्यार्थी एक महीनेमें अपने चरित्रमें बड़ा परिवर्तन देखेंगे और उनके साथी भी इसकी साक्षी देंगे। शास्त्रवाक्य है कि जैसा हम सोचते हैं वैसे ही बनते हैं।

बहुतसे विद्यार्थी मानते हैं कि शरीरके लिये कुछ अधिक प्रयत्न करना उचित नहीं है। पर शरीरके लिये व्यायाम बहुतही आवश्यक है। शरीरसम्पत्ति न हो तो विद्यार्थी क्या कर सकते हैं? दूधको कागजके बर्तनमें रखनेसे दूध निकल जाता है, वैसे ही शिक्षारूपी दूधको विद्यार्थीके कागजरूपी शरीरसे निकल जानेकी संभावना है। शरीर आत्माका स्थान है, इसलिये तीर्थक्षेत्र है। उसकी रक्षा करनी चाहिये। प्रातःकाल डेढ़ घण्टा और शामको डेढ़ घण्टा दौड़ना और उत्साहसे स्वच्छ हवामें टहलनेसे शरीरकी ताकत बढ़ेगी और मन प्रसन्न होगा। इसमें समयका लगाना उसे बरबाद करना नहीं होगा। विद्यार्थीकी बुद्धि ऐसे व्यायाम और आरामसे तीव्र होगी और सब बातें शीघ्रतासे याद कर सकेगा। मेरा मन्तव्य है कि बैट, बाल इत्यादि इस गरीब मुल्कके लिये ठीक नहीं हैं। हमारे मुल्कमें बहुतही निर्दोष बेखर्चके खेल भरे हुये हैं।

विद्यार्थीजीवन निर्दोष होना चाहिये। जहां निर्दोष बुद्धि है वहीं शुद्ध आनन्द है। विद्यार्थीके लिये जगत्‌में आनन्द लेना

ही उसकी उदासीनता है। उसका यह निश्चय रहता है कि, उसको महान् पद प्राप्त करना है और उसको वह मिलेगा। निर्दोष बुद्धि रामचन्द्रने चन्द्रमा चाहा और उनको चन्द्रमा मिला। जगत एक दृष्टिसे क्षणिक है अन्य दृष्टिसे जगत्का केवल अस्तित्व देखनेमें आता है। विद्यार्थीके लिये जगत् है ही क्योंकि उसे इस जगत्में पुरुषार्थ करना है। रहस्य समझे बिना जगत्को मिथ्या कहकर स्वेच्छाचारी जगत्के त्यागका दावा करनेवाला भलेही संन्यासी कहा जाय किन्तु वह मिथ्याज्ञानी है।

मैं अब धर्मकी बातपर आता हूं। जहां धर्मका अभाव है वहां विद्या, लक्ष्मी,आरोग्य इत्यादिका भी अभाव है। धर्मरहित स्थितिमें सब शुष्क है, शून्य है। यह धर्मकी शिक्षा हमने गँवा दी है, हमारी शिक्षाप्रणालीमें धर्मको कोई स्थान नहीं दिया गया है। यह स्थिति बिना दुल्हेके बारातकीसी है। धर्मसे अज्ञानी विद्यार्थीका निर्दोष आनन्द प्राप्त करना असम्भव है। यह आनन्द लेनेके लिये शास्त्रपठन, शास्त्रका विचार और विचारके समान आचार आवश्यक है। सिग्रट पीनेसे या कोरी गप्पें मारनेसे न अपना भला हो सकता है न दूसरोंका। नजीरने कहा है कि चिड़िया भी चूँ चूँ कर सुबह शाम खुदाका नाम लेती हैं, लेकिन हम पांव पसारे सोये रहते हैं। धर्मशिक्षा किसी प्रकारसे प्राप्त करना विद्यार्थीका कर्त्तव्य है। विद्यालयोंमें चाहे धर्मशिक्षा दी जाय या न दी जाय, लेकिन इस समय उपस्थित विद्यार्थियोंसे मेरी यह प्रार्थना है कि वे आजही अपने जीवनमें धर्मतत्त्व धारण कर लें। धर्म क्या है? इन बातोंकी विवेचना कठिन है, लेकिन मैं इतनी व्यावहारिक अनुभवसिद्ध सलाह देता हूं कि आप सब रामचरितमानस और भगवद्गीताके भक्त बन जाय। आपके पास मानसरूपं कोहनूर पड़ा है उसको ग्रहण करलें। पर याद रखिये कि दोनों पुस्तकें धर्म समझनेके लिये पढ़ी जाय, इन ग्रन्थोंके लिखनेवाले ऋषियोंका मतलब इतिहास लिखनेसे नहीं

था, धर्म अर्थात् नीतिकी शिक्षा देनेका था। करोडों आद्मी इन पुस्तकोंको पढते हैं और अपना जीवन विशुद्ध करते हैं। वे निर्दोष बुद्धिसे पढकर उनमेंसे निर्दोष आनन्द लेकर इस संसारमें विचरते हैं। राम थे या नहीं, जैसे उन्होंने रावणको मारा वैसे हम भी अपने शत्रुको मारें, ऐसी शङ्का उनके मनमें स्वप्नमें भी नहीं आ सकती है। वे तो शत्रुको देखते हुए भी रामचन्द्रकी मदद मांगकर निर्भय रहते हैं। रामायणके कर्त्ता तुलसीदासजीका शस्त्र केवल दया ही था। तुलसीदासकी इच्छा किसीके संहार करनेकी नहीं थी। जो उत्पन्न करता है वही नाश करता है। राम ईश्वर थे उन्होंने रावणको उत्पन्न किया, उन्हींको उसके संहार करनेका अधिकार था। जब हमको ईश्वरपदकी प्राप्ति होगी उस वक्त हम अपनी संहारशक्तिके विषयमें अपनी योग्यताका विचार कर लेंगे। इतनी प्रस्तावना इन महान् पुस्तकोंके लिये देनेको मैंने धृष्टता की है। मैं स्वयं एक समय संशयात्मा था और विनाशके भयमें था। उस अवस्थासे निकलकर श्रद्धावान बन सका हूं। इन पुस्तकोंने मुझपर जो असर डाला है उसका वर्णन करना मैंने योग्य समझा है। इस्लामी विद्यार्थियोंके लिये कुरानशरीफ सर्वोपरि ग्रन्थ है। उनको भी धर्मभावसे इस किताबको पढनेकी सलाह देता हूं। हाफिजोंके ऐसा याद कर लेनाही काफी नहीं है। कुरानशरीफका रहस्य जानना चाहिये। मेरी यह भी राय है कि हिन्दू मुसलमान एक दूसरेके धर्मग्रन्थ आदरपूर्वक पढें और समझें।

इस रमणीय विषयको छोड मैं फिर प्रकृत विषयपर आ जाता हूं। विद्यार्थियोंका राजनीतिक क्षेत्रमें भाग लेना उचित है या अनुचित? यह प्रश्न हो रहा है। मैं कारण न बताकर अपना अभिप्राय इस विषयमें प्रकट करता हूं। राजकीय क्षेत्रके दो भाग हैं। एकमें केवल शास्त्र है दूसरेमें शास्त्रका उपयोग। शास्त्र-प्रदेशमें विद्यार्थीका जाना आवश्यक है पर असल कार्यस्थलमें

विद्यार्थी क्या देशसेवा कर सकता है, यह प्रश्न किया गया है। इसका सीधा उत्तर तो यही है कि विद्यार्थी विद्याध्ययन ठीक सम्पादन करे और इस प्रवृत्तिमें शारीरिक स्वास्थ्यका संग्रह करता रहे और इस विद्याध्ययनका प्रयोग देशके लिये करनेका आदर्श रखे। मेरा विश्वास है कि इसीमें विद्यार्थीकी देशसेवाकी सम्पूर्णता है। विचारपूर्वक जीवन व्यतीत करनेसे, स्वार्थ छोड परोपकारका ध्यान करनेसे हम विना परिश्रम ही बहुत कार्य कर सकते हैं। जिसको देशसेवाकी लगन है, उसे सेवाके सैकडों कार्य मिल जायगे। ऐसा एक कार्य मैं बतलाना चाहता हू। आपने रेलवेके मुसाफिरोंकी तकलीफके विषयमें छपा हुआ मेरा पत्र देखा होगा। मैं समझता हू आपमेंसे बहुतेरे तीसरे दर्जेके मुसाफिर होंगे। आपने देखा होगा कि मुसाफिर लोग गाडीमें थूकते हैं, पान और जर्देकी सोठी वहीं फेकते हैं, केले आदि फलोंके छिलके और जूठन वगैरह गाडीमेंही फेंक देते हैं। दूसरोंका ख्याल न कर सिगरेट तम्बाकू पीते हैं। जिस खानेमें हम बैठते हैं उस खानेके मुसाफिरोंको विनयसे समझा सकते हैं कि गाडी गन्दी नहीं करनी चाहिये और करनेसे क्या नुकसान होता है। बहुतेरे मुसाफिर विद्यार्थियोंका आदर करते हैं और उनकी बात सुनते हैं। लोगोंको स्वच्छताके नियम सिखानेके परम सुन्दर अवसरको न छोडना चाहिए।

स्टेशनोंपर जो खानेकी चीजें विकती हैं, वे गन्दी होती हैं। जब वह गन्दी दीखें तब विद्यार्थीको उचित है, ट्रेफिक मैनेजरको सूचना भेज दें। ट्रेफिक मैनेजर भलेही जवाब न दे। पत्र भी हिन्दी भाषामें लिखना ठीक है। ऐसे बहुतसे पत्र जायगे तो ट्रेफिक मैनेजरको सोचना पडेगा। यह कार्य सहज है पर इसका परिणाम बडा हो सकता है। मैंने पान जर्दा खानेके विषयमें कहा है, मेरी अल्प मति कहती है कि पान जर्दा खानेको आदत बुरी और गन्दी है। हम सब स्त्री पुरुष इस आदतके गुलाम बन

गये हैं, इस गुलामीमेंसे निकलना पड़ेगा। कोई अनजान आदमी भारतवर्षमें आ पहुँचे तो उसको अवश्य मालूम होगा कि हम सब दिनभर कुछ न कुछ खा रहे हैं। सम्भव है पानमें थोडासा अन्न पाचनका गुण हो, लेकिन नियमपूर्वक खाया हुआ अन्न, पान इत्यादिकी मदद बिना पच सकता है। पानमें स्वाद तो है ही नहीं। जर्देका त्याग आवश्यक है। विद्यार्थीको क्षण प्रतिक्षण संयमी बनना चाहिये। तम्बाकू पीनेकी आदतके बारेमें भी विचार करनेकी जरूरत है। इस विषयमें हमारे राजपुरुषोंने बड़ा खराब दृष्टान्त हमारे सामने रखा है। वे जिधर तिधर सिगरेट पीते हैं, इससे हम भी फैशन समझकर अपने मुहको चिमनी बनाये रहते हैं। तम्बाकू पीनेसे हानि होती है इसके बतानेके लिये बहुतसी पुस्तकें लिखी गयी हैं। हम इस समयको कलिकाल कहते हैं। ईसाई लोग कहते हैं कि जब जातियोंमें स्वार्थ, अनीति और दुर्व्यसन प्रवेश करेंगे उस वक्त ईसामसीह फिर आसमानसे उतरेंगे। लेकिन हम देख रहे हैं कि शराब, तम्बाकू, कोकेन, अफीम, गाजा, भाग आदि व्यसनोंसे दुनिया पीडित हो रही है। इस जालमें हम सब फस रहे हैं। इसीलिये हम इसके कुपरिणामका ही ठीक अन्दाजा नहीं कर सकते हैं। विद्यार्थियोंसे मेरी प्रार्थना है कि ऐसे दुर्व्यसनोंसे दूर रहें।

इस सम्मेलनको होते सत्रह वर्ष हो चुके हैं। मुझको गत सम्मेलनके सभापतियोंके व्याख्यान भेजे गये हैं। उनको मैंने पढा है। इन व्याख्यानोंके दिलानेका क्या उद्देश्य है? यदि इनमेंसे कुछ भी ग्रहण करनेकी इच्छा है तो सोच लीजिये कि आपने क्या ग्रहण किया है? यदि व्याख्यानोंके दिलानेका उद्देश्य अँगरेजी शब्दोंकी मधुर रचना सुनना हो या सम्मेलनकी कीर्त्ति चढाना ही हो तो मुझे आपपर शोक होता है। मैं मान लेता हूँ कि इन व्याख्यानोंका उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करके उसके अनुसार काम करनेका है। आपमेंसे कितने विद्यार्थियोंने विदुषी [illegible]

है कि राकफेलर और कारनेगी आदि साधारण रूपसे सदाचारी हैं किन्तु हम उनके आचरणकी जाच करनेमें बडी उदारतासे काम लेते हैं। हम उनसे सदाचारके किसी ऊचे आदर्शकी आशा ही नहीं करते। दक्षिण अफ्रीकामें हजारों भारतवासी हमारे मित्र थे। मैं सर्वदा यही देखता था कि जिसके पास जितनी ही सम्पत्ति थी वह उतना ही भीरु था। वास्तवमें हमारे धनी पुरुषोंने सत्याग्रहमें उतना काम नहीं किया जितना धनहीन जनोंने किया। धनवानोंको अपना अपमान उतना नहीं अखरता था जितना निर्धनोंको। यदि हमें किसीके दिल दुखनेका भय न हो तो मैं इसी देशमें ऐसे उदाहरण दे सकता हू जिससे यह विदित होगा कि धन वास्तविक उन्नतिमें बाधक हुआ है। मेरा विचार है कि ससारके धर्म्मशास्त्र सम्पत्तिके विषयमें आधुनिक ग्रन्थोंसे कहीं उत्तम सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करते हैं। जो प्रश्न आज हमारे सामने है वह नया नहीं। ईसा-मसीहसे दो हजार वर्ष पहले यही प्रश्न पूछा गया था। सैंट-मार्कने इसका बहुत उत्तम वर्णन किया है। ईसा ध्यानमें मग्न बैठे हैं, उसी समय एक मनुष्य उनके पास दौडा आता है और पूछता है, दयानिधे! कृपाकर मुझे बतलाइये कि स्वर्गप्राप्तिके लिये मैं क्या उपाय करू? ईसाने उससे कहा, तू मुझे दयानिधि क्यों कहता है? परमात्माके सिवाय और कोई दयावान नहीं है। क्या तू इन नियमोंको जानता है? व्यभिचार मत कर, किसीकी हत्या मत कर, चोरी मत कर, झूठी गवाही मत दे, और अपने मातापिताका सम्मान कर। उस पुरुषने उत्तर दिया, भगवन्, मैंने बाल्यावस्थासेही इन नियमोंका पालन किया है। तब ईसामसीहने उसकी ओर दयादृष्टिसे देखकर कहा, तुझमें एक बातकी कमी है, घर जा, जो कुछ तेरे पास है वह बेचकर गरीबोंको दे दे, तुझे स्वर्गमें इसका फल मिलेगा। उसके बाद मेरे पास आ और सलीब लेकर मेरे पीछे चल। वह

पुरुष यह बातें सुनकर चिन्तित हुआ, क्योंकि उसके पास बड़ी सम्पत्ति थी। तब ईसाने अपने शिष्योंकी ओर देखकर कहा, यह धनी लोग स्वर्गमें कैसे पहुँचेंगे ? शिष्य यह सुनकर बहुत चकित हुए, किन्तु ईसामसीहने उनसे फिर कहा, पुत्रो ! जिनके पास धन है उसका स्वर्गमें पहुँचना बहुत कठिन है, ऊँटका सुईके नाकेसे निकल जाना उतना कठिन नहीं है जितना किसी धनी आदमीका स्वर्गमें जाना। यह आपके सामने जीवनका एक सनातन सिद्धान्त उपस्थित है। लेकिन ईसाके शिष्योंने अविश्वाससे सिर हिलाया, जैसे हम आज भी हिलाते हैं। उन्होंने ईसासे वैसेही बातें की जैसी, हम आज भी करते हैं। इस नियमका व्यवहार करना कितना कठिन है ! यदि हम अपना सब कुछ बेच दें और अपने पास कुछ न रखें तो हम खायें क्या ? धनहीन होकर हम सदाचारी नहीं हो सकते। पीटरने कहा, हमने अपना सब कुछ तो त्याग दिया है और आपके पीछे चल रहे हैं। ईसाने उत्तर दिया, मैं तुमसे सत्य कहता हूं कि जिस पुरुषने मेरे लिए अपना घर, बन्धु, माता, पिता, स्त्री, बच्चे, खेतों और धनको त्याग दिया है वह उसका सौ गुना पावेगा और स्वर्गमें अनन्त कालतक सुख भोगेगा। बहुतसे बड़े छोटे, और छोटे बड़े हो जायगे। मैं अन्य धर्मग्रन्थोंसे इस प्रकारके आशयके और वाक्य उद्धत करना उचित नहीं समझता। अपने ऋषियोंके वाक्योंका उल्लेख करके मैं आपकी अप्रतिष्ठा नहीं करना चाहता। हमारे प्रश्नका सबसे सबल प्रमाण संसारके ऋषियोंके जीवनसे मिलता है। ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, नानक, कबीर, चैतन्य, शङ्कर, दयानन्द, रामकृष्ण, आदि ऐसे महात्मा थे जिन्होंने अगणित मनुष्योंके जीवनको सभाला और सुधारा, उनके अवतार लेनेसे यह संसार पवित्र हो गया है। इन सभी महात्माओंने त्याग और वैराग्यको ग्रहण किया था।

मैं इस विषयको इतने विस्तारके साथ वर्णन न करता यदि

मुझे यह विश्वास न होता कि हम जितना धनके पीछे दौड रहे हैं उतनाही हम सच्ची उन्नतिके मार्गसे हटते जाते हैं। इसलिये प्राचीन आदर्श धन बढानेवाली चेष्टाओंको रोकना था। हम यह मानते हैं कि हमको अब भी धनकी जरूरत है और सदैव ही रही है। लेकिन हमने सदा यह स्वीकार किया है कि हमारा आदर्श धनसे विरक्त होना है। यह कितने महत्वकी बात है कि हममें बडे बडे ऐश्वर्य्यवान पुरुषोंने यह अनुभव किया है कि यदि वह निर्धन होते तो कहीं उच्च दशामें होते। ईश्वर और माया दोनोंहीकी उपासना एक साथ नहीं की जा सकती है। हमको इन दोनोंमेंसे एकको चुन लेना चाहिये। पश्चिमी जातिया आज मायादेवीके पैरों तले पडी सिसक रही हैं। उनकी आत्मिक उन्नति रुक गयी है, वह अपनी उन्नतिका अनुमान धनसे करते हैं। अमरीकाकी सम्पत्ति अन्य जातियोंके लिये ईर्ष्याका विषय बनी हुई है। हमारे कितने ही देशवासी यह कहते हैं कि हम अमरीकाकी सम्पत्ति तो चाहते हैं लेकिन उनके साधनोंको नहीं चाहते।

मैं यह कहता हू कि हमारा यह उद्योग कभी सफल नहीं हो सकता, हम खटाई खाते हुये शहनाई नहीं बजा सकते। हमारे नेताओंको चाहिये कि हमें उपदेश दें कि हम सदाचारमें सबसे बढकर रहें। हमारे इस देशमें देवता रहते थे, लेकिन ऐसे देशमें देवताओंके निवासकी कल्पनाही असम्भवसी जान पडती है, जो पुतलीघरोंके धुए और शोरसे भरा हुआ हो, जिसकी सडकोंपर स्वार्थान्ध मनुष्योंसे भरी हुई गाडिया इञ्जनों द्वारा खिच रही हों। इन मनुष्योंको यह नहीं मालूम है कि वे कहा जा रहे हैं। वे धनकी तृष्णासे अचेत हो रहे हैं। मैं इन बातोंकी इसलिये चर्चा करता हू कि यही हमारी भौतिक उन्नतिके चिह्न हैं। लेकिन उनसे हमारे चित्तको लेशमात्र भी शान्ति नहीं मिलती। वैलेस् नामके एक बडे विद्वानोंने कहा है, प्राचीन

समयके जो ऐतिहासिक वृत्तान्त हमें मिले हैं उनसे यह स्पष्ट विदित होता है कि प्राचीन समयके नैतिक विचार और भावें, सदाचारके माने हुए सिद्धान्त और उनसे उत्पन्न होनेवाले सद्गुण वर्त्तमानकालके नियमोंसे किसी भांति घटकर न थे। उसने इसके पश्चात् अङ्गरेजोंकी उस उन्नत अवस्थाका निरीक्षण किया है जो धनकी वृद्धिसे हुई है। वह कहता है, "धनकी इस वृद्धि और प्रकृतिके ऊपर हमारे अधिकारने हमारी सभ्यताकी ऐसी मिट्टी खराब की कि समाजिक कुप्रवृत्तियोंको पैर फैलानेका अवसर मिल गया।" उसने आगे चलकर बतलाया है कि कारखानोंमें किस भांति स्त्रियों, पुरुषों और बालकोंकी हत्या होती है। अन्तमें उसने सिद्ध किया है कि प्रभुत्व बढ़नेके साथ साथ सदाचारकी क्षतिही हुई है। उसने वर्त्तमान रोगों, जीवनको नाश करनेवाले व्यापारों, रिश्वत और जुएको, इस सम्पत्ति-वृद्धिका फल सिद्ध किया है। उसके कथनानुसार धनके साथ साथ मादकता, आत्मघात आदि पापोंका प्रकोप बहुत बढ़ गया है, व्यभिचारने तो एक व्यवसायका ही रूप धारण कर लिया है। अङ्गरेजोंके शासनकालमें हमने बहुत कुछ सीखा है। लेकिन मेरा यह पूर्ण विश्वास है कि युरोपसे कुछ सीखनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि हम सचेतन रहेंगे तो हमारे देशमें भी वही बुराइयां फैल जायगी, जिनसे वह स्वयं जर्जर हो रहा है। हमारा कल्याण तभी हो सकता है जब हम अपने जातीय जीवनको और अपने सदाचारको पवित्र रखें। प्राचीनकालका अभिमान करनेके पहले प्राचीन आत्मिक गौरवको अपने जीवनमें चरितार्थ करना चाहिये। यदि हम अङ्गरेजोंकी इसलिये नकल करें कि वह हमारे ऊपर शासन करते हैं तो इसमें हमारा और उनका, दोनोंहीका अपकार है। हमको ऊंचे आदर्शोंसे डरना नहीं चाहिये और उसको व्यवहारमें लानेका उद्योग करना चाहिये। हमारी जातिको तभी आध्यात्मिक गौरव प्राप्त होगा जब हम

पास धनसे अधिक सत्य, ऐश्वर्य्य और आडम्बरोंसे अधिक आत्मबल होगा। यदि हम अपने घरोंको स्वच्छ कर दें, अपने मन्दिरों और मुहल्लोंको धनकी सामग्रियोंसे खाली कर दें और उन्हें नैतिक गुणोंसे सुशोभित कर दें तो शत्रुदलका बिना किसी भारी सेनाके ही सामना कर सकते हैं। हमें ईश्वरप्राप्तिके लिये यत्न करना चाहिये। अन्य पदार्थ हमें अपने आप मिल जायगे। यही सच्चा अर्थशास्त्र है। ईश्वर हमें बल दे कि हम अपने जीवनमें उसका व्यवहार करें।

८ मनुष्यके कर्त्तव्य

प्राय सभी विद्वान इस बातको मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्यकी शारीरिक और मानसिक शक्तियां जुदा जुदा होती हैं। विकाससिद्धान्तके अनुसार हमलोग आत्मिक उन्नतिकी जुदा जुदा सीढियोंपर खडे हैं, कोई आगे है, और कोई पीछे, कोई शीघ्र शीघ्र चढ़ रहा है, कोई धीरे धीरे कदम उठा रहा है। यदि एक आदमी अपनी आत्मिक उन्नतिमें बढा हुआ है तो दूसरा अपनी शारीरिक उन्नतिमें, एक यदि पक्का दूकानदार बन सकता है तो दूसरा पक्का कारीगर। तात्पर्य यह कि समाजरूपी उद्यानमें प्रत्येक फूल अपने रूपरङ्ग और सुगन्धमें एक दूसरेसे भिन्न है।

इस विषयमें विद्वानोंने 'जन्म'का ढकोसला नहीं लगाया। उन्होंने यह नहीं माना कि किसी खास जाति या खास वर्णमें उत्पन्न होनेसे मनुष्यकी शक्तियोंमें भेद हो जाता है। विकासका सिद्धान्त सर्वव्यापक है। अमेरिकामे बडे बडे वैज्ञानिक पैदा होते हैं तो भारतमें भी हो सकते हैं। अथवा भारतमें यदि महात्मा जन्म लेते हैं तो इङ्गलैण्डमें भी वे जन्म ले सकते हैं। आत्मा महान होनी चाहिये, चाहे उसका प्रादुर्भाव बढई ईसामें हो चाहे राजकुमार बुद्धमें।

अच्छा, तो मनुष्य अपने स्वभाव और शक्तियोंमें एक दूसरेसे

भिन्नता रखता है। अतएव अब हमें यह देखना है कि मनुष्य किस प्रकार मिलकर रह सकते हैं। कल्पना कीजिये कि चालीस आदमी हिन्दुस्तानसे आस्ट्रेलिया चले जाय और वहा एक नयी बस्ती बनाकर उन्हें रहना पड़े। उन सबके स्वभाव और शक्तिया जुदा जुदा हैं। एक बढ़ई है तो दूसरा लोहार, एक किसान है तो दूसरा मोची, एक मजबूत है तो दूसरा कमजोर, एक मूर्ख है तो दूसरा पंडित। अतएव वे सब एक दूसरेकी सहायता करके मिल जुलकर आरामसे रह सकते हैं। पर एक साथ रहनेमें यह जरूरी है कि हम एक दूसरेके भले बुरे दिनोंका खयाल रखें। यदि उनमेंसे कोई रातके बारह बजे उठकर चिल्ला-कर गावे, जिससे पास रहनेवालोंका सोना हराम हो जाय तो इस दशामें वह यह कहकर नहीं बच सकता कि "मैं अपने कामोंमें स्वतन्त्र हू" उसको दूसरोंके आरामका खयाल रखना पड़ेगा। समाजमें इस प्रकारकी पाबन्दीको कर्त्तव्य कहते हैं। याद रखिये, धर्मके जितने अग हैं उनका उद्भव मनुष्य-समाजहीमें होता है। हमें दूसरोंके सामने क्यों सत्य बोलना चाहिये? इसलिये कि ऐसा न करनेसे समाजके व्यवहारोंमें गड़बड़ी मचेगी, और कोई किसीका विश्वास न करेगा। यद्यपि 'बोलनेकी स्वतन्त्रता' 'करनेकी स्वतन्त्रता' हमारे अधिकारोंमें शामिल हैं, परन्तु जहा ये अधिकार मनुष्य समाजमें अशान्ति और गड़बड़ी पैदा करने-वाले हो जाते हैं वहींपर उनकी हदबन्दी कर देते हैं। यह हद-बन्दी धर्म या कर्त्तव्य मानी जाती है। यहापर कोई यह प्रश्न कर सकता है कि क्या फिर मनुष्य समाजके द्वारा हमारे अधिकार छीने नहीं जाते? हम उत्तरमें कहेंगे, नहीं। समाज मनुष्यके अधिकारोंको छीनता नहीं, किन्तु उनके उपयोगका सच्चा रास्ता बताता है। यद्यपि मनुष्य क्रोध करने, झूठ बोलने, जूआ खेलने, गाली देनेमें पूरी स्वतन्त्रता रखता है और यह सब उसके अपने अधिकारोंके अन्तर्गत है, परन्तु इन अधिकारोंका—

इस स्वतन्त्रताका—उपयोग मनुष्यसमाजमें रहकर करनेका वह हकदार नहीं है। क्योंकि वहां ऐसा करनेसे समाजकी हानि होती है इसलिये समाज मनुष्यके लिये एक प्रकारका नियामक है। 'समाज' मनुष्यकी जरूरतोंको पूरा करते और उनको सुमार्गपर चलानेका साधन है।

—स्वामी सत्यदेव

९ शासनकी सबसे श्रेष्ठ प्रणाली

समाजके यदि सारे सभ्य अपने अधिकारों और कर्त्तव्योंको ठीक ठीक समझें और उनके अनुसार आचरण करें, तो समाजका काम बहुत अच्छी तरह चल सकता है। यदि चोर, डाकू और गुंडे न हों तो पुलिसकी कोई आवश्यकता नहीं। यदि उचक्के और चोर न हों तो घरोंमें ताले लगाने न पड़ें। परन्तु समाज ऐसे लोगोंसे खाली नहीं होता। इसलिये अधिकारों और कर्त्तव्योंकी रक्षाके लिये शासन जरूरी है। समाज तो हमको उन्नतिपर ले जाने और हमारी जरूरतोंको पूरा करनेके लिये है, शासन हमारे अपराधोंका दण्ड देनेके लिये। इससे स्पष्ट है कि गवर्नमेण्टका होना मनुष्यके दोषोंके कारण है। सबसे सभ्य समाज वह है जो विना गवर्नमेण्टके चल सकता है, जहां मनुष्यके अधिकारों और कर्त्तव्योंकी रक्षा विना पुलिसके हो सकती है।

अब प्रश्न यह है कि किस प्रकारकी शासनप्रणाली सब लोगोंको बराबर अधिकार दिलाते और सब सभ्योंको न्यायपूर्वक चलानेके योग्य है?

इस प्रश्नका उत्तर हम एक उदाहरण देकर समझाते हैं। मान लीजिये कि पुरन्दरपुर एक ऐसा सुशिक्षित नगर है जहांके लोग अपनी गवर्नमेण्ट पैदा करना चाहते हैं। वहांकी आबादी एक लाखके करीब है और शहर दस ऐसे मुहल्लोंमें विभक्त है

जिनकी आबादी एकसी तो नहीं मगर सबमें पांच पांच हजारसे ऊपर आदमी रहते हैं। कल्पना करो कि एक लाखकी आबादीमें चालीस हजार मुसलमान हैं—कुछ मुहल्लोंमें मुसलमानोंकी प्रधानता है, कुछमें हिन्दुओंकी—मगर सब मिलजुलकर रहते हैं। सबसे पहले सब मुहल्लोंके मुखिया लोगोंको आपसमें मिलकर यह नियम करना पड़ेगा कि कितनी आबादीके पीछे एक एक प्रतिनिधि चुना जाय। हम मान लेते हैं कि पांच हजारके पीछे एक प्रतिनिधि चुननेका नियम है। अर्थात् यदि किसी मुहल्लेकी आबादी १२६२३ हो तो वहांसे २ प्रतिनिधि चुने जा सकते हैं। इस तरह इस शहरके पन्द्रह प्रतिनिधि हुए। अच्छा, इन प्रतिनिधियोंसे मतलब क्या? और इनका चुनाव कैसे हो? प्रतिनिधि उसे कहते हैं जो किसी जनसमूहके विचारोंको प्रकट करनेवाला हो। अर्थात् पुरन्दरपुरका एक एक प्रतिनिधि प्राय दस दस हजार मनुष्योंकी जरूरतोंको प्रकट करनेवाला और शिकायतोंको सुनानेवाला एक प्रकारका वकील होगा। हर प्रतिनिधिपर लोगोंका पूरा विश्वास रहेगा कि वह ईमानदारीसे अपना कर्त्तव्य पालन करेगा। प्रतिनिधियोंके चुनावका ढंग इस प्रकार समझिये। मान लो कि पूर्वोक्त एक मुहल्लेकी १२६२३ आबादीमें पांच हजारही मनुष्य ऐसे हैं जो वोट* देनेकी योग्यता रखते हैं। और तीन मनुष्य ऐसे योग्य हैं जिनको प्रतिनिधि बनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया गया है। मुहल्लेकी ओरसे जो कमेटी मुकर्रर होगी वह विज्ञापनद्वारा लोगोंको सूचना दे देगी कि अमुक दिन अमुक स्थानपर वोट डाले जायगे। एक कागज जिसपर तीनों मनुष्योंके नाम होंगे, मिलेगा और वोट देनेवाला दोके सामने अपने इच्छानुसार (+)

---

* यहां हमने वोट देनेकी योग्यता केवल उमरका नियम किया है—यथात् इक्कीस वर्षसे ऊपर जिसकी उम्र हो वह वोट दे सकता है —लेखक।

ऐसा चिह्न कर एक सन्दूकमें डालता जायगा। अन्तमें सबके वोट गिनकर प्रतिनिधियोंका फैसला हो जायगा।

इन पन्द्रह प्रतिनिधियोंको पुरन्दरपुरवालोंकी ओरसे आज्ञा मिलेगी कि वे शहरमें शान्ति रखें, कोई फसाद करे तो उसे दण्ड दें,-किसीके साथ अन्याय हो तो उसका विचार करें। वे ऐसे नियम बनावें जिनसे शहरवालोंकी शारीरिक अवस्था ठीक रहे,-सबके विद्याभ्यासके लिये कालेज और स्कूल खोलें, शहरमें बिजलीकी रोशनीका प्रबन्ध करें और शहरकी रक्षाके लिये कुछ सिपाही रखें।

जरूरी है कि इन सब कामोंके लिये धनकी आवश्यकता होगी। इस जरूरतको रफा करनेके लिये शहरवाले उन प्रतिनिधियोंको यह आज्ञा देंगे कि आप लोग हमपर कर लगाइये, बाहरसे जो माल शहरके अन्दर बिकने आवे उसपर भी महसूल लगाइये। हां, उन चीजोंपर महसूल न लगे जिनसे तिजारतको हानि हो। यह आज्ञा पाकर प्रतिनिधि लोग एक सभा करेंगे, उसमें कई प्रकारके कानून बनाये जायगे। मगर उनके लिये लोगोंकी मजूरी दरकार होगी। इसलिये उनका मसविदा छपवाकर सारे शहरमें बटवा दिया जायगा, ताकि लोग उनपर विचार करके अपनी राय दे सकें। लोगोंको जिन जिन बातों-पर एतराज होगा उनके विषयमें वे अपनी सम्मति प्रकट करेंगे। अधिकांश सम्मतिसे कानून ठीक समझे जायगे, वे पास हो जायगे। अँगरेजीमें ऐसे कानूनको बद्ध-नियम कहते हैं। इनका संशोधन और प्रतिशोधन लोगोंके इच्छानुसार हो सकता है।

यहांपर यह जान लेना आवश्यक है कि कानूनके तीन बड़े-पहलू हैं—अदालती, उसूली और अमली। इन तीनोंका काम एक दूसरेसे अलग है। अमुक कानूनका क्या अर्थ हो सकता है? मुजरिमने कानून तोड़ा है या नहीं? कानूनमें बजाते-खुद कोई दोष है या नहीं? ऐसी बातोंका फैसला अदालत करती है।

उसूली विभागका यह काम है कि यदि कानूनमें कोई दोष हो तो उसे दूर करे या नया कानून बनावे। अमली विभागका यह कर्त्तव्य है कि कानूनोंका पालन होता है या नहीं यह देखे और अपनी भरपूर शक्तिके अनुसार उनका पालन करावे। अच्छा तो इससे यह नतीजा निकला कि पुरन्दरपुरकी प्रतिनिधिसभाको तीन ऐसे मुहकमोंकी जरूरत है। इस जरूरतको पूरा करनेके लिये पन्द्रह प्रतिनिधियोंने अपनेमेंसे पांच योग्य पुरुष चुन लिये जिनका काम 'अमली' है, बाकीके दस उसूली सभामें मौजूद रहे। पुरन्दरपुरकी हाईकोर्टके जज चुननेके लिये शहरवाले अपने 'वोट' से चार धर्मात्मा और न्यायपरायण वृद्धोंको उम्रभरके लिये जज मुकर्रर कर सकते हैं और उनमेंसे तभी कोई पदच्युत किया जा सकता है जब पचीस हजार आदमियोंकी अर्जियां उसके खिलाफ उसूली सभामें पहुँचें। प्रत्येक मुहल्लेमें मामूली झगड़े निपटानेके लिये एक एक अदालत हो जायगी जिसके अधिकारियोंका निर्वाचन अमली सभाके हाथमें होगा।

प्रतिनिधियोंका चुनाव तीन साल बाद और अमली सभाका पांच साल बाद होना जरूरी है। यह हमारी राय है, पुरन्दरपुरवाले चाहे सात साल बाद करें। उसूली सभा जो कानून बनावे उसे कुल शहरकी सम्मतिके लिये हर मुहल्लेकी सभामें पेश करे, जिससे लोगोंको वाकफियत रहे कि क्या कानून बन रहे हैं और उनका रुपया कैसे खर्च हो रहा है। अर्थात् गवर्नमेंटके ऊपर उन लोगोंका दबाव जिसमें बना रहे। यदि अमली सभाका कोई अधिकारी पक्षपाती सिद्ध हो जाय, या चालीस हजार अर्जियां उसके खिलाफ प्रतिनिधिसभामें पहुँचें तो दोनों सभाएं मिलकर उस सभ्यको उसके निश्चित समयके पहले ही पदच्युत कर सकती हैं।

अब हम एक उदाहरण देकर शासनकी इस कलको चलाते हैं। कल्पना करो कि पुरन्दरपुरके हिन्दू यह चाहते हैं कि उनके

शहरमें गोहत्या न हो। उसूली सभामें उनके छ प्रतिनिधि हैं और मुसलमानोंके चार। अमली सभामें चार हिन्दू हैं और एक मुसलमान। हिन्दू मुहल्लेके लोग अपने प्रतिनिधियोंको समझा देंगे कि इस प्रकारके कानूनका प्रस्ताव करें। उसूली सभामें कानूनका प्रस्ताव हुआ, उसपर बहुत बहस हुई। प्रस्तावके शब्द ठीक किये गये। सभाने उसे मंजूरीके लिये लोगोंके सामने पेश किया। एक लाखकी आबादीमें कुल चालीस हजार ऐसे मनुष्य हैं जो वोट देनेकी योग्यता रखते हैं। उनमेंसे पन्द्रह हजार मुसलमान हैं, बाकी पचीस हजार हिन्दू। यदि मुसलमानोंको पाँच हजार हिन्दू ऐसे न मिलें जो उनका साथ दे सकें तो जरूरी है कि वह कानून पास हो जाय, क्योंकि अधिकांश वोट हिन्दुओंके पक्षमें होंगे। यहांपर यह समझ लेना जरूरी है कि गवर्नमेंटका ढंग चाहे जितना उत्तम हो, अधिकांश सम्मतिके आगे सिर झुकाना ही पड़ेगा। इसके बिना किसी प्रकारकी सभा, समाज, सोसाइटी नहीं चल सकती। हां, यह हो सकता है कि परास्त हुआ दल जब देखे कि उसके पक्षमें जनसंख्या अधिक है तब उस कानूनको बदलवा ले।

एक उदाहरण और लीजिये। कल्पना करो कि पुरन्दरपुरमें पन्द्रह हजारके करीब ऐसे हिन्दू हैं जो बालविवाहके विरोधी हैं और चाहते हैं कि बालविवाह प्रतिबन्धक कानून बन जाय। पर अधिकांश हिन्दू ऐसे कानूनके विरोधी हैं। ऐसे मौकेपर यदि पचीस हजार मुसलमान बालविवाह विरोधियोंका साथ देंगे तो कानून पास हो जायगा।

कानूनके प्रस्तावके दो ढंग हैं—या तो प्रतिनिधियों द्वारा या अर्जियां भेजकर। पहला प्रकार तभी चलेगा जब पांच छ मुहल्लोंके प्रतिनिधि एकमत हों परन्तु ऐसा होना बहुत कठिन होता है। इसलिये दूसरा आसान तरीका यह है कि यदि पचीस हजार अर्जियां किसी कानूनके प्रस्तावके लिये पहुँच जायँ तो उसूली

सभाको अवश्य ही वह विषय हाथमें लेना पड़ेगा। भिन्न भिन्न मुहल्लोंके मनुष्य मिलकर ऐसा कर सकते हैं। ऐसी दशामें अन्यायका भय नहीं रहता।

शासनकी यह प्रणाली सबसे श्रेष्ठ और सबसे अधिक स्वतंत्रता देनेवाली है। अन्याय होनेका इसमें बहुत कम भय है। सबकी विद्याकी सुलभता रहेगी, सब अपनी गवर्नमेण्टके कामोंमें भाग लेते रहेंगे। इससे शासनप्रणाली मजबूत होती जायगी और सबको बराबर तरक्की करनेका अवसर मिलेगा। नीच ऊंचका भय न रहकर सबके अधिकारोंकी बराबर रक्षा हो सकेगी। जब जब जो लाभकारी कानून बनानेकी इच्छा लोगोंको होगी तब तब वे उसे फौरन बना सकेंगे। अमली सभाके सभ्य, उमली सभाके सभ्य तथा हाईकोर्टके जज सभी उनके आज्ञाकारी होंगे। लोग जब चाहेंगे उनको हटा सकेंगे।

प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्यका यह एक छोटासा उदाहरण है। कई बड़े बड़े देशोंका शासन आजकल इसी तरह होता है। प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्यमें शक्ति खुद लोगों हीके हाथमें रहती है।

—स्वामी सत्यदेव

१० सुलतान मुराद और काजी

खुजद नगरमें एक सिलावट अपने काममें बड़ा उस्ताद था। उसने सुलतान मुरादके हुक्मसे एक मसजिद बनायी थी परन्तु वह सुलतानको पसंद नहीं आयी। इससे गुस्सा होकर सुलतानने उस बेचारेके हाथ कटवा डाले, तब वह काजीकी अदालतमें गया और काजीसे कहने लगा कि तू खुदाका पैगाम पहुँचानेवाला और पैगम्बरके कानूनका रखनेवाला है। मैं बादशाहोंका गुलाम नहीं हूं तोभी मुरादने मुझपर यह जुल्म किया है। तू कुरानके मुवाफिक मेरे दावेका फैसला कर दे।

काजीने सुलतानको बुलाया। सुल्तान गुनहगारोंके समान

अदालतमें आया और काजीके आगे कुरान रखा हुआ देखकर डर गया। वह घबरा कर बोला कि मैंने जो किया है उससे पछताता हूं और अपना गुनाह कबूल करता हूं।

काजीने कहा कि यह जो कानून (कुरान) है इसमें गुनाहों-का दण्ड देना लिखा है और लोग इसी कानूनसे जीते भी हैं। कोई मुसलमान किसीका गुलाम नहीं है कि उसपर जुल्म किया जाय और बादशाहका खून भी सिलावटके खूनसे बढ़कर रंगीन नहीं है।

मुरादने कुरानका जो यह हुक्म सुना तो अपना हाथ काजीके आगे इसलिये कर दिया कि सिलावटके हाथ काटनेके बदलेमें काट डाले।

यह देखकर मुद्दई घबराया, उसने कुरानकी एक आयत पढ़ी जिसका यह मतलब है कि लोगोंके साथ इन्साफ और नेकी करो और कहा कि मैंने खुदा और रसूलके वास्ते इसका गुनाह बख्शा और अपना इन्साफ भर पाया। अब इसे आप भी छोड़ दें।

काजीने सुलतानसे कहा कि जब मुद्दई अपना दावा छोड़ता है और आपका कुसूर बख्शता है तो मुझे भी कोई एतराज नहीं है। क्योंकि कुरानमें दो तरहके गुनाह लिखे हैं। एक तो बन्दोंके गुनाह हैं और दूसरे खुदाके गुनाह हैं। जो नमाज नहीं पढ़ते, रोज़ा नहीं रखते, जकात नहीं देते, हज्ज नहीं करते, और काफि रोंसे लड़नेको नहीं जाते वे खुदाके गुनहगार हैं। दूसरे बन्दोंके गुनाह हैं जो आपसमें एक दूसरेपर जुल्म करनेसे होते हैं। इन गुनाहोंकी सजा जो दुनियामें न मिल गयी होगी तो उनको खुदा भी न बख्शेगा।

अच्छा हुआ कि आप इसी दुनियामें मुद्दईके राजीनामेसे बरी होकर आकबत (परलोक) में खुदाके आगे इस जुल्मके गुनहगार नहीं रहे। सुलतान यह सुनकर मुद्दई और काजीका

अहसान मानता और दिलमें उनको दुआएं देता हुआ खैरियतसे अपने घर आया और जुल्म करना भूल गया।

—देवीप्रसाद मुंसिफ

११ सहारनपुरका ज्वाइंट मजिस्ट्रेट

अप्रैल सन् १९१० ई० के राजपूत गजट लाहौरमें हमने सहारनपुरके ज्वाइंट मजिस्ट्रेट साहिबके इन्साफकी खबर पढ़ी थी, जिसका खुलासा यह है कि सहारनपुरमें नहरोंके अंगरेज अफसरका सावरन (मुहरों) से भरा हुआ बटुआ गिर पड़ा। वे घोड़ा दौड़ाते हुए जा रहे थे। उसे एक मुसाफिरने उठा लिया। कुछ ही देर बाद साहब बहादुर बटुआ न देखकर लौटे और आँखें फाड़ फाड़कर नहरकी पटरीपर देखने लगे। मुसाफिरने जो वहाँ बैठा था, पूछा कि साहब क्या देखते हैं? साहबने फरमाया की हमारा बटुआ जेबसे निकल पड़ा है। मुसाफिरने यह सुनते ही वह बटुआ ज्योंका त्यों उनको दे दिया। साहबने खोल कर देखा और सावरनोंको गिनकर कहा कि तीन कम हैं। फिर उस ईमान्दार मुसाफिरको बेईमान बनाकर पुलिस द्वारा ज्वाइंट मजिस्ट्रेट साहिब जिले सहारनपुरकी अदालतमें पहुँचाया। मुसाफिरने सच्चा सच्चा हाल कह दिया। मजिस्ट्रेट साहबने खजानेसे तीन सावरन मँगवाये और मुद्दईसे कहा कि लीजिये, ये तीन सावरन इस बटुयेमें तो डालिये साहबने बहुत जोर मारा, मगर वे तो उसमें समा नहीं सके। तब मजिस्ट्रेटने उनसे बटुआ लेकर मुसाफिरको दे दिया और कहा कि साहबके बटुएमें ६३ सावरन थे और इस बटुएमें ६१ भी नहीं आ सकते। खुदाने इस मुसाफिरको बटुआ इनायत किया है और यही उसका हकदार है। मुसाफिर लेता न था मगर मजिस्ट्रेट साहबने चपरासीको हुक्म दिया कि यह बटुआ इसको देकर रेलमें बैठा दे।

इस इन्साफकी धूम जिलेभरमें मच गयी और सब लोग धन्य धन्य कहने लगे। मुद्दई अँगरेज था, मजिस्ट्रेट भी अँगरेज थे और मुद्दालेह हिन्दुस्तानी था। परन्तु मजिस्ट्रेटने इन्साफमें अपनी जातिका कुछ पक्षपात नहीं किया। हिन्दुस्तानमें ऐसे ही पक्षपात रहित मजिस्ट्रेटोंकी हर जगह जरूरत है।

—देवीप्रसाद मुंसिफ

१२ नव्वाब हैदराबाद

उस समय दक्षिण हैदराबादकी बहुत बडी रियासतमें नव्वाब निजामुल मुल्क उसमान अलीखा राज्य करते थे। बडे न्यायी थे। आपका यह सच्चा न्याय अभी कलकत्तेकी अमृत बाजार पत्रिकामें छपा था। वारंगोल जिलेके हिन्दू मुसलमानोंमें एक मसजिदका झगडा खडा हो गया था। मुसलमान तो हिन्दुओंकी बस्तीमें मसजिद बनानेपर तुले हुए थे और हिन्दू बनाने देना नहीं चाहते थे, जब हिन्दुओंने किसी तरहसे भी मुसलमानोंको न मानते हुए देखा तो आपके हुजूरमें अपील की। आपने इस मुकद्दमेकी तहकीकातके लिये एक कमेटी बना दी जिसके दो मेम्बर तो मुसलमान थे और एक हिन्दू था। कमेटीने तहकीकात करके हिन्दुओंके सच्चे होनेकी रिपोर्ट की जिसपर आपने कमाल मुन्सफीसे हिन्दुओंके हकमें डिगरी देकर मुसलमानोंको वहां मसजिद बनानेसे रोक दिया।

—देवीप्रसाद मुंसिफ

१३ गुह्य प्रकरण

पिछले प्रकरणोंको ध्यानपूर्वक पढनेवालोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस प्रकरणको विशेष ध्यानसे पढें और उसपर खूब विचार करें। और प्रकरण भी उपयोगी हैं, किन्तु इस विषयमें इससे बढ़कर दूसरा प्रकरण नहीं मिलेगा। मैं पहले —

हू कि इस पुस्तकमें एक भी बात ऐसी नहीं है जिसे मैंने स्वयं अनुभव न किया हो अथवा जिसे मैं दृढतापूर्वक मानता न होऊं ।

आरोग्यकी बहुतेरी कुंजियां हैं और उनकी जरूरत है, पर उसकी मुख्य कुञ्जी ब्रह्मचर्य है । साफ हवा, अच्छी खुराक और साफ पानी इत्यादिसे हम आरोग्य लाभ कर सकते हैं पर जैसे, जितना कमाए उतना उड़ा दें तो कुछ बचत नहीं होती वैसे ही हम जितना आरोग्य लाभ करें उतना ही नष्ट कर दें तो क्या बचत होगी ? इसलिये स्त्री और पुरुष दोनोंको आरोग्यरूपी धन-सञ्चयके लिये ब्रह्मचर्यकी पूर्ण आवश्यकता है । इसमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता । जिसने अपने वीर्यकी रक्षा की है वही वीर्यवान्—बलवान कहा और गिना जा सकता है ।

ब्रह्मचर्य क्या है ? पुरुष स्त्रीका और स्त्री पुरुषका भोग न करे, यही ब्रह्मचर्य है । 'भोग न करनेका' इतना ही अर्थ नहीं है कि एक दूसरेको इच्छासे स्पर्श न करे, बल्कि इस विषयका विचार भी न करे, यहांतक कि इसके सम्बन्धमें स्वप्न भी न देखे । पुरुष स्त्रीको और स्त्री पुरुषको देखकर विह्वल न हो जाय । प्रकृतिने हमें जो गुप्तशक्ति प्रदान की है उसे दबाकर अपने शरीरमें ही संग्रह कर हमें उसका उपयोग अपने आरोग्य बढ़ानेमें करना चाहिये और वह आरोग्य केवल शरीरका ही नहीं मन, बुद्धि और स्मरणशक्तिका भी होना चाहिये ।

आइये, अब जरा देखें कि हमारे चारों ओर क्या तमाशा हो रहा है ? छोटे बड़े सभी स्त्री पुरुष प्रायः इस मोहनदमें डूबे पड़े हैं । हम प्रायः कामेन्द्रियके गुलाम बन जाते हैं । बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, आंखोंपर परदा पड़ जाता है, कामान्ध हो जाते हैं । कामपीड़ित स्त्री-पुरुष लड़के लड़कियोंको मैंने बिलकुल पागल समान देखा है । मेरा अपना अनुभव भी इससे भिन्न नहीं है । जब जब मैं उस दशाको पहुंचा हूं तब तब मैं अपनी सुधबुध तक भूल गया हूं । यह चीज ही ऐसी है । एक रत्ती सुखके

भरसे भी अधिक बल पलभरमें खो बैठते हैं। मद उतरनेपर हमारी बुरी हालत हो जाती है। दूसरे दिन सवेरे हमारा शरीर भारी रहता है, सच्चा आराम नहीं मिलता, शरीर सुस्त मालूम होता है मन ठिकाने नहीं रहता, उसके लिये हम दूधका काढा पीते हैं, गजवेलिकाचूर्ण और याकुतिया (मोती पडी हुई पुष्टिकारक दवाइयां) खाते हैं, वैद्योंके पास जाकर ताकतकी दवा मांगते हैं, सदा इस तलाशमें रहते हैं कि क्या खानेसे कामोद्दीपन होगा। योंही दिन और वर्ष बिताते बिताते हम शरीर और बुद्धिसे हीन होते जाते हैं और बुढापेमें तो बिल्कुल अक्ल खो बैठते हैं।

किन्तु वास्तवमें बुद्धि बुढापेमें मन्द होनेके बदले तेज होनी चाहिये, हमारी स्थिति ऐसी होनी चाहिये कि इस शरीरद्वारा प्राप्त अनुभव हमारे तथा दूसरोंके लिये उपयोगी हो सके। ब्रह्मचर्य-पालन करनेवालोंकी ऐसी ही स्थिति रहती है। उन्हें मृत्युभय नहीं सताता और वे मरते दमतक ईश्वरको नहीं भूलते। वे मृत्युसमयमें हायतोबा नहीं मचाते। हँसते हँसते शरीर छोड़ मालिकको अपना हिसाब देने चले जाते हैं। वही सच्चे पुरुष हैं और इसी प्रकार मरनेवाली स्त्री सच्ची स्त्री है। इन्हींकी आरोग्यरक्षा ठीक समझी जायगी।

हम साधारणरूपसे यह नहीं सोचते कि इस दुनियामें प्रमाद, मत्सर, अभिमान, आडम्बर, क्रोध, अधीरता आदि विपर्योंका कारण ब्रह्मचर्यका भंग ही है। मन वशमें न रहनेसे और रोज एक या अधिक बार बच्चोंसे भी अधिक नादान बन जानेसे हम जान या अनजानमें कौनसा अपराध न कर बैठेंगे, कौनसा घोर कर्म करते हुए आगा पीछा सोचेंगे?

पर किसीने ऐसा ब्रह्मचर्य देखा है? सब लोग ऐसा ब्रह्मचर्य पालने लगें तो संसारका सत्यानाश न हो जाय? इसमें धार्मिक विषय आ जानेकी सम्भावना है, इसलिये उतना भाग छोडकर

यहां केवल सांसारिक दृष्टिसे विचार किया जायगा। हमारी समझमें इन दोनों प्रश्नोंकी जड़ हमारी कमजोरी और मिथ्या भय है। हम ब्रह्मचर्य पालन करना नहीं चाहते इसलिये उसमेंसे निकल भागनेके बहाने ढूंढा करते हैं। ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले दुनियामें बहुत हैं पर वे योंही मिल जाय तो उनका मूल्य ही क्या रहे? हीरेकी तलाशमें हजारों मजदूरोंको पृथ्वीके अन्दर खानोंमें घुसना पड़ता है, तब कहीं पर्वताकार कंकड़ियोंसे केवल मुट्ठी भर हीरे मिलते हैं, तब ब्रह्मचर्य पालन करनेवाले हीरोंकी खोजमें कितना प्रयत्न करना चाहिये,यह बात सब लोग त्रैराशिक बांधकर उसके उत्तरद्वारा समझ सकते हैं। ब्रह्मचर्य पालन करनेमें यदि दुनिया नाश हो जाय तो इससे हमें क्या? हम ईश्वर नहीं हैं कि दुनियाकी चिन्ता करें। जिसने उसे बनाया है वह सभालेगा। यह देखनेकी भी जरूरत नहीं कि और लोग ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं या नहीं। हम व्यापार, वकालत और डाक्टरी आदि पेशोंमें पड़ते समय कभी इसका विचार नहीं करते कि यदि सब लोग व्यापारी, वकील अथवा डाक्टर हो जाय तो क्या हो? जो स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्यका पालन करेंगे उन्हें अन्तमें समयानुसार दोनों प्रश्नोंका उत्तर अपने आप मिल जायगा, अर्थात् उनके समान दूसरा उन्हें मिल रहेगा, और सब लोग ब्रह्मचर्य पालने लगें तो दुनियाका क्या होगा यह भी उनकी समझमें आ जायगा।

सांसारिक मनुष्य इन विचारोंको कैसे काममें ला सकता है? विवाहित क्या करें? बालबच्चेवालोंको कैसे चलना चाहिये? कामशक्ति जिनके वशमें नहीं रहती है, क्या करें? इस विषयमें जो सबसे उत्तम उपाय बतलाया जा चुका है उस आदर्शको सामने रखकर हम ठीक वैसाही अथवा उससे घटकर कर सकते हैं। लड़कोंको जब अक्षर लिखना सिखाया जाता है तो उन्हें अक्षरका उत्तमसे उत्तम नमूना दिया जाता है, वे अपनी शक्तिके

उसकी हूबहू या उससे मिलती जुलती नकलें उतारते हैं, हमें यह भी चाहिये कि अखड ब्रह्मचर्यका नमूना अपने सामने रखकर उसकी नकल उतारें और अभ्यास द्वारा क्रमशः उसमें पूर्णता लाभ करें। विवाह भले ही हुआ करे, प्रकृतिके नियमानुसार स्त्री पुरुषको सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा होनेपर ही ब्रह्मचर्य तोडना चाहिये। जो लोग इस प्रकार विचारकर दो चार छ वर्षमें कहीं एक दफे ब्रह्मचर्यका नियम भङ्ग करेंगे वे बिलकुल कामान्ध नहीं बनेंगे और उनके पास वीर्यरूपी पूजी ठीक तौरपर इकट्ठी रह सकेगी। ऐसे स्त्री पुरुष भाग्यहीसे मिलेंगे जो सन्तान उत्पन्न करनेके लिये कामभोग करते हैं, बाकी हजारों मनुष्य तो विषय वासना तृप्त करनेके लिये ही करते हैं और परिणाममें उनकी इच्छाके विरुद्ध सन्तति उत्पन्न होती है। इस विषय—भोगके समय हम ऐसे अन्धे हो जाते हैं कि आगेका विचार ही नहीं करते। इस विषयमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष अधिक दोषी हैं। पुरुष अपने पागलपनमें आकर एक दम यह भूल बैठते हैं कि स्त्री दुर्बल है और उसमें सन्तानके पालनपोषणकी शक्ति नहीं है। पश्चिमके लोगोंने तो इस विषयमें हद्दही कर दी है। वे अपने भोग विलासों और सन्तान उत्पन्न होनेकी दशामें उनके बोझसे बचनेके लिये अनेक उपचार करते हैं। वहा इस विषयपर अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं, वहा ऐसे पेशेवर भी पडे हैं जो लोगोंको बतलाते हैं कि अमुक काम करनेसे विषय भोग करते हुए भी सन्तति न उत्पन्न होगी। हम लोग अभी इस पापसे मुक्त हैं, पर अपनी स्त्रियोंपर बोझ लादते समय हम सन्ततिके निर्बल, वीर्यहीन, पागल और निर्बुद्धि होनेकी जरा भी परवा नहीं करते। सन्तति होनेपर ईश्वरका उपकार मानते हैं। अपनी दरिद्र दशा ढकनेका हमने यह एक मार्ग निकाल लिया है।

कमजोर, लूली लङ्गडी, विषयी और निस्सत्व सततिका होना ईश्वरीय कोपही तो है। बारह वर्षकी लड़कीके सन्तान हो इसमें

हमारे आनन्द मनानेको कौनसी बात धरी है कि जिसके लिये ढोल पीटे जाय ? १२ वर्षकी लडकीका माता बन जाना ईश्वरका महा कोप है या और कुछ ? तुरन्तके बोये पेडमें जो फल लगते हैं वह कमजोर होते हैं, यह सब लोग जानते हैं। यही कारण है कि हम तरह तरहके उपाय करके उनमें फल नहीं लगने देते। पर बालक स्त्री और बालक वरसे सन्तान उत्पन्न होनेपर हम आनन्द मनाते हैं। यह हमारी निरी मूर्खता नहीं तो और क्या है? हिन्दुस्तानमें अथवा दुनियाके किसी हिस्सेमें अगर कमजोर चींटियोंके समान भी बढ़ जायँ तो उनसे हिन्दुस्तानका, अथवा दुनियाका क्या लाभ होगा ? हमसे तो वे पशुही भले हैं जिनमें नर और मादाका सयोग तभी कराया जाता है जब उनसे बच्चे उत्पन्न कराने होते हैं। स्त्री पुरुषका संसर्ग होनेसे लेकर उस समय तकको बिलकुल पवित्र समझना चाहिये जबतक कि बच्चा माके पेटसे उत्पन्न होकर दूध पीना न छोड दे। इस कालमें स्त्री और पुरुषको ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। पर हम इसके विषयमें जरा भी विचार न कर अपना काम किये ही जाते हैं। यह मनका असाध्य रोग है। यह रोग मौतसे हमारी भेंट कराते हैं और मौतके पहलेतक हमारा मन हमें शेखचिल्ली बनाये रहता है। इसलिये विवाहित स्त्री पुरुषोंका यह मुख्य कर्त्तव्य है कि वे विवाहका उल्टा अर्थ न कर सच्चा अर्थ करें और जब सचमुच सन्तान न हो तभी वंश चलानेकी इच्छासे ही सन्तान पैदा करें।

हमारी वर्त्तमान करुणदशामें ऐसा करना बहुत ही कठिन है। हमारी खुराक, रहन सहन, बात चीत, आस पासके दृश्य, ये सभी हमारी विषयवासनाको जागृत करनेवाले हैं। हमें हरदम विषयका नशा चढ़ा रहता है। कुछ लोग शंका करते हैं कि जब यह हालत है तब आदमी विचार कर भी इस रोगसे फँसे बच सकता है ? पर यह लेख ऐसे मनुष्योंके लिये नहीं लिखा गया है जो सोचते फिरें कि कर्त्तव्य कैसे किया जाय, यह उनके

उसकी हूबहू या उससे मिलती जुलती नकलें उतारते हैं, हमें यह भी चाहिये कि अखड ब्रह्मचर्यका नमूना अपने सामने रखकर उसकी नकल उतारें और अभ्यास द्वारा क्रमश उसमें पूर्णता लाभ करें। विवाह भले ही हुआ करे, प्रकृतिके नियमानुसार स्त्री पुरुषको सन्तानोत्पत्तिकी इच्छा होनेपर ही ब्रह्मचर्य तोडना चाहिये। जो लोग इस प्रकार विचारकर दो चार छ वर्षमें कहीं एक दफे ब्रह्मचर्यका नियम भङ्ग करेंगे वे बिलकुल कामान्ध नहीं बनेंगे और उनके पास वीर्यरूपी पूंजी ठीक तौरपर इकट्ठी रह सकेगी। ऐसे स्त्री पुरुष भाग्यहीसे मिलेंगे जो सन्तान उत्पन्न करनेके लिये कामभोग करते हैं, बाकी हजारों मनुष्य तो विषय वासना तृप्त करनेके लिये ही करते हैं और परिणाममें उनकी इच्छाके विरुद्ध सन्तति उत्पन्न होती है। इस विषय—भोग समय हम ऐसे अन्धे हो जाते हैं कि आगेका विचार ही न करते। इस विषयमें स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुष अधिक दोषी पुरुष अपने पागलपनमें आकर एक दम यह भूल बैठते हैं कि दुर्बल है और उसमें सन्तानके पालनपोषणकी शक्ति नह पश्चिमके लोगोंने तो इस विषयमें हद्दही कर दी है। वे भोग विलासों और सन्तान उत्पन्न होनेकी दशामें उनसे बचनेके लिये अनेक उपचार करते हैं। वहा इस विषय पुस्तकें लिखी गयी हैं, वहा ऐसे पेशेवर भी बतलाते हैं कि अमुक काम करनेसे विषय सन्तति न उत्पन्न होगी। हम लोग अभी पर अपनी स्त्रियोंपर बोझ लादते समय हम वीर्यहीन, पागल और निर्बुद्धि होनेकी करते। सन्तति होनेपर ईश्वरका उपकार दशा ढकनेका हमने यह एक मार्ग निकाल कमजोर, लूली लङ्गडी, विषयी और ईश्वरीय कोपही तो है। बारह वर्षकी

इससे होनेवाले मानसिक और शारीरक लाभका अनुभव मैंने किया है। मैं लडकपनमें ही ब्याहा गया और विषयान्ध होकर बच्चोंका बाप बना। बहुत दिनोंतक इस प्रकार जीवन बितानेके बाद मेरी आखें खुलीं तो अपनेको घोर अधकारमें मग्न पाया। मेरी भूलों और अनुभवसे यदि एक भी मनुष्य चेतकर बच सकेगा तो मैं यह प्रकरण लिखकर अपनेको कृतार्थ समझूगा। मुझमें उत्साह बहुत है। यह बहुत लोगोंने कहा है और मैं भी मानता हू। मेरा मन कमजोर नही गिना जाता–कुछ लोग तो मुझे हठी तक कहते हैं। मेरे शरीर और मनमें रोग मौजूद हैं, फिर भी अपने साथियोंमें मैं भला चगा गिना जाता हू। जब बीस वर्ष तक थोडे या घने विषयमें पडे रहनेके बाद भी मैं ब्रह्मचर्य द्वारा ऐसी स्थिति प्राप्त कर सका तो मैं यदि इन बीस वर्षों में भी ब्रह्मचर्यसे रह सकता तो मेरी कैसी अच्छी स्थिति होती ? तब तो आज मेरे उत्साहका पार न होता और जनताकी सेवा या अपने स्वार्थमें वह उत्साह दिखला सकता जिसके उदाहरण कठिनाईसे मिलते। मेरे साधारण उदाहरणसे इतना साराश निकाला जा सकता है। जिन लोगोंने अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन किया है उनकी शारीरिक, मानसिक और आचारिक शक्तिका विचार केवल वही लोग कर सकते हैं जिन्होंने उन्हें देखा हो। वर्णन होना असभव है।

पाठकोंने समझ लिया होगा कि जब विवाहित स्त्री पुरुषोंको ब्रह्मचर्य पालन करनेकी सलाह दी गयी है और रडुओं तथा विधवाओंको ब्रह्मचर्यका पालन आवश्यक बतलाया गया है तब विवाहित या अविवाहित पुरुष स्त्रियोंके अन्यत्र विषयसेवनकी तो बात ही नहीं कही जा सकती। वेश्या अथवा पराई स्त्रीपर कुदृष्टि करनेसे कैसा घोर परिणाम होता है इसका विचार आरोग्य सम्बन्धी बातोंके साथ नहीं किया जा सकता, यह धर्म और सूक्ष्म नीतिका विषय है। यहा केवल इतना ही कहा जा

सकता है कि परस्त्री अथवा वेश्यागमनसे मनुष्य गरमी आदि नाम न लेने योग्य नीच बीमारियोंसे पीडित होकर सडते देखे जाते हैं। प्रकृतिके दर्बारसे ऐसे स्त्री पुरुषोंको तुरन्त ही सजा मिल जाती है, उनके पाप फूट निकलते हैं, खाट पकडनी पडती है, डाक्टरोंके दरवाजोंकी खाक छाननी पडती है। जहां परस्त्री गमन नहीं होता वहा ५० प्रति सैकडे डाक्टर और वैद्य निकम्मे हो जाते हैं। इन बीमारियोंसे मनुष्य जातिको इस तरह घिरे देखकर विचारशील डाक्टरोंको कहना पडा है कि यदि परस्त्रीगमनका सपाटा योंही चलता रहा तो दवा करते करते भी सन्तान-नाशकी सभावना बनी ही रहेगी। इन रोगोंकी दवाइया इतनी जहरीली होती हैं कि असली बीमारी दूर हो जानेपर भी वे शरीर में और बहुतसे ऐसे दूसरे रोग उत्पन्न कर देती हैं जो पीढी दर पीढी चले जाते हैं।

अब विवाहित स्त्री पुरुषोंको ब्रह्मचर्य पालन करनेके उपाय बताकर इस आवश्यकतासे अधिक बढे हुए प्रकरणको समाप्त करना चाहिये। विवाहित स्त्री पुरुष खुराक, दवा और पानीके नियमोंका पालन करके ही ब्रह्मचर्यकी रक्षा नहीं कर सकते। उन्हें एक दूसरेके साथ एकान्तवास छोडना चाहिये। विचार करनेसे जान पडेगा कि विषय भोगके सिवा पति-पत्नीके एकान्त-वासकी आवश्यकता नहीं होती। रात्रिमें स्त्री और पुरुषको अलग अलग कमरोंमें सोना चाहिये। दिनमें अच्छे अच्छे विचारों या कामोंमें लगे रहना चाहिये। ऐसी पुस्तकें पढ़नी चाहिये जिनसे अपने सुविचारोंको उत्तेजन मिले। आदर्श पुरुषोंके जीवनचरित्रोंका मनन और इस बातका निरन्तर चिन्तन कि भोगमें दु ख ही दु ख है, ब्रह्मचर्य पालन करनेवालोंके लिये बहुत ही लाभदायक है। जब जब विषयकी इच्छा उत्पन्न हो तब तब ठंढे पानीसे नहा लेना चाहिये। इससे शरीरके अन्दर रहनेवाली महाग्नि दूसरा और अच्छा रूप धारण करके पुरुष

और स्त्री दोनोंके लिये उपकारी बन जायगी और उनके सच्चे सुखमें बडी वृद्धि होगी। काम कठिन है, परन्तु कठिनाइयोंके जीतनेहीके लिये तो हम पैदा हुए हैं, आरोग्यप्राप्तिकी इच्छा रखनेवालोंको वे कठिनाइयां जीतनी ही पड़ेंगी।

—महात्मा गान्धी

१४ लाग-डांट

जोखू भगत और बेचन चौधरीमें तीन पीढियोंसे अदावत चली आती थी। कुछ डाडमेडका झगडा था। उनके परदादोंमें कई बार खून खच्चर हुआ। बापोंके समयसे मुकद्दमेबाजी शुरू हुई। दोनों कई बार हाईकोर्ट तक गये। लडकोंके समयमें संग्रामकी भीषणता और भी बढी। यहांतक कि दोनों ही अशक्त हो गये। पहले दोनों इसी गांवमें आधे आधेके हिस्सेदार थे, अब उनके पास उस झगडेवाले खेतको छोडकर एक अंगुल जमीन भी न थी। भूमि गयी, धन गया, मान मर्यादा गयी लेकिन वह विवाद ज्योंका त्यों बना रहा। हाईकोर्टके धुरन्धर नीतिज्ञ एक मामूली सा झगडा तै न कर सके।

इन दोनों सज्जनोंने गांवको दो विरोधी दलोंमें विभक्त कर दिया था। एक दलकी भंग बटी चौधरीके द्वारपर छनती तो दूसरे दलके चरस गांजेके दम भगतके द्वारपर लगते थे। स्त्रियों और बालकोंके भी दो दल हो गये थे। यहांतक कि दोनों सज्जनोंके सामाजिक और धार्मिक विचारोंमें भी विभाजक रेखा खिची हुई थी। चौधरी कपडे पहने सत्तू खा लेते और भगतको ढोंगी कहते। भगत बिना कपडे उतारे पानी भी न पीते और चौधरीको भ्रष्ट बतलाते। भगत सनातनधर्मी बने तो चौधरीने आर्यसमाजका आश्रय लिया, जिस बजाज, पन्सारी या कुंजडेसे चौधरी सौदा लेते उसकी ओर भगतजी ताकना भी पाप समझते थे, और भगतजीके हलवाईकी मिठाइयां, उनके ग्वालेका दूध

और तेलीका तेल चौधरीके लिये त्याज्य था। यहांतक कि उनके आरोग्यके सिद्धांतोंमें भी भिन्नता थी, भगतजी वैद्यकके कायल थे, चौधरी युनानी प्रथाके माननेवाले। दोनों चाहे रोगसे मर जाते पर अपने सिद्धान्तोंको न छोडते।

२

जब देशमें राजनैतिक आन्दोलन शुरू हुआ तो उसकी भनक उस गावमें भी पहुँची। चौधरीने आन्दोलनका पक्ष लिया, भगत उसके विपक्षी हो गये। एक सज्जनने आकर गावमें किसान सभा खोली। चौधरी उसमें शरीक हुए, भगत अलग रहे। जागृति और बढी स्वराज्यकी चर्चा होने लगी। चौधरी स्वराज्यवादी हो गये, भगतने राजभक्तिका पक्ष लिया। चौधरीका घर स्वराज्यवादियोंका अड्डा हो गया, भगतका घर राजभक्तोंका क्लब बन गया।

चौधरी जनतामें स्वराज्यवादका प्रचार करने लगे—मित्रो, स्वराजका अर्थ है अपना राज। अपने देशमें अपना राज हो तो वह अच्छा है कि किसी दूसरेका राज हो वह?

जनताने कहा—अपना राज हो वह अच्छा है।

चौधरी—तो यह स्वराज कैसे मिलेगा? आत्मबलसे, पुरुपार्थसे, मेलसे, एक दूसरेसे द्वेष करना छोड दो, अपने झगडे आप मिलकर निपटा लो।

एक शङ्का—आप तो नित्य अदालतमें खडे रहते हैं।

चौधरी—हां, पर आजसे अदालत जाऊं तो मुझे गोहत्याका पाप लगे। तुम्हें चाहिये कि तुम अपनी गाढी कमाई अपने बाल बच्चोंको खिलाओ, और बचे तो परोपकारमें लगाओ, वकील मुख्तारोंकी जेब क्यों भरते हो, थानेदारको घूस क्यों देते हो, अमलोंकी चिरौरी क्यों करते हो? पहले हमारे लडके अपने धर्मकी शिक्षा पाते थे, वह सदाचारी, त्यागी, पुरुपार्थी बनते थे।

अब वह विदेशी मदरसोंमें पढ़कर चाकरी करते हैं, घूस खाते हैं, शौक करते हैं, अपने देवताओं और पितरोंकी निन्दा करते हैं, सिगरेट पीते हैं, बाल बनाते हैं और हाकिमोंकी गोडधरिया करते हैं। क्या यह हमारा कर्त्तव्य नहीं है कि हम अपने बालकों-को धर्मानुसार शिक्षा दें?

जनता—चन्दा करके पाठशाला खोलनी चाहिये।

चौधरी—हम पहले मदिराका छूना पाप समझते थे, अब गाव गाव और गली गलीमें मदिराकी दूकानें हैं। हम अपनी गाढ़ी कमाईके करोड़ों रुपये गाजा शराबमें उड़ा देते हैं।

जनता—जो दारू भाग पीये उसे डाड लगाना चाहिये।

चौधरी—हमारे दादा बाबा, छोटे बड़े सब गाढ़ा गजी पहनते थे, हमारी दादी नानी चरखा काता करती थीं। सब धन देशमें रहता था। हमारे जुलाहे भाई चैनकी बशी बजाते थे। अब हम विदेशके बने हुए महीन रगीन कपडोंपर जान देते हैं। इस तरह दूसरे देशवाले हमारा धन ढो ले जाते हैं, बेचारे जुलाहे कगाल हो गये। क्या हमारा यही धर्म है कि अपने भाइयों की थाली छीनकर दूसरोंके सामने रख दें?

जनता—गाढ़ा कहीं मिलता ही नहीं।

चौधरी—अपने घरका बना हुआ गाढ़ा पहनो, अदालतोंको त्यागो, नशेबाजी छोडो, धर्म कर्म सिखाओ, मेलसे रहो, बस यही स्व[illegible] कि स्वरा ज्यके लिये खूनकी नदी [illegible] ध्यान मत दो।

जन[illegible]

ओंकी

बन

३

भगतजी भी राजभक्तिका उपदेश करने लगे —

"भाइयो, राजाका कार्य राज करना और प्रजाका काम उसकी आज्ञा पालन करना है, इसीको राजभक्ति कहते हैं और हमारे धार्मिक ग्रन्थोंमें हमें इसी राजभक्तिकी शिक्षा दी गयी है। राजा ईश्वरका प्रतिनिधि है, उसकी आज्ञाके विरुद्ध चलना महान् पातक है। राजविमुख प्राणी नरकका भागी होता है।

एक शङ्का—राजाको भी तो अपने धर्मका पालन करना चाहिए।

दूसरी शङ्का—हमारे राजा तो नामके हैं, असली राजा तो विलायतके बनिये महाजन हैं।

तीसरी शङ्का—बनिये धन कमाना जानते हैं राज करना क्या जानें।

भगतजी—लोग तुम्हें शिक्षा देते हैं कि अदालतोंमें मत जाओ, पचायतोंमें मुकद्दमे ले जाओ, लेकिन ऐसे पंच कहां हैं जो सच्चा न्याय करें, दूधका दूध और पानीका पानी कर दें? यहां मुंह देखी बातें होंगी। जिनका दबाव है उनकी जीत होगी। जिनका कुछ दबाव नहीं है वह बेचारे मारे जायगे। अदालतोंमें सब कार्रवाई कानूनपर होती है, वहां छोटे बड़े सब बराबर हैं, शेर बकरी एक घाट पानी पीते हैं। इन अदालतोंको त्यागना अपने पैरोंमें कुल्हाडी मारना है।

एक शङ्का—अदालतमें जायँ तो रुपयेकी थैली कहांसे

दूसरी शङ्का—अदालतोंका न्याय कहनेहीको है पास बने हुए गवाह और दाव पेंच खेले। उसीकी जीत होती है, झूठे सच्चेकी हैरानी अलबत्ता होती है।

भगत—कहा जाता है कि विदे

करो। यह गरीबोंके साथ घोर अन्याय है। हमको बाजारमें जो चीज सस्ती और अच्छी मिले वह लेनी चाहिये। चाहे स्वदेशी हो या विदेशी। हमारा पैसा सेंतमें नहीं आता है कि उसे रद्दी भद्दी स्वदेशी चीजोंपर फेंकें।

एक शङ्का—पैसा अपने देशमें तो रहता है, दूसरोंके हाथमें तो नहीं जाता?

दूसरी शङ्का—अपने घरमें अच्छा खाना न मिले तो क्या विजातियोंके घरका अच्छा भोजन खाने लगें?

भगत—लोग कहते हैं कि लडकोंको सरकारी मदरसोंमें मत भेजो—सरकारी मदरसोंमें न पढते तो आज हमारे भाई बडी बडी नौकरियां कैसे पाते, बडे बडे कारखाने कैसे चलाते, बिना नयी विद्या पढे अब संसारमें निबाह नहीं हो सकता, पुरानी विद्या पढकर पत्रा देखने और कथा बाचनेके सिवाय और क्या आता है? राज-काज क्या यही पोथी बाचनेवाले लोग करेंगे?

एक शङ्का—हमें राजकाज न चाहिये, हम अपनी खतीबारी होमें मगन हैं, किसीके गुलाम तो नहीं।

दूसरी शङ्का—जो विद्या घमंडी बना दे उससे मूरखही अच्छा। यह नयी विद्या पढकर तो लोग सूट-बूट, घडी छडी, हैट-कोट, लगाने लगते हैं और अपने शौकके पीछे देशका धन विदेशियोंकी जेबमें भरते हैं, ये देशके द्रोही हैं।

भगत—गांजा शराबकी ओर आजकल लोगोंकी बाडी निगाह है। नशा बुरी लत है इसे सब जानते हैं। सरकारको नशेकी दूकानोंसे करोडों रुपये सालकी आमदनी होती है। अगर दूकानोंमें न जानेसे लोगोंकी नशेकी लत छूट जाय तो बडी अच्छी बात है। लेकिन लतीकी लत कहीं छूटती है? वह दूकानपर न जायगा तो चोरी छिपे किसी न किसी तरह दूने चौगुने दाम देकर, सजा काटनेपर तैयार हो कर अपनी लत पूरी करेगा। ऐसा काम क्यों करो कि सरकारका नुकसान

अलग हो और गरीब रैयतका नुकसान अलग हो। और फिर किसी किसीको नशा खानेसे फायदा होता है। मैं ही एक दिन अफीम न खाऊं तो गाठोंमें दर्द होने लगे, दम उखड़ जाय और सरदी पकड़ ले।

एक आवाज—शराब पीनेसे बदनमें फुर्ती आ जाती है।

एक शङ्का—सरकार अधर्मसे रुपया कमाती है, उसे यह उचित नहीं है। अधर्मीके राजमें रहकर प्रजाका कल्याण कैसे हो सकता है?

दूसरी शङ्का—पहले दारू पिलाकर पागल बना दिया। लत पड़ी तो पैसेकी चाट हुई। इतनी मजूरी किसको मिलती है कि रोटी कपड़ा भी चले और दारू शराब भी उड़े? या तो बाल बच्चोंको भूखों मारो या चोरी करो। जूआ खेलो और बेईमानी करो। शराबकी दूकान क्या है, हमारी गुलामीका अड्डा है।

४

चौधरीके उपदेश सुननेके लिये जनता टूटती थी लोगोंको खड़े होनेकी जगह न मिलती। दिनोंदिन चौधरीका मान बढ़ने लगा, उनके यहां नित्य पञ्चायतोंकी, राष्ट्रोन्नतिकी चर्चा रहती। जनताको इन बातोंसे बड़ा आनन्द और उत्साह होता। उनके राजनैतिक ज्ञानकी वृद्धि होती। वह अपना गौरव और महत्व समझने लगे, उन्हें अपनी सत्ताका अनुभव होने लगा। निरंकुशता और अन्यायपर अब उनकी तिउरियां चढ़ने लगीं। उन्हें स्वतन्त्रताका स्वाद मिला। घरकी रुई, घरका सूत, घरका कपड़ा, घरका भोजन, घरकी अदालत, न पुलिसका भय, न अमलोंकी खुशामद, सुख और शान्तिसे जीवन व्यतीत करने लगे। कितनों हीने नशेबाजी छोड़ दी और सद्भावोंकी एक लहरसी दौड़ने लगी।

लेकिन भगतजी इतने भाग्यशाली न थे। जनताको दिनों-

दिन उनके उपदेशोंसे अरुचि होती जाती थी। यहांतक कि बहुधा उनके श्रोताओंमें, पटवारी, चौकीदार, मुदर्रिस और इन्हीं कर्मचारियोंके मेली मित्रोंके अतिरिक्त और कोई न होता था। कभी कभी बड़े हाकिम भी आ निकलते और भगतजीका बड़ा आदर सत्कार करते, जरा देरके लिये भगतजीके आंसू पुछ जाते लेकिन क्षणभरका सम्मान आठों पहरके अपमानकी बराबरी कैसे करता, जिधर निकल जाते उधर ही उंगलियां उठने लगतीं। कोई कहता, खुशामदी टट्टू है, कोई कहता खुफिया पुलिसका भेदी है। भगतजी अपने प्रतिद्वन्दीकी बड़ाई और अपनी लोकनिन्दापर दांत पीस पीस रह जाते थे। जीवनमें यह पहलाही अवसर था कि उन्हें अपने शत्रुके सामने नीचा देखना पड़ा—चिरकालसे जिस कुल मर्यादाकी रक्षा करते आये थे और जिसपर अपना सर्वस्व अर्पण कर चुके थे वह धूलमें मिल गयी। यह दाहमय चिन्ता उन्हें एक क्षणके लिये चैन न लेने देती। नित्य यही समस्या सामने रहती कि अपना खोया हुआ सम्मान क्यों कर पाऊं, अपने प्रतिपक्षीको क्योंकर पददलित करूं, उसका गरूर क्योंकर तोड़ूं।

अन्तमें उन्होंने सिंहको उसकी मान्दमे ही पछाड़नेका निश्चय किया।

५

सन्ध्याका समय था। चौधरीके द्वारपर एक बड़ी सभा हो रही थी। आसपासके गावोंके किसान भी आ गये थे, हजारों आदमियोंकी भीड़ थी। चौधरी उन्हें स्वराज्य विषयक उपदेश दे रहे थे। बारम्बार भारतमाताकी जयकारकी ध्वनि उठती थी। एक ओर स्त्रियोंका जमाव था। चौधरीने अपना उपदेश समाप्त किया और अपनी गद्दीपर बैठे। स्वयंसेवकोंने स्वराज्य-फण्डके लिये चन्दा जमा करना शुरू किया कि इतनेमें भगतजी

न जाने किधरसे लपके हुए आये और श्रोताओंके सामने खड़े होकर उच्चस्वरसे बोले —

भाइयो, मुझे यहा देखकर अचरज मत करो, मैं स्वराजका विरोधी नहीं हूं। ऐसा पतित कौन प्राणी होगा जो स्वराजका निन्दक हो, लेकिन इसके प्राप्त करनेका वह उपाय नहीं है जो चौधरीने बतलाया है और जिसपर तुमलोग लट्टू हो रहे हो। जब आपसमें फूट और राड है तो पचायतोंसे क्या होगा? जब विलासिताका भूत सिरपर सवार है तो नशा कैसे छूटेगा, मदिराकी दूकानोंका वहिष्कार कैसे होगा? सिगरेट, साबुन, मोजे, बनियायन, अद्धी, तजेबसे कैसे पिंड छूटेगा? जब रोब और हुकूमतकी लालसा बनी हुई है तो सरकारी मदरसे कैसे छोड़ोगे, विधर्मी शिक्षाकी बेडीसे कैसे मुक्त हो सकोगे? स्वराज लेनेका केवल एक ही उपाय है और वह आत्मसयम है। यही महौषधि तुम्हारे समस्त रोगोंको समूल नष्ट करेगी। आत्माकी दुर्बलता ही पराधीनताका मुख्य कारण है, आत्माको बलवान बनाओ, इन्द्रियोंको साधो, मनको वशमें करो, तभी तुममें भ्रातृ-भाव पैदा होगा, तभी वैमनस्य मिटेगा, तभी ईर्षा और द्वेषका नाश होगा, तभी भोग विलाससे मन हटेगा, तभी नशेबाजीका दमन होगा। आत्मबलके बिना स्वराज कभी उपलब्ध न होगा। स्वार्थ सब पापोंका मूल है, यही तुम्हें अदालतोंमें ले जाता है, यही तुम्हें विधर्मी शिक्षाका दास बनाये हुए है। इस पिशाचको आत्मबलसे मारो और तुम्हारी कामना पूरी हो जायगी। सब जानते हैं मैं ४० सालसे अफीमका सेवन करता हूं, आजसे मैं अफीमको गऊका रक्त समझता हूं। चौधरीसे मेरी तीन पीढ़ियोंकी अदावत है, आजसे चौधरी मेरे भाई हैं। आजसे मेरे घरके किसी प्राणीको घरके कते सूतसे बुने हुए कपडेके सिवा कुछ और पहनते देखो तो मुझे जो दण्ड चाहो दो। बस, यही कहना है परमात्मा हम सबकी इच्छा पूरी करें।

यह कहकर भगतजी घरकी ओर चले कि चौधरी दौडकर उनके गलेसे लिपट गये। तीन पुश्तोंकी अदावत एक क्षणमें शान्त हो गयी।

उसी दिनसे चौधरी और भगत साथ साथ स्वराजका उपदेश करने लगे। उनमें गाढी मित्रता हो गयी और यह निश्चय करना कठिन था कि दोनोंमेंसे जनता किसका अधिक सम्मान करती है।

प्रतिद्वन्दिता वह चिनगारी थी जिसने दोनों पुरुषोंके हृदय-दीपकको प्रकाशित कर दिया था। —प्रेमचन्द

१५. महर्षि अरविन्द घोष।

अरविन्दके पिताका नाम कृष्णदास घोष था। १८७२ ईसवीके अगस्त महीनेमें अरविन्दका जन्म कलकत्तेमें हुआ। आपके पिता कलकत्तेमें पहले डाक्टरी करते थे। पीछेसे वे विलायत गये। वहा चिकित्साशास्त्रका यथाविधि अध्ययन करके वे भारतके चिकित्सा-विभाग अर्थात् आइ० एम० एस० में प्रविष्ट हुए। कृष्णदासके ससुर



वसु और अपने पर वे

सदा ही कमी बनी रहती थी। फल यह होता था कि अरविन्दके खर्चके लिये वे काफी रुपया विलायत न भेज सकते थे। इससे अरविन्दको कभी कभी बड़े कष्टसे अपने दिन काटने पड़ते थे। पर बड़ी बड़ी कठिनाइयां झेलकर भी उन्होंने अपना अध्ययन जारी रखा और आई० सी० एस० की परीक्षाके लिये ऐसी तैयारी की कि पास हो गये और पास हुए छात्रोंमें आपका दसवां नम्बर रहा। किन्तु एक कमी आपमें पायी गयी। घोड़ेपर सवारी करनेमें आप कच्चे निकले। इस कारण आप फेल समझे गये और जिस निमित्त आपने यह परीक्षा दी थी वह सफल न हुआ। उस समय आपकी उम्र सिर्फ १८ या १६ वर्ष की थी। इतनी थोड़ी उम्रमें, अँगरेजीके सदृश क्लिष्ट और विदेशी भाषामें सैकड़ों अँगरेज छात्रोंके साथ परीक्षा देकर दसवें नम्बरपर पास होना अरविन्दकी तीव्रबुद्धिका ज्वलन्त प्रमाण है।

अरविन्दने अँगरेजी भाषामें ही विशेष विज्ञता नहीं प्राप्त की थी, ग्रीकके सदृश पुरानी भाषा सीखनेमें भी आपने बड़ी योग्यता प्रदर्शित की। योग्यता क्या प्रदर्शित की अपने साथी अन्य सभी परीक्ष्य छात्रोंको मात कर दिया। इस विषयमें आपका नम्बर, पास हुए छात्रोंमें, पहला रहा।

आई० सी० एस० की परीक्षा पास कर लेनेपर भी जब अरविन्दको जगह न मिली तब आपने केम्ब्रिजके किंग्ज कालेजमें प्रवेश किया। वहां भी आपने बड़ी नामवरीके साथ अपना अध्ययन-काल समाप्त किया। १८६२ में आपने वहांसे बी० ए० की उपाधि प्राप्त की।

उस समय बड़ौदेके अधीश, सर सयाजीराव गायकवाड, विलायतमें थे। अरविन्द बाबू उनसे मिले। गायकवाड अरविन्द बाबूकी विद्या-बुद्धि देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। भारतको लौट आनेपर महाराजा गायकवाडने अरविन्द बाबूको याद किया और अच्छे वेतनपर अपना सहकारी कार्य्यकर्त्ता बनाया। वहां

आपने कई पदोंका उपभोग किया। कुछ दिन आप महाराजा गायकवाडके प्राइवेट सेक्रेटरी रहे, कुछ दिन दीवानके दफ्तरमें आपने काम किया, कुछ दिन खानगी दफ्तरमें भी आपने बडी योग्यतासे कार्य्य निर्वाह किया। पीछेसे आप बडौदा-कालेजमें वाइस प्रिंसिपल, अर्थात् प्रधानाध्यापकके सहकारी, नियत हुए। इस पदपर रहकर अरविन्द बाबूने अपनी विद्वत्ता और शिक्षण कुशलतासे सभीको मोह लिया। वेतन आपका कोई ७५०) रुपये मासिक हो गया। २१ वर्षकी उम्रमें आप बडौदा गये और १२ वर्षतक वहा रहकर, बङ्ग-भङ्गके कारण उत्पन्न हुई राजनैतिक चर्चाके समय, नौकरी छोड कलकत्ते चले गये।

कलकत्ते जानेपर उनके ऊपर जो जो सङ्कट आये उनके उल्लेखकी यहा विशेष आवश्यकता नहीं, क्योंकि समाचारपत्र पाठी सज्जनोंसे वे बातें छिपी नहीं। अन्तमें आगत आपदाओंसे परित्राण पाकर आप पाडीचेरी चले गये। कई सालसे आप वहीं निवास करते हैं और "आर्य्य" नामक सामयिक पत्रका स्वयं सम्पादन करके उसे प्रकाशित करते हैं।

कलकत्तेमें जिस समय आप आपत्ति-ग्रस्त थे उस समय एक घटना बडी विचित्र हुई। आई० सी० एस० की जिस परीक्षामें आप उत्तीर्ण हुए थे उसीमें बीचक्राफ्ट नामका एक छात्र भी उत्तीर्ण हुआ था। ग्रीक भाषामें अरविन्दने पहला नम्बर पाया था और बीचक्राफ्टने दूसरा। घोडेकी सवारीमें फेल होनेके कारण आप तो रह गये, बीचक्राफ्ट निकल गये। जिस समय कलकत्तेमें अरविन्द बाबूको सरकारने गिरफ्तार करके उनपर मुकद्दमा चलाया उस समय वही बीचक्राफ्ट महाशय कलकत्तेमें प्रेसीडेंसी मेजिस्ट्रेट थे। इन्हीं बीचक्राफ्टके सामने, मुलजिमकी हैसियतसे, अरविन्द बाबूको खडा होना पडा था। "दैवी विचित्रा गति"।

बडौदेसे कलकत्ते जानेपर अरविन्द बाबूने राजनैतिक

कदम रखा । आप बाबू विपिनचन्द्रपालके "वन्दे मातरम्
नामक पत्रमें लेख लिखने लगे । यह पत्र अँगरेजीमें निकलत
था। आपके लेखोंने इस पत्रके प्रचारको सहसा बहुत बढ़ा दिया
लोग उसे बड़े ही उत्साहसे पढने लगे। अरविन्द बाबूकी विद्वत्त
लेखनशैली, राजनीतिज्ञतापर लोग मुग्ध हो गये । उनकी लेख
नीकी बदौलत यह पत्र कुछ समयतक बडी शानसे निकला। पी
इसे अकालमें ही कालग्रस्त होना पडा। अरविन्द बाबूकी राज
नीतिने जिस तरह "वन्दे मातरम्"को बहुत ऊँचे स्थानपर पहुँच
दिया था उसी तरह उनके तत्त्वज्ञान और दार्शनिक विचारों
उनके "आर्य्य" को विद्वानोंके हृदयमें स्थान दिलाया है।

जो अरविन्द बाबू किसी समय पूरे साहब थे वे अब पू
तपस्वी बन गये हैं। वेश भूषा उनकी बिलकुल ही बदल गयी है
हृदय उनका पहले भी यद्यपि कोमल, उदार और ऋषि मुनियोंक
जैसा था, पर अब तो उनके बाहरी व्यवहार और वस्त्राच्छाद
आदि भी तपस्वियोंके जैसे हो गये हैं। सुनते हैं, आपने ईश्वर
चिन्तन और समाधि-साधनमें भी विशेष सफलता प्राप्त कर ली
है। किसी किसीका अनुमान है कि उन्होंने ब्रह्मानन्दका अनुभव
भी किया है। अपने गुरु, एक योगी महात्माके आदेशसे पहले
ही प्रयत्नमें आपने अपने मनका चाञ्चल्य दूर करके,उसे शून्य-
तासे परिपूर्ण कर दिया था। यह कितना कठिन काम है, इसे
वही जान सकते हैं जो इस पथके पथिक हो चुके हैं।

१६ खलीफा मामूं रशीद

मुसलमान शासकोंमें खलीफा "मामू रशीद" बडाही सहृदय
विद्याप्रेमी, विद्वान और न्यायपरायण शासक हुआ है। यह
सुप्रसिद्ध खलीफा "हारू रशीद" का पुत्र था। विद्या-प्रेमके लिये
हारू रशीदका नाम भी बहुत प्रसिद्ध है। हारू रशीदने एक बहुत
बडा अनुवाद विभाग "बैतुल हिकमत" (विद्या मंदिर) नामसे

कायम किया था जिसमें बडे बडे विद्वान विविध भाषाओंसे उपादेय ग्रन्थोंके अनुवाद करनेपर नियुक्त थे। मामू रशीदने इस विभागको अपने शासनकालमें बहुत उन्नति की। इसने सुदूर देशोंसे बडे बडे वेतनोंपर अनेक विषयोंके विशेषज्ञ विद्वानोंको बुलाकर अपने यहा इकट्ठा किया और अनुवाद द्वारा विविध विषयोंके ग्रन्थोंसे अरबी भाषाको मालामाल कर दिया। इस विद्यामंदिरके बहुतसे अनुवादकोंका वेतन आजकलके हिसाबसे ढाई ढाई हजार रुपये मासिक था। वेतनके अतिरिक्त पुरस्कार भी यथेष्ट मिलता था। मशहूर है कि मामू प्रत्येक पुस्तकके अनुवादके बदलेमें पुस्तकके बराबर सोना तौलकर देता था। अनुवादकोंमें अनेक भिन्न मतावलम्बी विदेशी विद्वान थे जिनके साथ मामूका बर्ताव अत्यन्त उदारतापूर्ण था। मुसलमान शासक धार्मिक विद्वेषके लिये बदनाम हैं, पर मामू इस विषयमें बहुत उदार था। उसके दरबारमें बहुतसे पारसी, यहूदी, ईसाई और हिन्दू विद्वान थे, जिन्हें अपने धार्मिक कृत्योंमें पूरी स्वतन्त्रता थी। मामू रशीद स्वय भी अनेक विषयोंका बहुत बडा विद्वान था। गणित और फिलासफी उसके अत्यन्त प्रिय विषय थे। उसके गणितप्रेमका परिचय इसीसे मिलता है कि आस्तीनोंपर इक्लेदसके पहले मुकालेको ५ वीं शक्लका 'तुगरा' (चित्रबन्ध) बना हुआ था, क्योंकि यह शक्ल उसको बहुत ही प्रिय थी। इसी कारण अरबीमें ५ वी शक्लको "शक्ले मामूनी" कहते हैं। मामू के सिवा और किसी मुसलमान बादशाहको यह फख्र हासिल नहीं है कि उसके नामसे कोई शक्ली इसतलाह (परिभाषा) कायम हुई हो।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हारू रशीदका कायम किया हुआ "बैतुल हिकमत" या अनुवाद विभाग मौजूद था, जिसमें पारसी, ईसाई, यहूदी, हिन्दू अनुवादक थे, जो फिलसफेकी पुस्तकोंका अनुवाद और ... ...रते रहते थे, पर अब

तक जो सामग्री एकत्र हुई थी, वह मामू की विज्ञान-पिपासाको शान्त करनेमें अपर्याप्त थी।

मामूने एक रात स्वप्नमें देखा कि एक पूज्य व्यक्ति उच्च आसन (तख्त) पर आसीन हैं। मामू ने समीप जाकर पूछा, आपका शुभ-नाम? तख्तनशीनने कहा, 'अरस्तू'। यह सुनकर मामू हर्षातिरेकसे विह्वल हो उठा। फिर अर्ज किया, हजरत! दुनियामें कौनसी चीज अच्छी है? खयाली अरस्तूने उत्तर दिया, "जिसे अक्ल (बुद्धि) अच्छा कहे।" दोबारा मामू ने दरख्वास्त की कि मुझको शिक्षा प्रदान कीजिये। उत्तर मिला, "तौहीद (अद्वैत वाद और सत्सङ्गतिको हाथसे न देना।" मामू योंही फिलसफेपर मिटा हुआ था, अरस्तूके इस स्वप्न-दर्शनने और भी आगपर घीका काम दिया। उसने कैसरे रूमको खत लिखा कि "अरस्तूकी जिस कदर पुस्तकें मिल सकें भेजी जाय।" कैसरे रूमने इसके उत्तरमें पाच-ऊँट लादकर फिलसफेकी किताबें मामूके पास भेजीं। मामूने और भी बहुतसे योग्य आदमियोंको प्राचीन पुस्तकोंकी खोजमें पर्याप्त धन देकर इधर उधर भेजा। देश देशान्तरसे ढूढ ढूढ और चुन चुनकर पुस्तकें मगायी और उनके अनुवाद कराये। मामू एक आदर्श विद्याप्रेमी, विद्वान और गुणग्राहक शासक था। मामूका यह असाधारण विद्या-प्रेम उस समय और भी आदर-णीय प्रतीत होता है जब हम इतिहासमें पढते हैं कि मामूके पूर्ववर्त्ती एक खलीफानेही सिकन्दरियाका जगत् प्रसिद्ध पुस्तकालय जला कर खाक कर दिया था। और भी कितने ही धर्मान्ध शासकोंने अनेक बार पुस्तकोंसे हम्माम गर्म कराये हैं। विद्यानिषेधके ये सुदृश्य पुराने असभ्य समयमें अशिक्षित शासकों द्वारा ही ससारको देखने नहीं पडे, प्रत्युत् सभ्यताके ठेकेदार युरोपकी सुशिक्षित शक्तियोंने भी ऐसी होली खेली है। बक्सर–विद्रोहके समय जब चीनपर युरोपके नवग्रहोंने चढाइ की थी उस समयका समाचार एक प्रत्यक्षदर्शीने बडे दु खसे

लिखा है कि चीनके अत्यन्त प्राचीन राजकीय विद्यालयकी बहु-मूल्य अलभ्य पुस्तकें और ऐतिहासिक सामग्री हफ्तोंतक गाडि-योंमें लाद लादकर शाही महलके सहनमें इकट्ठी की गयीं और जलायी गयीं जिनकी राखसे पेकिनकी चौड़ी सड़कें पट गयीं और कुएँ भठ गये। लोवेनके पुस्तकालयकी जो दुर्दशा सभ्यताभिमानी जर्मनोंने की वह अभी कलकी घटना है। मत-लब यह कि विद्याप्रेम किसी जातिकी बपौती नहीं है। प्रत्येक जातिमें विद्याप्रेमी और विद्याद्वेषी होते रहे हैं। मामू रशीदके प्रशंसनीय विद्याप्रेमपर मुसलमान जाति ही नहीं, एशियानिवासी समुचित गर्व कर सकते हैं। मामू के समय जिन विद्यासग्रन्थो भारतीय और यूनानी ग्रन्थोंके अनुवाद हुए बादको प्राय उन्हींके सहारे युरोपमें विद्याप्रकाश पहुँचा। इस प्रकार युरोप भी उसका बहुत ऋणी है।

मामू विद्याप्रेमकी दृष्टिसेही प्रशंसनीय नहीं था। वह जैसा उच्च कोटिका विद्वान था वैसा ही प्रथम श्रेणीका सुशा-सक भी था। उसमें शासकोचित सद्गुण अत्यधिक मात्रामें विद्यमान थे। उसकी क्षमाशीलता और न्यायप्रियता सीमासे भी आगे बढ़ गयी थी। इन दो गुणोंके कारण उसका शासन इसलामके इतिहासमें 'बदनाम' है। नीतिनिपुण सज्जनोंकी सम्मतिमें शासकमें 'भीम' और 'कान्त' दोनों गुण समान मात्रामें होना आवश्यक है। इस गुणनिधि शासक समुद्रमें कमनीय रत्न ही रत्न भरे थे। भयानक जन्तुओंका अभाव था। इस अभावकी अक्सर शिकायत की गयी है। मौलाना शिबली मामू की जीवनीमें लिखते हैं—"मामू के उदार चरितपर यदि कुछ नुकता चीनी हो सकती है तो यह हो सकती है, कि उसका रहम (दया) और इन्साफ (न्याय) एतदालकी हद (औचित्यकी सीमा) से आगे बढ़ गया था जिसका यह असर था कि उसने जाती हुकूक़को (व्यक्तिगत स्वत्वोंको) बिलकुल नजर अन्दाज कर

दिया था। बदज़बान शाइर उसकी हज्व (निन्दापर कविता) लिखते थे, पर वह ध्यान न देता था। उसके नौकर गुस्ताखिया करते थे, लेकिन उसे ज़रा परवा नहीं होती थी। यही नहीं, उसकी निन्दामें कवियोंने जो कविताएं लिखी थीं वह उसे कण्ठस्थ थीं। वह कविताकी दृष्टिसे उनकी दाद देता और प्रशंसा किया करता था। वह अच्छी कविताका बड़ा कद्रदां और स्वयं सुकवि था"। उस समय एक अरबी कवि बड़ा ही उद्दण्ड और निन्दा लिखनेमें 'सौदा' की तरह सिद्धहस्त था, उसकी हज्व-गोईसे अक्सर लोग तंग थे। उसके बारेमें एकबार मामूके चचा इब्राहीमने शिकायत की कि उसकी बदज़बानियां हदसे गुज़र गयीं। मेरी ऐसी हज्व (निन्दा), लिखी है जो किसी तरह दरगुज़रके काबिल नहीं। इब्राहीमने उस हज्वके कुछ पद्य भी सुनाये। मामूं ने कहा, चचा जान, उसने मेरी हज्व इससे भी बढ़ कर लिखी है, चूं कि मैंने दरगुज़र की, उम्मीद है आप भी करेंगे। इब्राहीम ही नहीं, उस कविकी करतूतसे सारा दरबार परेशान था। मामूं के एक प्रतिष्ठित दरबारीने, जो स्वयं भी कवि था, कईबार उस निन्दक कविके विरुद्ध मामूं को भड़काया कि आखिर दरगुज़र कहांतक ? मामूं ने कहा कि अच्छा यदि बदलाही लेना है तो तुम भी उसकी निन्दा लिख दो, परन्तु सिर्फ यह लिखो कि वह लोगोंकी निन्दामें जो कुछ कहता है गलत कहता है। मामूं अक्सर कहा करता था कि मुझे क्षमाप्रदानमें जो मज़ा आता है, यदि लोग उसे जान जायं तो अपराध और आज्ञाभंगका मेरे पास 'तोहफा' लेकर आवें। मामूं को दावा था कि बड़ेसे बड़ा अपराध भी मेरी क्षमाशीलताको भंग नहीं कर सकता। एक आदमीसे, जो अनेकबार आज्ञाभंगका अपराध कर चुका था, मामूं ने कहा कि तू जिस कदर गुनाह (अपराध) करता जायगा, मैं बराबर बख्शता जाऊंगा, यहांतक कि आखिर यह मेरा क्षमाभाव तुझे थकाकर दुरुस्त कर देगा। मामूं की अपनी

इस हद्दसे बढी हुई क्षमाशीलतापर (जो शासन नीतिके विरुद्ध है) अभिमान था। वह फख्रसे कहता था कि दास और दासिया अक्सर अपनी श्रेणीमें मुझको गालिया देती हैं और मैं खुद अपने कानोंसे सुन जान बूझकर टाल जाता हू। इस क्षमाशीलताके कारण मामू के गुलामतक इतने ढीठ हो गये थे कि जबाब दे बैठते थे। मामू के एक मुसाहिबने एक ऐसी ही घटनाका उल्लेख किया है, उसका बयान है कि "मैं (मुसाहिब) एकबार मामू की खिदमतमें हाजिर था, मामू ने गुलामको आवाज दी, पर कोई न बोला। फिर पुकारा तो एक तुर्की गुलाम हाजिर हुआ और बडबडाने लगा कि "क्या गुलाम खाते पीते नहीं? जब जरा किसी कामसे बाहर गये तो आप 'या गुलाम या गुलाम' चिल्लाने लगते। आखिर 'या गुलामकी कोई हद भी है?" मामू ने सिर झुका लिया और देरतक सिर नीचा किये बैठा रहा। मैंने समझा कि बस, अब गुलामकी खैर नहीं। मामू ने मेरी ओर देख कर कहा, "नेकमिज़ाजीमें यह बडी आफत है कि नौकर और गुलाम धृष्ट और बदमिज़ाज हो जाते हैं, पर यह तो नहीं हो सकता कि उन्हें विनीत बनानेके लिये मैं स्वय दुर्विनीत बनू।"

यह बात ठीक हो सकती है। शासकके लिये इतनी सहनशीलता शोभा नहीं देती, इससे उसकी प्रतिष्ठामें फर्क आता है, रौब-दाब जाता रहता है। पर मामू ने इस सीमातिक्रान्त गुणसे अपने जाती हुकूक भले ही भुला दिये हों, सर्वसाधारणके तरफोंकी वह पूरी रक्षा करता था। अपने व्यक्तिगत मिथ्या गौरव की उसे परवा न थी, पर इससे उसकी न्यायनिष्ठामें कुछ अन्तर नहीं आने पाता था। क्षमाशीलता कुछ निर्बलताके कारण नहीं थी, यह उसके समवेदनाशील, सहानुभूतिपूर्ण और दयार्द्र अन्त करणका पूरा प्रतिबिम्ब थी। उसे इसपर गर्व था और समुचित गर्व था। इस विषयमें उसका यह सिद्धान्त था कि

"शरीफ (सज्जन)की यह पहचान है कि अपनेसे बड़ेको दबा ले और छोटेसे खुद दब जाय"—इस सिद्धान्तका वह सच्चा अनुगामी था, जैसा कि उसके जीवनकी अनेक ऐतिहासिक घटनाओंसे सिद्ध है। उसके उच्च पदाधिकारियोंके अन्यायकी जब कोई शिकायत उसके पास पहुंचती थी, वह बड़े ध्यानसे सुनता और प्रतिकार किया करता था। एकबार उसके बहुत बड़े अधिकारीके विरुद्ध किसीने अर्जी दी। मामूँने उसपर यह हुक्म लिख कर उस अधिकारीके पास भेज दिया —"जिस वक्ततक एक आदमी भी मेरे दरवाजेपर तेरी शिकायत करनेवाला मौजूद है तुझको मेरे दरबारमें रसाई (पहुँच) न होगी। " मामूं के भाई अबूईसाकी किसीने शिकाकत की। मामूंने अपने भाईको लिखा, "प्रलयके दिन जब इन्साफ होगा तो कुल और गौरवपर ध्यान नहीं दिया जायगा।" हमीद नामक एक दूसरे अधिकारीको किसीकी शिकायतपर यह कहकर फटकारा—"ऐ हमीद! दरबारीपनेपर न भूलना, न्यायमें तू और कमीना गुलाम दोनों बराबर हैं।" ऐसे ही प्रसगपर एक और अधिकारीको यह डाट बतलायी "तेरी बेतमोजी और स्वभाव तो मैंने गवारा (सहन) किया, लेकिन प्रजापर जुल्म करना तो नहीं बरदाश्त कर सकता हू।" उमरू नामक उद्दड पदाधिकारीको यह उपदेशपूर्ण भर्त्सना की—"ऐ उमरू! अपनेको अद्‌ल (न्याय) से आबाद कर जुल्म तो उसका ढा देनेवाला है।"

मामूंका यह उपदेश दूसरोंके लिये ही नहीं था, न्याय-दड-का प्रहार सहनेको स्वय भी सहर्ष सदा तैयार रहता था। रविवारका दिन उसने दीन दुखियोंकी पुकार सुननेके लिये नियत कर रखा था। उस दिन वह प्रात कालसे लेकर दिन ढलेतक दरबारआम करता था जिसमें खासो आम किसीके लिये कुछ रोक न थी, और जहा पहुँचकर एक कमजोर मजदूरको अपने हुकूकमें खानदान शाहीकी बराबरीका दावा होता था।

एक दिन बुढियाने दरबारमें आकर जबानी शिकायत पेश की कि "एक ज़ालिम (अन्यायी) ने मेरी जायदाद छीन ली है।" मामू ने कहा —"किसने और वह कहा है?" बुढियाने इशारेसे बताया कि 'आपके पहलू (बगल)में'। मामू ने देखा तो खुद उसका बडा बेटा अब्बास था। वजीरआजमको हुक्म दिया कि शाहजादेको बुढियाके बराबर ले जाकर खडा कर दें, दोनोंका इजहार सुनें। शाहजादा अब्बास रुक रुककर आहिस्ता आहिस्ता गुफ्तगू करता था। लेकिन बुढियाकी आवाज निर्भयताके साथ ऊंची होती जाती थी। वजीरआजमने रोका कि खलीफाके सामने चिल्लाकर बोलना (खिलाफेअदब) सभ्यताके विरुद्ध है। मामूंने कहा "जिस तरह चाहे आजादीसे कहने दो, सचाईने उसकी जबान तेज कर दी है और अब्बासको गूंगा बना दिया है।" आखीरमें मुकद्दमेका फैसला बुढियाके हकमें हुआ और जायदाद वापस दिला दी गयी।

मामू की इस आजादपसन्दी स्वातन्त्र्य प्रियताने उसके न्यायाधिकारियोंको भी न्यायपरायणतामें बहुत स्वतन्त्र और निर्भय बना दिया था।

एकबार खुद मामू पर एक शख्शने तीस हजारका दावा दायर किया, जिसकी जवाबदेहीके लिये उसको (मामू को) दारुलकजा (चीफ जस्टिसके इजलास) में हाज़िर होना पडा। सेवकोंने कालीन लाकर बिछाया कि खलीफा (मामू) उसपर तशरीफ रक्खें, लेकिन काजी उल्कुजात (चीफ जस्टिस) ने मामू से कहा कि यहा आप और मुद्दई दोनों बराबर दर्जा रखते हैं। मामू ने कुछ बुरा न माना, बल्कि इस न्यायके पुरस्कारमें चीफ जस्टिसका वेतन और बढा दिया।

ये घटनाएं मामू की न्यायप्रियता और प्रजापालनदक्षताके उज्ज्वल प्रमाण हैं। आजकलकी रोशनीके जमानेमें प्रजातन्त्र प्रणालीके शासनोंमें भी ऐसे उदाहरण कहीं ढूंढे न मिलेंगे।"

झूठी धाककी मान मर्यादाके लिये भयङ्कर हत्याकाडोंपर पालिसीका पर्दा डालकर असलियतको छिपा देना ही आजकलकी राजनीति है। जिनके मतमें अन्यायपीडित प्रजाके आर्तनादको बगावत समझना और दादके बदले दण्ड देना ही आतंक बिठानेका बढिया उपाय है, भले ही मामू की शासनयोग्यतापर सन्देह या नुकताचीनी करें पर इन्साफसे देखा जाय तो मामू वास्तवमें सच्चा शासक था। फिर यह भी नहीं कि वह निरा नर्म ही था। उसके न्यायमार्गमें जो रुकावट डालता था चाहे वह कितना ही प्रभावशाली या प्रियव्यक्ति क्यों न हो, उसका जानी दुश्मन था। वजीरेआजम 'फ़जल' जो बचनसे उनका साथी था, जिसने मामू की हर मुश्किलमें मदद की, जिसके बल पराक्रमसे मामू ने निष्कंटक राज्य पाया और साम्राज्य बढाया, वह जब अधिकार-मदमें अत्याचारपर उतारू हुआ, न्यायार्थियों को खलीफाके पास पहुँचानेमें बाधा देने लगा, सब उसके आतंकसे कापने लगे, सच जाहिर करनेमें डरने लगे, तब यद्यपि वह सल्तनतमें स्याह सफेदका मालिक था, खलीफा भी उसकी कारगुजारियोंका बडा कृतज्ञ था, उसका बहुत लिहाज करता था, पर उसकी न्यायबाधाको अधिक सहन न कर सका। आखिर खलीफाने 'फजलका काटा छाटकर ही छोडा, कटकोद्धार करके न्यायमार्गको निष्कटक बनाकर ही दम लिया। सचमुच वह अपने इस आदर्शके अनुसार सच्चा शरीफ था। "शरीफकी यह पहचान है कि वह अपनेसे बडेको दबाये और छोटेसे खुद दब जाय।"

मामूको सर्वसाधारणके समाचार जाननेका बडा शौक था। १७०० बूढी औरतें मुकर्रर थीं जो तमाम दिन शहर बगदादमें फिरती थीं। और शहरका कच्चा चिट्ठा उसको पहुँचाती थीं। पर मामूके सिवा किसीको उनके नामोनिशानका पता न था। हर सीगे (विभाग) में अलग अलग खुफियानवीस और वाकआ

निगार (घटना-लेखक) मुकर्रर थे। मुल्कका कोई जरूरी वाकआ उससे छिपा न रह सकता था। पर यह अजीब बात है कि इस तरहकी कुरेद और खोजका जो यह आम असर होता है कि हर शख्ससे बदगुमान हो जाना और सर्वसाधारणकी स्वतन्त्रतामें बाधक होना, मामू इस ऐबसे बिलकुल बरी था। उसके जीवन-इतिहासका एक एक अक्षर छान डालो। एक घटना भी ऐसी नहीं मिल सकती जिससे उसकी इस कार्रवाईपर हर्फ आ सके। मामू के इस खुफिया मुहकमेसे प्रजाको बहुत लाभ पहुँचता था। मामू को लोगोंके भेद जाननेका एक व्यसन सा था। वह भेदिया-विभागपर लाखों रुपये खर्च करता था पर ये भेदिये आजकलकी तरहके भेडिये नहीं होने पाते थे। मामूं चुगलखोरों और पिशुनोंका जानीदुश्मन था। इस विषयमें उसके उच्च विचार सोनेके अक्षरोंमें लिखनेके लायक हैं। उसके सामने जब परनिन्दक पिशुनोंका प्रसङ्ग आता था तो वह कहा करता था कि "उन लोगोंकी निसबत तुम क्या खियाल कर सकते हो जिन्हें ईश्वरने सच कहनेपर भी लानत (धिक्कार) की है?" उसका कथन था कि जिस शख्सने किसीकी शिकायत करके अपनी इज्जत मेरी आखोंमें घटा दी फिर किसी तरह उसे नहीं बढ़ा सकता।

शिबली लिखते हैं कि "मामू यद्यपि बड़ी शान शौकतका बादशाह था, नामवरीके दफ्तरमें इतिहासलेखकोंने उसकी महत्वपूर्ण गाथाएं मोटे अक्षरोंमें लिखी हैं पर हमारी रायमें जो चीज उसके जीवनचरितको अत्यन्त अल्कृत और प्रभावशाली बना देती है वह उसकी सादा मिजाजी और बेतकल्लुफी है। एक ऐसा बादशाह जो तख्तहुकूमतपर बैठकर कुल इसलामी दुनियाके भाग्यका विधाता बन जाता है, किस कदर अजीब बात है कि आम दोस्तोंसे मिलने जुलनेमें सल्तनतकी शानका लिहाज रखना पसन्द नहीं करता। अक्सर विद्वान और गुणी

पुरुष रातको उसके अतिथि होते थे और उसके विस्तरसे विस्तर लगा कर सोते थे, पर उसका आम बरताव ऐसा ही होता था, जैसा कि एक अन्तरंग मित्रका मित्रके साथ होता है। काजी 'यहया' एक रात उसके महमान थे। अचानक आधीरातके बाद उनकी आंख खुल गयी और प्यास मालूम हुई। चूंकि चेहरेसे व्याकुलता प्रकट होती थी, मामू ने पूछा, कुशल है? काज़ी साहबने प्यासकी शिकायत की। मामू खुदही चला गया, और दूसरे कमरेसे पानीकी सुराही उठा लाया। काजीसाहबने घबराकर कहा, हुजूरने नौकरोंको आज्ञा दी होती। मामू ने मुहम्मद साहबकी एक आज्ञा सुनाकर कहा कि "सेवा-भावही आदमीको बड़ा बनाता है।" रातको सेवक सो जाते थे तो वह खुद उठकर चिराग और शमा दुरस्त कर देता था।

एकबार बागकी सैरको गया। काजी यहया भी साथ थे। मामू उनके हाथमें हाथ देकर टहलने लगा। जानेके वक्त धूपका रुख क़ाजी साहबकी तरफ था, वापिस आते वक्त मामू की तरफ बदल गया। काजी साहबने चाहा कि धूपका पहलू खुद ले लें, जिससे मामू छायामें आ जाय, पर मामू ने यह न माना और कहा कि यह बात इन्साफसे बहुत दूर है। पहले मैं छायामें था, अब वापिसीके वक्त तुम्हारा हक़ है। मामू की सादा मिज़ाजी उस समय और भी विचित्र मालूम होती है जब इसी अब्बासी खन्दानके उससे पहले खलीफाओंके चरित्रोंपर दृष्टि डाली जाती है। मामू के परदादा खलीफाके दर्शन भी न मिलते थे। खलीफाके सिंहासनके आगे कोई बीस हाथके फासलेपर एक बहुमूल्य परदा पड़ा रहता था, और दरबारी लोग उससे कुछ फासलेपर हाथ बाधे खड़े होते थे, खलीफा परदेकी ओटमें बैठकर आज्ञा प्रदान करता था। यद्यपि ख़लीफा 'महदी'ने खिलाफतके चेहरेसे यह उपचारपूर्ण परदा उठा दिया था, पर फिर भी और बहुतसे तकल्लुफके परदे अभी बाकी चले आते थे। मामू के अहदतक

तमाम दरबार अबतक इसी तरहके रीति रिवाजका पाबन्द चला आता था। मामू ने अपनी सादा मिजाजीसे दरबारके कायदोंमें बहुत कुछ बेतकल्लुफी और सादगी पैदा कर दी थी।

मामू विद्वानोंका कितना कद्रदा था विद्वानोंके सम्मानका उसे कितना ध्यान था इसका पता इस नीचे लिखी घटनासे अच्छा मिलता है। मामू के दो पुत्र 'फर्रा' नामक एक विद्वानसे शिक्षा पाते थे। एक बार उक्त शिक्षक किसी कामके लिये अपनी गद्दीसे उठा, दोनों शहजादे दौड़े कि जूतिया सीधी करके आगे रख दें। पर चूंकि दोनों साथ पहुँचे, इस बातपर झगडा हुआ कि गुरु-सेवाका यह श्रेय किसे प्राप्त हो। आखिर दोनोंने आपसमें फैसला कर लिया। हरएकने एक एक जूता सामने लाकर रखा। मामू ने एक एक चीजपर पर्चेनवीस मुकर्रर कर रखे थे। फौरन इत्तला हुई, और उस्ताद 'फर्रा' बुलाये गये। मामू ने उनसे कहा, "आज दुनियामें सबसे अधिक प्रतिष्ठित और पूज्य कौन है?" फर्राने कहा "अमीरूलमोमनीन (मुसलमानोंके स्वामी मामू) से अधिक प्रतिष्ठित कौन हो सकता है?" मामू ने कहा "वह जिसकी जूतिया सीधी करनेपर अमीरल्मोमनीनके प्राणोपम पुत्र भी आपसमें झगडा करें।"

फर्राने उत्तर दिया "मैंने खुद शहजादोंको रोकना चाहा था पर फिर ख्याल हुआ कि उनके इस श्रद्धाभावमें बाधक क्यों बनू"। मामूं "यदि तुम उनको रोकते, तो मैं तुमसे बहुत अप्रसन्न होता। इस बातने उनकी इज्जत (प्रतिष्ठा) कुछ कम नहीं की, किन्तु कुलीनता और शिष्टताका और परिचय दे दिया, बादशाह, बाप और गुरुकी सेवासे इज्जत बढती है, घटती नहीं।" यह कह कर लडकोंको गुरुभक्ति और 'फर्राको अध्यापन-दक्षताके पुरस्कारमें दस दस हजार दर्हम * दिलाये।

* दर्हम उस वक्तका चान्दीका एक सिक्का था जो आजकलके चार आनेके बराबर होता था। कलकत्तावालोंका 'दम्स' भी शायद यही है।

मामूं अनेक विषयोंका असाधारण विद्वान था। विद्वत्ताकी दृष्टिसे वह एक आदर्श प्रामाणिक पुरुष माना जाता था, पर उसे अहंकार और आग्रह छू नहीं गया था। अपनी गलतीको गलती मान लेनेमें उसे जरा भी संकोच न था। "वृद्धे फलमनाग्रह"का इससे उत्तम उदाहरण और क्या होगा कि एक शब्दकी एक जरासी ज़ेर ज़बरकी गलती बतानेपर एक विद्वानको उसने इतना पुरस्कार दे डाला जितना किसीने अपनी प्रशंसामें 'कसीदा (कविता) सुन कर भी न दिया होगा। एक बार एक बहुत बड़े विद्वान 'नजर' नामक मामूं की खिदमतमें हाजिर हुए। वे मामू की सादगी और बेतकल्लुफीसे वाकिफ थे। कपड़ेतक नहीं बदले, वही मुद्दतके मैले कुचैले मोटे कपड़े पहने दरबार शाहीमें चले आये।

मामू—"क्यों नजर! अमीरुलमोमनीनसे इस लिबास (वेष) में मिलने आये हो?"

नजर—"सख्त गर्मीकी इन्ही कपड़ोंसे हिफाजत होती है।"

मामू—"यह तो बहाने हैं, असल बात यह है कि तुम किफायतशआरीपर मरते हो।'

इसके बाद फिर इल्म 'हदीस' की चर्चा शुरू हुई। मामू ने एक 'हदीस' कही, पर 'सिदाद' शब्दको जो इस हदीसमें आया है ग़लत पढ गये। नजरने यह ग़लती उनपर ज़ाहिर करनी चाही, तो उसी हदीसको अपने ढंगपर बयान किया और उस शब्दको कस्र अर्थात् जेरके साथ "सिदाद" पढा। मामूं तकिया लगाये बैठा था, सहसा सँभल बैठा, और कहा, क्यों क्या, "सदाद" फ़तह अर्थात् जबरसे गलत है। नजरने कहा कि हां, 'हसीम' आपके उस्तादने आपको ग़लत बताया है।

मामू—क्या दोनोंके मानी (अर्थ) मुख्तलिफ हैं?

नज़र—हां, 'सदाद'के मानी

हैं, 'सिदाद' उसको कहते हैं

मामूने कहा—"कोई 'सनद' (प्रमाण) बता सकते हो?" नजरने अपने कथनकी पुष्टिमें अरबीका एक शेर पढ़ा। मामूँने सिर नीचे कर लिया और कहा खुदा उसका बुरा करे जिसको फने अदब (साहित्य शास्त्र) नहीं आता। "फिर नजरसे भिन्न भिन्न विषयोंके पद्य सुने, और रुखसत होते वक्त वजीर आजम फजलको रुक्का लिख दिया कि नजरको पचास हजार दर्हम अता किये जायँ।" नजर यह रुक्का लेकर खुद फजलके पास गये। फजलने रुक्का पढ़ कर कहा—"तुमने (मामूं) अमीरुलमोमनीनकी गलती साबित की ?" नजरने कहा, नहीं, गलती तो मामूके उस्ताद हशीमने की। अमीरुल्मोमनीनपर क्या इलजाम है। फजलने पचास हजारपर तीस हजार अपनी तरफसे और बढ़ाये।" इस तरह एक गलती बतानेके बदले नजरने अस्सी हजार दर्हम हासिल किये।

मामूको विद्याका व्यसन था। यों तो उसकी कोई मजलिस (सभा) भी शास्त्रचर्चासे खाली नहीं होती थी। पर मंगलवार शास्त्रार्थका नियत दिन था। इसका ढंग यह था कि प्रात काल कुछ दिन चढ़े हर मजहब और सम्प्रदायके विद्वान् और कला कुशल गुणी जन उपस्थित हुए। शाही दरबारका एक बड़ा कमरा पहलेहीसे सजाया हुआ था। सब लोग बहुत बेतकल्लुफीसे वहां बैठ गये। सेवकोंने प्रत्येक उपस्थित सज्जनके सामने आकर अर्ज किया कि बेतकल्लुफीसे तशरीफ रखिये और चाहें तो पावसे मोजे भी उतार दीजिये। फिर तरह तरहकी खाने पीनेकी चीजें प्रस्तुत हुईं सबने भोजन किया। हाथ मुंह धोया। अगर और लोबानको अंगीठियां आयीं। कपड़े बसाये, खुशबू मली। खूब तृप्त और सुगन्धित होकर शास्त्रार्थमन्दिर (दारुल—मनाजरा) में पहुंचे। और मामूके जानूसे जानू मिला कर बैठे। शास्त्रार्थ शुरू हुआ। मामू खुद एक फरीक बनता था, पर भाषण इस स्वतन्त्रतासे होते थे कि मानों किसी शख्शको



यह मालूमही नहीं कि सभामें खलीफा भी मौजूद है। दोपहरतक यह सभा जमी रहती। सूरज ढलनेके बाद फिर खा-पी कर रुखसत होते थे। इस शास्त्रार्थोंमें कभी कभी वक्ता लोग सीमाका उल्लघन भी कर जाते थे। पर मामू बडी गम्भीरता और शान्तिसे बरदाश्त करता था।

मामू की विद्या-सभामें बीस विद्वद्रत्न थे, जो हजारों विद्वानोंमेंसे चुन कर रखे गये थे। मामू को जिस प्रसिद्ध विद्वानका कहीं पता मिलता,जिस तरह बनता उसे अपने यहा बुलानेका प्रयत्न करता। उस समय यूनान में 'लीव या बुल्यू' नामक कोई तत्ववेत्ता विद्वान था। उसके लिये मामू ने शाह यूनानको लिखा कि उक्त विद्वानको आज्ञा दी जाय कि वह मुझे यहां आकर फिलसफी पढा जाय जिसके बदले में सदाके लिये सन्धिकी प्रतिज्ञा और पाच टन सोना देना मजूर करता हू। एक टन २७ मनके करीब होता है। कितनी भारी गुरुदक्षिणा है! और शाश्वतिक सन्धिकी प्रतिज्ञा इसके अतिरिक्त !!

ये उल्लिखित घटनाएं मामू की उदारताके समुद्रमेंसे दो एक बिन्दु हैं। उसका समस्त जीवनवृत्तान्त इसी प्रकारके उदारतापूर्ण उपाख्यानोंसे भरा हुआ है। इस छोटेसे लेखमें किस किसका उल्लेख किया जाय। ऐसी बातें इस जमानेमें गढी हुई कहानियां मालूम होती हैं, लेकिन वह जमाना कविके शब्दोंमें बडी हसरतसे कह रहा है—

'बयां ख़्वा की तरह जो कर रहा हूं'
'यह क़िस्सा है जबका कि 'आतिश' जवा था।'

—पद्मसिंह शर्मा

१७ लोकमान्य पार्नेल

अपने यहा जो स्थान लोकमान्य तिलकके नामको प्राप्त है आयर्लैंडके इतिहासमें वही पद चार्ल्स स्टुअर्ट पार्नेलके नामको प्राप्त है। अपने यहा बायकाट आन्दोलनके जन्मदाता लोकमान्य तिलक थे, परन्तु राजनैतिक क्षेत्रमें इस अस्त्रका प्रयोग सबसे पहले आर्लैंडमें पार्नेलने किया था। दोनोंके राजनैतिक उद्देश्य और उनकी प्राप्तिके उपायमें, बहुत कुछ समानता थी पर साथ ही साथ सासारिक जीवन और योग्यतामें भेद भी बहुत था।

पार्नेलका जन्म सवत् १६०३में हुआ था। पूर्वज अपने राजनैतिक विचारोंकी स्वतन्त्रताके लिये पहलेहीसे प्रसिद्ध थे। माता अमेरिकाके नौसेनाध्यक्ष चार्ल्स स्टुअर्टकी पुत्री थी। स्वतंत्रताके लिये अमेरिका और इगलैण्डमें जो घोर युद्ध हुआ था उसमें स्टुअर्टने बडी प्रसिद्धि प्राप्त की थी, इगलैंडकी नौसेनाको खूब छकाया था। स्टुअर्टमें स्वतंत्रताके भाव कूट कूटकर भरे थे और वही रक्त उसकी पुत्री अर्थात् पार्नेलकी माताकी नस नसमें बह रहा था।

बचपनहीसे पार्नेल बडा खिलाडी और साहसी था, उसके नटखटपनसे सारा घर परेशान रहता था। बडा भाई बोलनेमें हकलाता था। उसकी नकल करते करते पार्नेलकी जबान भी लगने लगी। आगे चलकर बडे प्रयत्नके बाद इस व्याधिसे पिण्ड छूटा। घरके बालबच्चोंपर पार्नेलने ऐसा आतक जमा लिया था कि इनकी धाय प्राय कहा करती थी "इस बालकने शासन करनेहीके लिये जन्म लिया है।" शिक्षाका श्रीगणेश एक कन्या पाठशालामें हुआ, पर सात आठ वर्षका बालक पार्नेल कन्याओंके बीच बैठकर पढना सह न सका। बडा दुखी हो कर भाईसे बोला "मैं लडकियोंके प्रेमसे तग आ गया हू।" अन्तमें पार्नेलने हठ करके कन्या पाठशालाको छोड दिया और

बालकोंके स्कूलमें अपना नाम लिखाया। जब पार्नेल १३ बरसका था उसके पिताका देहान्त हो गया। दो वर्ष पीछे माताकी आज्ञासे शिक्षाके लिये इंगलैंड गया। यहां शिक्षकसे बालक पार्नेलकी बिलकुल पटती न थी। रोज जरा जरासी बातपर घोर वादविवाद छिड जाता था, अन्तमें बेचारे गुरुको हार माननी पडी।

स्कूलकी पढायी समाप्त करके कालेजमें भरती होनेके लिये पार्नेल केम्ब्रिज पहुंचा। यहां भी अध्यापकोंसे बखेडा शुरू कर दिया। सहपाठियोंसे मुक्केबाजी करना पार्नेलके लिये एक साधारण बात थी। एक दिन एक धूर्त व्यापारीकी खूब खबर ली, अदालतमें अभियोग चला, जिसका फल स्वरूप पार्नेलको २० गिन्निया दण्डमें देनी पडी। पार्नेलके ऐसे व्यवहारोंसे असन्तुष्ट होकर कालेजके अधिकारियोंने पार्नेलको बाकी सालके लिये नीचेकी श्रेणीमें पढनेकी आज्ञा दी। पार्नेलने आज्ञा न मानी और बिना प्रमाणपत्र लिये कालेज छोड दिया। इस तरह पार्नेलकी शिक्षा अधूरी ही रह गयी। आगे चलकर पार्नेलको इसका बडा पछतावा रहा। अँगरेजी बोलनेमें व्याकरण सम्बन्धी भूलोंका बडा ध्यान रखना पडता था, लिखनेमें कोई अशुद्धि न हो इसलिये जो कुछ लिखना होता था, बडी मेहनतके साथ लिखा जाता था। बहुत कालतक आपको अपने व्याख्यान बडी सावधानीसे लिखने पडते थे। पत्रोंमें काट छाटकी आदत तो अन्ततक बनी रही।

केम्ब्रिजसे लौटकर पार्नेल स्थानीय अवैतनिक सेनामें भरती हो गया और अपनी माताके साथ रहने लगा। इस समय अमेरिकाके उत्तरीय और पश्चिमीय राष्ट्रोंमें परस्पर युद्ध हो रहा था। इनकी माताके घरपर इसकी बराबर चर्चा रहती थी, पार्नेल भी कभी कभी इस वादविवादमें भाग लेता था। पर अबतक राजनीतिमें उसे विशेष रुचि न थी। अमेरिकामें ...

समाप्त हो जानेपर वहाके बहुतसे स्वतन्त्रताप्रेमी सैनिकोंने आयर्लैंड आकर एक नया आन्दोलन चलाया। लडभिडकर आयर्लैंडको स्वतन्त्र बनाना इसका मुख्य उद्देश्य था। यही आन्दोलन "फीनियन आन्दोलन" के नामसे विख्यात है। इगलैंडके अत्याचारसे इस आन्दोलनकी गति कितनी प्रबल हो गयी है इसका पता हमें प्रतिदिन समाचारपत्रोंसे सिनफिनरोंकी करतूतोंसे चलता ही रहता है। इन सैनिकोंका एक अड्डा, पार्नेलकी माताका घर भी था। इसमें सन्देह नहीं कि पार्नेलकी माताको अगरेज जातिसे घृणा थी और आयर्लैंडको स्वतन्त्र देखनेकी उसकी प्रबल इच्छा थी। पर इस आन्दोलनसे घरभरमें किसीको भी हार्दिक सहानुभूति न थी। एक बार एक अपराधीको स्त्रीके वस्त्र पहनाकर भगा देनेके सिवा पार्नेलकी माताने भी इन लोगोंकी अन्य किसी कार्यवाहीमें भाग नही लिया था। परन्तु वह स्वय अमेरिकाके एक वीर स्वतन्त्रताप्रेमी सैनिककी कन्या थी, इसलिये उसके घरपर इन लोगोंका आना जाना स्वाभाविक ही था। इसी बातपर पुलिसको उसपर सन्देह हुआ और उसके घरकी तलाशी ली गयी। पुलिस पार्नेल की वर्दी उठा ले गयी, इसका उसे बडा दु ख हुआ, क्योंकि वह बिना वर्दीके किलेके अन्दर लाट साहबके पासतक नहीं जा सकता था। उस समय तक फीनियन आन्दोलनसे किसी प्रकार भी सहानुभूति न होते रहनेपर भी पार्नेलके हृदयपर पुलिसके उस अत्याचारका कुछ प्रभाव अवश्य पडा।

जिस कुमारीसे पार्नेल व्याह करनेवाला था उसने यह कह कर उसकी अवज्ञा की कि "तुम्हें आयर्लैंडमें जानता ही कौन है!" पार्नेलके हृदयपर इस कटुवचनकी भी गहरी चोट लगी। उसी दिनसे पार्नेलने अपने जीवनका लक्ष्य बदल दिया। पार्नेलने पार्लामेंटमें सदस्य निर्वाचित होनेका प्रयत्न प्रारभ कर दिया। पहले उसे कई जगह निराश होना पडा क्योंकि सचमुच आय-

लैंडमें उसे जानता ही कौन था। व्याख्यान देनेका अभ्यास बिलकुल न था। अतः अपना व्याख्यान बडी सावधानीसे पहले लिखता था और रातभर खूब रटनेके बाद प्रातःकाल वक्तृता देता था। एक बार बीचमें भूल जानेके कारण कई मिनटतक चुप खडा रहा। इस परिश्रमके बाद भी यदि असफलता हो, तो फिर निराशाका कहनाही क्या है। ऐसा होते हुए भी पार्नेलका साहस नहीं टूटा, दो वर्ष निरन्तर परिश्रम करनेके पश्चात् संवत् १९३२ के अन्तमें मीथ नगरकी ओरसे वह पार्लामेण्टमें प्रतिनिधि निर्वाचित किया गया।

इस समय पार्लामेण्टमें आयरिश दलका नेता बट था। स्वराज्यवादियोंकी संख्या ५९ थी, आयर्लैंडसम्बन्धी कभी कोई बिल आ गया तो उसका समर्थन करना ही अबतक इस दलकी नीति थी। बटने नियमबद्ध आन्दोलनका इतना संकीर्ण अर्थ समझ रखा था, कि इस नीतिसे आगे बढनेके लिये वह कदापि तय्यार न था। अँगरेजोंकी संख्या अधिक होनेसे इन मुट्ठीभर सदस्योंके समर्थनका प्रभाव कामन्स सभापर कुछ भी न होता था। दलकी यह निर्बलता पार्नेलको बहुत शीघ्र ही खटकने लगी। यह निर्बलता किस तरह दूर हो बराबर यही सोचने लगा। इसी अवसरमें पार्नेलकी दृष्टि बिग्गरपर पडी। बिग्गरको अँगरेजी राजनैतिक दलोंसे घोर घृणा थी, उसे सभाके नियमोंका कुछ भी ध्यान न था और न किसीका भय था। सारी सभाको व्यर्थकी बक बक करके तंग करना, यही उसका एक उद्देश्य था। यदि वह किसी सभ्यको सारी रात जगाये रख सकता, तो इतनेहीमें अपनी विजय समझकर वह सन्तुष्ट हो जाता। बहुत सोच विचारके बाद ठीक ठाक करके इस विचित्र ढंगको पार्नेलने अपनी नीति बनाना निश्चित किया। इसके बाद स्वतंत्रता प्राप्तिकी सौवीं वर्षगांठके समयपर आयर्लैंडके राष्ट्रीय दलकी ओरसे अमेरिकाके राष्ट्रपतिको अभि-

नन्दनपत्र देनेके लिये पार्नेल अमेरिका गया। पार्नेलका विचार था कि अमेरिका आयर्लैंडके अधिकारोंका समर्थन करेगा। पर राष्ट्रपति ग्राण्टने बिना ब्रिटिश प्रतिनिधिकी अनुमतिके अभिनन्दन-पत्र लेना अस्वीकार कर दिया। वहासे लौटकर किसी बाहरी शक्तिसे सहायता पानेकी आशा त्याग पार्नेल अपनी अड़चन डालनेकी नीतिको सफल बनानेकी धुनमें लग गया।

संवत् १६३४ के १८ सौर आषाढको एक फौजी बिलपर पार्नेलने सारी सभाको चार बजे सन्ध्यासे सात बजे सवेरेतक बिठलाया। सब लोग तंग आ गये। फिर ऐसा अवसर न देनेके लिये सभाने बहुमतसे वादविवादके नियम बहुत कठिन कर दिये। परन्तु पार्नेल कब माननेवाला था। जिसका उद्देश केवल बाधा डालना है उसके लिये एक नहीं सैकड़ों उपाय हैं। इस समय आयरिश दलमें पूरा एका हो रहा था, यदि किसी नियमके उल्लंघनमें कोई सदस्य चुप कर दिया जाता तो उसकी जगह दूसरा खडा हो जाता था, इस तरह बराबर वादविवाद चलता रहता था, और कोई काम न हो पाता था। जब दक्षिणी अफ्रीकाका बिल पेश हुआ तब तो सभाको पूरे छब्बीस घंटे लगातार बैठना पड़ा।

संवत् १६३५ में नवीन स्वराज्य सभाका अधिवेशन आयर्लैंडकी राजधानी डबलिन नगरमें हुआ। इस अवसरपर पार्नेलकी नीतिका बहुतसे लोगोंने समर्थन किया और उन्हें उस सभाका सभापति चुना। इसी समय पार्नेलने "फीन" नेताओंसे भी सम्बन्ध जोड़ा। यद्यपि अबतक भी वे "फीन आन्दोलनके" उद्देश्य और नीतिसे सहमत न थे, पर तब भी इस समय दोनों दलोंके मिलनेहीमें उन्होंने आयर्लैंडका हित देखा।

इसी वर्ष पार्नेलने किसान सभा स्थापित की। जमींदारोंके अत्याचारोंसे किसान तबाह हो रहे थे। लगानकी वृद्धि, बेदखली और नजरानेकी धूम थी। जमींदार प्रायः अँगरेज थे,

जिनको आयरिश किसानोंसे कुछ भी सहानुभूति न थी। इस कई कारण हैं, अँगरेज प्रोटेस्टेण्ट मतके अनुयायी हैं और आय लैंड निवासी प्राचीन केथलिक मतके, इस धार्मिक भेदके अति रिक्त दोनों जातियोंकी सामाजिक प्रवृत्तियां भी भिन्न हैं। प्रत्ये आयरिश किसानको अपनी परम्परागत भूमिसे जो प्रेम वह साधारण अंगरेज कभी नहीं अनुभव कर सकता। इस वर्ष भीषण दुर्भिक्ष पड़नेसे किसानोंकी दशा और भी शोचनी हो रही थी। इसलिये सभाने बड़ी शीघ्र उन्नति की।

बेचारे दीन किसानोंकी पुकार अमेरिका निवासियोंतक पहुँचानेके लिये सवत् १९३७ में पार्नेलने फिर अमेरिकाके लिये प्रस्थान किया। इस बार अमेरिकामें बडे समारोहसे उसक स्वागत हुआ। वक्तृता सुननेके लिये सहस्रोंकी भीड़ होती थी। इन वक्तृताओंके दो एक वाक्य उद्धृत करनेसे उसकी नीति अच्छी तरह समझमें आ जाती है।

एक वक्तृतामें उसने कहा "मुझे विश्वास है कि आयलैंडमें जमींदारी प्रथाका गला हम लोग बहुत शीघ्र घोंट डालेंगे, और जिस दिन जमींदारोंके हाथसे छुटकर आयलैंडकी भूमि प्रजाके हाथमें आ जायगी उसी दिन यह समझना चाहिये कि स्वतन्त्र आयरिश राष्ट्रकी नींव पड गयी।" एक दूसरे अवसरपर कहा—"मैं मानता हूं कि अधिकारोंकी रक्षाके लिये प्रत्येक आयलैंड-निवासीका अपना अन्तिम रक्त बहाना मुख्य कर्त्तव्य है, यदि ऐसा करनेसे सफलताकी आशा हो सके। पर साथ ही साथ निरस्त्र किसानोंको ब्रिटिश सैनिकोंकी बर्छियोंपर झोंक देनेकी जिम्मेदारीका भी ध्यान रखना आवश्यक है। इसीलिये मैं आपसे आयलैंडमे सेना भेजनेको नहीं बल्कि उन लोगोंको कालके कलेवा बननेसे बचानेकी जो अपूर्व साहसके साथ, अपने नेताओंके कहनेपर चल रहे हैं, प्रार्थना करता हूं।"

ही लौटना पडा। पर इस थोडे कालके दौरेमें वह साठ हजार रुपयेका चन्दा कर लाया। यह चन्दा कैसे एकत्र होता था इसका पता एक ही उदाहरणसे चल जायगा। आयर्लैंडके किसानोंकी हृदयविदारक दशाका चित्र खींचते हुए जब उसकी वक्तृता समाप्त होती थी, तो कोई आदमी उठकर ३० रुपयेका नोट आपके हाथमें रखता था और कहता था कि "इसमें ५) रुपये तो अन्न देनेके लिये, पर २५) रुपये उनके पथप्रदर्शनके लिये।"

आयर्लैंड लौटनेपर पार्नेल तीन जगहोंसे पार्लामेंटकी मेम्बरीके लिये चुना गया। इसीसे ज्ञात होता है कि अपने देशमें पार्नेल इस समय कितना लोकप्रिय हो रहा था। अन्तमें उसने कार्क नगरकी ओरसे जाना निश्चित किया। निस्सन्देह आयर्लैंडकी स्वाधीनताके इतिहासमें इस नगरका नाम स्वर्णाक्षरोंमें लिखे जाने योग्य है। यहासे निर्वाचित हो जानेके पश्चात् इस बार पार्लामेंटके आयरिश दलने पार्नेलको ही अपना नेता बनाया।

पार्लामेंट इस समय उदारदलके हाथमें थी। इस दलके नेता ग्लैडस्टनके अनुयायियोंकी संख्या ३४६ थी, इसके विरुद्ध अनुदार दलकी संख्या २४६ और स्वराज्यवादियोंकी केवल ६० थी। यह अल्पसंख्यक दल फूटकी व्याधिसे भी पीडित था। बहुतसे नरम दलवाले प्राय पार्नेलके विरुद्ध रहते थे। इस तरह पार्नेलको बडी कठिनाइयोंका सामना करना था। परन्तु तत्कालीन गवर्नमेंटने, आयरिश दलकी सभी प्रार्थनाओंका ऐसा घोर विरोध किया, कि इस दलका मतभेद जाता रहा, और सबने पार्नेलकी अध्यक्षतामें गवर्नमेंटको नीचा दिखलानेके लिये प्रयत्न आरम्भ किया।

दुर्भिक्ष और बेदखलियोंके कारण इस समय किसानोंमें बडा असन्तोष था। इसको दूर करनेके लिये आयरिश दलने प्रस्ताव

किया कि जमींदारकी ज्यादतीके कारण झगड़ा होनेपर किसानको हरजाना दिलाया जाय। इस उपायको उचित मानते हुए भी गवर्नमेण्टने इस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, क्योंकि आयरिश दलकी ओरसे था, पर कुछ काल बाद ही इसी आशयका प्रस्ताव अपनी ओरसे पास कर दिया। परन्तु आगे चलकर लार्ड्स सभाने इसको नहीं माना। लार्ड्स सभा अपनी संकीर्ण नीतिके लिये सदा प्रसिद्ध रही है। अमृतसरमें जेनरल डायरकी करतूतका समर्थन करके इस सभाने भारतवर्षको अभी हाल हीमें अपनी संकीर्णताका परिचय दिया है।

इस व्यवहारसे आयर्लैंडमें विद्रोहकी ज्वाला धधक उठी। पार्नेलको विद्रोहसे कभी सहानुभूति न थी, पर स्वतन्त्रताकी अभिलाषामें वह किसी विद्रोहीसे कम न था। भेद केवल इतना ही था कि असद्प्रयोगसे सफलता प्राप्त करनेमें उसको बड़ा सन्देह था। इसीलिये इस अवसरपर उसने अपनी विचित्र नीतिका अवलम्बन करना निश्चित किया। संवत् १९३८ में एक वक्तृता देते हुए पार्नेलने उपस्थित समुदायसे पूछा था कि यदि एक बेदखल किये हुए खेतको कोई दूसरा किसान ले लेवे तो क्या करना चाहिये। उत्तर मिला, "गोली मार दो।" पर इसपर बिना कुछ ध्यान दिये हुए बड़े गम्भीर और शान्त भावसे पार्नेलने नीचे लिखा हुआ उत्तर दिया—

"यदि बेदखल किये हुए खेतको कोई दूसरा आदमी लेता है तो उस आदमीसे नगर, सड़क, दूकान यहांतक कि मन्दिर, कहीं भी हो, बिलकुल अलग रहो। कुष्ठीकी नाईं उससे किसी प्रकारका सम्पर्क न रखो, और इस तरह उसके अपराधके प्रति अपनी घृणाका उसको पूरा अनुभव करा दो। विश्वास रखो, कोई ऐसा लालची और निर्लज्ज व्यक्ति नहीं होगा, जो जनताकी सच्ची सम्मतिके विरुद्ध जानेका साहस कर सके।"

इस सामाजिक बहिष्कारका प्रयोग सबसे

काटके विरुद्ध किया गया बस तभीसे इसका नाम "बायकाट" पड़ गया।

इस नवीन आन्दोलनसे घबडाकर आयलैंड सचिवने किसान सभाके पदाधिकारियोंके विरुद्ध राजद्रोह और षड्यन्त्रका अभियोग चलाया पर जूरीने सबको निर्दोष बतलाया। तब पार्लामेंटमें आयलैंडके शासकोंको दमनके अधिकार देनेके लिये प्रस्ताव पेश किया गया। इसको पास करनेमें इतनी शीघ्रता की गयी कि पार्लामेंटकी सब कार्यवाही थोडे समयके लिये स्थगित कर दी गई। परन्तु ऐसे अवसरपर पार्नेल कैसे चुप रह सकता था। पग पग पर उसने बाधा डालना प्रारम्भ किया। ग्लैडस्टनके कहनेपर वादविवादके नियम बहुत कडे कर दिये गये। सभापतिकी आज्ञासे पार्नेलको चुप होना पडा। पर उसके स्थानपर दूसरेने बोलना प्रारम्भ किया। इसी तरह जबतक एक, एक करके प्रत्येक आयरिश दलका सदस्य सभापतिकी विशेष आज्ञाओं द्वारा चुप नहीं कर दिया गया, तबतक बिल पास होनेकी नौबत न आयी। इसके लिये सभाको ४१ घंटेकी बैठक करनी पडी।

परन्तु इस बिलके प्रयोगसे अशान्तिकी अग्नि और भी प्रज्ज्वलित हो उठी। गवर्नमेंटकी ओरसे एक नवीन कानून पास करके ग्लैडस्टनने किसानोंकी कुछ शिकायतोंको दूर करनेका प्रयत्न किया पर इसमें उनको आयरिश दलसे सहायता न मिली। अन्तमें उन्होंने पार्नेलको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा दी, और सवत् १९३८ के २६ आश्विनको पार्नेल किल्मनेहम जेलमें कैद किया गया। जेलमें भी पार्नेल चुप न रहा। वहांसे उसने एकदम लगान बन्द कर देनेकी घोषणा निकाली। दमननीतिको असफल देखकर ग्लैडस्टनने सन्धिकी बातचीत आरम्भ की। अन्तमें यह बात तै पायी कि पार्नेल छोड़ दिया जाय। दमनका बिल रद्द कर दिया जाय और इसके बदलेमें पार्नेल शान्ति स्थापित

करनेकी चेष्टा करे। अन्त संवत् १९३८ के वैशाखमें पार्नेल फिर मुक्त कर दिया गया।

कारागारसे मुक्त होकर पार्नेलने यह प्रस्ताव किया कि जो दीन किसान पिछले दो वर्षोंका लगान देनेमें असमर्थ हैं उनको गवर्नमेंटको ओरसे आर्थिक सहायता दी जाय। पर इस बीचमें कुछ दुष्टोंने आयर्लैंडके नये मन्त्री और उनके सेक्रेटरीका वध कर डाला। इसका प्रभाव बहुत बुरा हुआ। बहुतसे लोगोंको यह शंका होने लगी कि यह हत्याकाण्ड पार्नेलकी अनुमतिसे हुआ। गवर्नमेंटने फिर बड़े जोरोंसे दमन प्रारम्भ किया। इस अवसर-पर भी पार्नेलने उसका विरोध किया, और अपनी निर्मलतासे प्रतिवादियोंका मुंह बन्द कर दिया। आयर्लैंड निवासियोंने भी अपनी कृतज्ञता दिखलाते हुए पांच लाख रुपये पार्नेलको भेंट किये, जिसमें वे अपने आर्थिक भारसे मुक्त होकर, सारा समय राजनैतिक जीवनमें लगा सकें।

इसके बाद छोटी छोटी रियासतोंके लिये लड़नेमें पार्नेलने कोई तत्त्व नहीं देखा, और स्वराज्यको ही अपना अन्तिम लक्ष्य स्थिर किया। दो वर्षतक देशभरमें दौरा करके जनताको वह इसीकी शिक्षा देता रहा। इसी बीचमें युवराज आयर्लैंड गये, पार्नेलने आज्ञा निकाली कि जनताकी ओरसे उनका स्वागत न किया जाय। संवत् १९४२ में पार्लामेण्टका जो निर्वाचन हुआ, उसमें आयरिश दलकी स्थितिने कुछ कालके लिये पार्लामेण्टकी बागडोर पार्नेलके हाथमें दे दी। संख्यामें अनुदार दलसे उदार दलमें ८६ सदस्योंकी अधिकता थी और आयरिश दलके सदस्य भी ठीक ८६ थे। इस तरह पार्नेल अपने दल सहित जिस ओर मिल जाता उसीकी विजय होती। एक बार पार्नेलने इस स्थितिसे लाभ भी उठाया। अनुदार दलसे मिलकर उदार गवर्नमेण्टको निकाल बाहर किया, और किसानोंको आर्थिक सहायता देने-वाला अपना बिल पास करा लिया। परन्तु इन दोनों दलोंके

सिद्धान्तोंमें आकाश पातालका अन्तर था इसलिये मेल स्थायी न हो सका, और उदार दलने फिर अधिकार जमा लिया।

अन्तमें पार्नेलके सिद्धान्तके सामने, उन्हींको गिरफ्तार करनेकी आज्ञा देनेवाले, उदार दलके नेता, ग्लैडस्टनको भी सिर झुकाना पडा। ग्लैडस्टनने देख लिया कि दमननीतिसे काम नहीं चल सकता। पार्नेलकी सहायतासे उन्होंने स्वय 'होमरूल बिल' पेश किया परन्तु पार्लामेण्टने स्वीकार न किया। इङ्गलैण्ड अपनी उदार नीतिका चाहे जितना गर्व करे पर इसमें सन्देह नहीं, कि इतिहासमें जब कभी दूसरोंके प्रति उदारता दिखलानेका अवसर आया तो इङ्गलैण्डने अपने हृदयकी संकीर्णता ही दिखलायी। यदि इङ्गलैण्डने आयर्लैंडके साथ उदार नीतिका व्यवहार किया होता, तो आज उसे सिनफीन ताण्डवनृत्य न देखना पडता, परन्तु इतना होते हुए भी मदान्ध इंगलैंड आयर्लैंडकी स्थितिसे कोई शिक्षा न लेकर अब भी मिस्रमें एव भारतवर्षमें उसी कुटिल नीतिका अनुसरण कर रहा है।

उदार दल और पार्नेलका सम्बन्ध इस समय अंग्रेजी समाचारपत्रोंको बहुत खटका और उसको तोड़नेके लिये उन्होंने तरह तरहके षड्यत्र रचने आरम्भ कर दिये। 'टाइम्स' ने पार्नेलका एक पत्र छापा जिसमें उसने दिखलाया कि पार्नेलने सवत् १६३६ के हत्याकाण्डका समर्थन किया है। जाचके लिये कमीशन बैठा और अन्तमें सिद्ध हुआ कि पत्र जाली था। जाचके बाद जब पार्नेलने सभामें प्रवेश किया तो सारे उदार दलने खडे होकर बडे हर्षसे पार्नेलका स्वागत किया, परन्तु पार्नेलने हसते हुए कहा, "तुम लोग खडे क्यों हो गये मैं तो डर गया था" इस वाक्यसे पार्नेलकी गम्भीरता टपक रही है। बस, यही उसकी अन्तिम विजय थी। इसके बाद ही एक नवीन आपत्तिके घनघोर बादलोंने उसके राजनैतिक जीवनके स्वच्छ आकाशको अन्धकारमय बना दिया।

सवत् १६३८ में उसका परिचय कप्तान ओशियाकी पत्नीसे हुआ। दोनोंमें विचारोंकी समानता होनेसे परस्पर मित्रता हो गयी। ओशियाको अपनी स्त्रीपर सन्देह होने लगा। संवत् १६४७ में उसने अपनी स्त्रीको तिलाक दे दिया। कहते हैं कि यह भी अंग्रेज राजनैतिकोंकी कुटिलनीतिका एक दाव था। पार्नेलकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेके लिये यह सब स्वांग रचा गया था। तिलाक-आशा मिल जानेपर पार्नेलको उस स्त्रीसे विवाह करना पड़ा।

इसका प्रभाव पार्नेलके राजनैतिक जीवनपर बड़ा बुरा हुआ। आयर्लैंडमें रोमन कैथलिक चर्चने पार्नेलकी इस कीर्तिपर बड़ा आक्षेप किया, और साधारण जनता, विशेषकर भोले भाले किसानोंमें जहांतक हो सका, पार्नेलकी प्रतिष्ठा नष्ट करनेका कोई प्रयत्न उठा न रखा गया। इधर ग्लैडस्टनने भी पार्नेलका साथ छोड़ दिया। फल यह हुआ कि पार्नेलको आयरिश दलके नेताका पद त्यागना पड़ा। जेल जानेके बाद ही पार्नेलका स्वास्थ्य बिगड़ रहा था। आर्थिक दशा भी अच्छी न थी, ऋणका बोझ भारी हो रहा था। ऐसी अवस्थामें इन नयी आपत्तियोंने चित्त और भी उद्विग्न कर दिया था परन्तु इतनेपर भी पार्नेल निराश नहीं हुआ और बराबर अपने पदको प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगा रहा। इसी बीचमें तारीख २० आश्विन संवत् १६४८ को उसकी जीवनलीला समाप्त हो गयी।

पार्नेलकी माताका अबतक यही विश्वास रहा कि पार्नेल एक राजनैतिक षड्यन्त्रका शिकार बना। मृत्युके बाद, माताने पार्नेलके बड़े भाईको लिखा कि "पार्नेलका वध ग्लैडस्टन और उसके उदारदल तथा कैथलिक चर्चने किया है। जिस समय वह शरीरसे अस्वस्थ और आर्थिक चिन्ताओंसे पीड़ित हो रहा था, ग्लैडस्टन और चर्चने आघातपर आघात करके उसके जीवनको नष्टभ्रष्ट कर दिया। इस पापका फल ग्लैडस्टनको जीवन

पर्यन्त भुगतना पड़ेगा और चर्चको न्यायी ईश्वरके सम्मुख उत्तर देना होगा।" विधवा माताकी यह 'हाय' व्यर्थ नहीं जा सकती।

पार्नेलके विषयमें यह विचित्र बात है कि जिस राजनैतिक जीवनका 'श्रीगणेश' एक महिलाके कटुवाक्योंसे हुआ था, उसकी 'इति' भी एक महिला हीके सम्बन्धसे हुई। उनके राजनैतिक तथा सांसारिक जीवनके असामयिक अन्तका दोष तत्कालीन गवर्नमेण्टके मत्थे कहांतक रखा जा सकता है इसका उत्तर देना बड़ा कठिन है। सम्भव है कि ओशियाका सन्देह भ्रममात्र हो, और उसने स्वार्थसिद्धिके लिये राजनैतिक दलोंकी सम्मतिसे तिलाकका आडम्बर रचा हो। पर कारण कुछ भी हो, जब यह स्त्री तिलाककी शिकार बन चुकी थी तब उसके साथ विवाह कर लेनेके अतिरिक्त पार्नेलके लिये और कोई मार्ग न था। इसी तरह इसमें भी सन्देह नहीं कि राजनैतिक दलोंने इस घटनासे पूरा लाभ उठाया। यहांपर यह कहना कि वे सर्वथा राजनैतिक भावों हीसे प्रेरित थे, ठीक नहीं जान पड़ता।

—गंगाशंकर मिश्र

१८ पं० मोतीलाल नेहरू

पं० मोतीलाल नेहरूने पंजाबमें पीड़ित देशवासियोंके साथ जो उपकार किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। उन्होंने दुःखित और व्यथित पञ्जाबी भाइयोंकी तन-मन-धनसे सेवा की। जब वहां बहुतसे वकील फंस गये थे, कुछ लोग कर्मचारियोंसे भयभीत हो रहे थे, इधर उधरके बैरिस्टरों और वकीलोंको लोभने आ घेरा था, उसी समय देशकी आर्त्त और दीनदशाको दृष्टिगोचर कर पण्डितजीने इलाहाबादमें अपनी बड़ी-बड़ी

वकालतकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया और पंजाबमें दुःखित भाइयोंकी सेवा करनेको तत्पर हो गये। वहां उन्होंने कठिन परिश्रम किया। लोगोंकी अपीलें तैयार कर प्रीवीकौन्सिलमें दायर करनेके लिये भेजीं और श्रीमान् मालवीयजीके साथ घूम घूमकर जनताको सान्त्वना दी और उनकी अनेक प्रकारसे सहायता की। देशवासियोंने उनकी सराहनीय सेवा और उपकारके उपलक्षमें उन्हें नेशनल कांग्रेसका सभापति बनाया। पराधीन भारत इससे अधिक किसीका क्या सम्मान कर सकता है।



पंडित मोतीलाल नेहरूका जन्म संवत् १९१८ विक्रमीमें हुआ था। दुर्भाग्य-वश उनके पिताका देहान्त चार महीने पहले ही

हो गया था। आप देहलीमें कोतवाल थे। पण्डितजीका पालन पोषण उनके ज्येष्ठ भ्राता प० नन्दलाल नेहरूने किया। बारह वर्षकी अवस्थातक उन्होंने घरपर अरबी और फारसीका अध्ययन किया। तत्पश्चात् उन्होंने गवर्नमेन्ट स्कूल कानपूरमें अँगरेजी पढ़नेके लिये प्रवेश किया और वहाँसे पन्ट्रेन्स परीक्षा पास की। उच्चशिक्षाकी प्राप्तिके निमित्त उन्होंने म्योर सेन्ट्रल कालेज इलाहाबादमें नाम लिखाया। कालेजके प्रिन्सपल मि० हैरिसन उनसे विशेष प्रसन्न रहते थे। वह वहां चार वर्ष रहे, परन्तु बी० ए० की परीक्षा नहीं दी। फिर इलाहाबाद हाईकोर्टकी वकालतकी परीक्षामें सफलता प्राप्त की और उत्तीर्ण विद्यार्थियोंमें सबसे श्रेष्ठ पद लाभ किया। कानूनी योग्यताका पदक भी उन्हें पारितोषिक रूपमें मिला।

उन्होंने कानपुरमें वकालत आरम्भ की। तीन वर्ष पश्चात् सवत् १९४३ में वे हाईकोर्टमें वकालत करनेके लिये इलाहाबाद चले आये। उनके ज्येष्ठ भ्राता भी इस समय हाईकोर्टमें वकालत करते थे और उनकी आय भी अच्छी थी। दुर्भाग्यसे एक ही वर्ष पीछे उनका स्वर्गवास हो गया। अब प० मोतीलाल नेहरूको केवल अपना सहारा रह गया, इसके अतिरिक्त उनको एक बड़े कुटुम्बके पालनपोषणका भी भार सहसा उठाना पडा। इसलिये पण्डितजीने अपने व्यवसायमें कठिन परिश्रम करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने ऐसी योग्यतासे कार्य किया कि उनके भाईके सब मुअक्किल उनके पास आने लगे। पाच ही वर्षमें उनका यश इधर उधर फैल गया और उनकी आमदनी भी १५००) से २०००) रुपया मासिक तक हो गयी। धीरे धीरे वे वकालतमें उन्नति करते गये और इलाहाबाद हाईकोर्टने उन्हें पेडवोकेट बना दिया।

पण्डितजीके एक पुत्र और दो कन्याएं हैं। उनके पुत्र प० जवाहिरलाल नेहरू केम्ब्रिज यूनिवर्सिटीके ग्रेजुएट और बैरिस्टर

हैं। उनकी ज्येष्ठा कन्याने भी घरपर उच्च कोटिकी शिक्षा पायी है। पडितजी युरोपका कई वार भ्रमण कर चुके हैं।

पडितजीको आरम्भ हीसे राजनैतिक विषयोंमें रुचि थी। पहले वे नरम दलसे सहानुभूति रखते थे और राजनैतिक क्षेत्रमें साधारण ही भाग लेते थे। सयुक्तप्रान्तको प्रथम कान्फरेन्स जो १९६४ विक्रमीमें इलाहाबादमें हुई थी उसके सभापति पडितजी ही चुने गये थे। समयके अनुसार उनकी वक्तृता अच्छी थी। १९६६ से वे आल इंडिया काग्रेस कमेटीके सभासद, और इधर कई वर्षसे सयुक्तप्रान्तकी काग्रेसकमेटीके सभापति रहे हैं। आगरेमें प्रान्तीय सामाजिक कान्फरेन्स, लखनऊमें विशेष राजनैतिक कान्फरेन्स और समस्त भारतीय पटेल मैरेज बिल कान्फरेन्समें भी पडितजीने ही सभापतिका आसन ग्रहण किया था। १९६६ से वे सयुक्तप्रान्तके छोटे लाटकी कौन्सिलके भी मेम्बर हुए। आप इलाहाबाद म्युनिसिपैलिटीके भी दो वर्षतक मेम्बर रह चुके हैं। उन्होंने मिन्टो मेमोरियल-कमेटीमें सेक्रेटरीके पदपर कार्य किया है। पडितजी कुछ समयतक लीडर प्रेसके डाइरेक्टर भी थे और अब इण्डिपेण्डेण्ट प्रेसके डाइरेक्टरोंके सभापति हैं। गवर्नमेन्टने बहुधा उन्हें सिलेक्ट कमेटियोंमें भी नियुक्त किया है। वे सयुक्तप्रान्तके पबलिसिटी बोर्डके भी मेम्बर रह चुके हैं और उन्होंने गवर्नमेण्टकी भारतरक्षा-सेनाके सगठनमें भी सहायता की थी।

यद्यपि १९७२ में जहागीराबाद प्रस्तावका समर्थन करने और मुसलमानोंको म्युनिसिपैलिटीमें कुछ अधिक स्थान दिये जानेके पक्षमें होनेके कारण हिन्दू जनता उनके कार्यसे असन्तुष्ट हो गयी थी, तो भी वे अपने विश्वाससे विचलित न हुए। आप थोडे ही दिन पश्चात् फिर जनताके [illegible] गये।

१९७२ तक पडितजीने राजनै[illegible]

लिया, परन्तु देशानुरागकी [illegible]

१९७३ विक्रमीके २ सौर आषाढको एक ऐसी घटना हुई जिसने उनकी देशप्रेमकी ज्वालाको और भी प्रज्ज्वलित कर दिया और उन्होंने राजनैतिक क्षेत्रमें नवीन उत्साहके साथ कार्य करना आरम्भ कर दिया। यह घटना श्रीमती मिसेज बेसेन्टके राजनैतिक कारागारमें भेजे जानेकी थी। जब पण्डितजीने यह दुःखद समाचार सुना तब उनके रोषका वारपार न रहा। एक ओर भारतके उत्थानके लिये मिसेज बेसेन्टका अविरल परिश्रम, तन मन धनसे देशकी सेवा और असाधारण त्याग, दूसरी ओर वृद्धावस्थामें भी निरपराध कारागार और कठोर व्यवहार—बस पण्डितजीसे न रहा गया। देशप्रेमकी अग्नि उनमें इस समय भड़क गई। फिर क्या कहना था! पण्डितजीने राजनैतिक आन्दोलनको खूब ही उत्तेजित किया। चिन्तामणिजी और डाक्टर तेज बहादुर सप्रूने भी योग दिया और इलाहाबाद वरन् संयुक्तप्रान्तकी राजनैतिक स्थितिमें एक विशेष नवीन जीवनका संचार हो गया। पण्डितजीने एक बंगला किरायेपर लेकर उसमें होमरूललीग खोल दी। सभासदोंने उन्हींको सभापति चुना और सर्वत्र आन्दोलन होने लगा। पण्डितजीने देशदशा और जनताके कर्तव्यपर अनेक बार सारगर्भित व्याख्यान दिया। वक्तृता अत्यन्त मनोहर और हृदयग्राहिणी होती थी और प्रत्येक शब्दसे देशानुराग झलकता था। प्रान्तमें प्रबल आन्दोलन होता रहा और देशदशापर विचारके लिये लखनऊमें एक विशेष कान्फरेन्स हुई। उसके भी सभापति पण्डितजी बनाये गये और उन्होंने एक बड़ा-सारगर्भित व्याख्यान दिया।

धीरे धीरे पण्डितजीकी सहानुभूति गर्मदलवालोंकी ओर होने लगी। माटेगू-चेम्सफोर्ड सुधार स्कीमके प्रकाशित होनेपर नर्मदल और गर्मदलमें और भी मतभेद बढ़ गया। इस समय संयुक्तप्रान्तमें एक ऐसे राष्ट्रीय दैनिककी परम आवश्यकता समझी गयी जो जनताके वास्तविक हृदयके उद्गारों और विचा-

रोंको प्रकाश कर स्कीमकी यथार्थ समालोचना करे। इस अभावकी पूर्त्तिके लिये प० मोतीलाल नेहरूने बड़ा प्रयत्न किया। उन्होंने राजा महमूदाबाद और अन्य महाशयोंकी सहायतासे मि० सैयद हुसेनके सम्पादकत्वमें "इन्डिपेन्डेन्ट" नामका अँगरेजी दैनिक पत्र निकलवाया।

प० मोतीलाल नेहरू वकालत हीमें अग्रसर नहीं रहे, उनके सामाजिक विचार भी बहुत बढ़े हुए हैं। वे देशके उत्थानके लिये जातिपांतिके बन्धनकी परवा कम करते हैं। आडम्बरसे तो वे सदा दूर भागते हैं। फैशनमें भी वे बहुत बढ़े चढ़े थे। उनका राजसी रहन सहन इलाहाबादमें प्रसिद्ध था।

पहले पण्डितजीके विचार कैसे ही रहे हों परन्तु मिसेज बेसेन्टके कारागारमें जानेके समयसे उन्होंने देशकी जो सेवा की है उसका जीता जागता प्रमाण सयुक्तप्रान्तकी वर्तमान राजनैतिक जागृति है। सयुक्तप्रान्तके छोटे लाटकी कौन्सिलमें जिस स्वाधीनतासे उन्होंने अपने कर्तव्यको निभाया वह सब लोगोंपर प्रकट है। हां, यह अवश्य मानना पड़ेगा कि वे शान्ति और आपसमें समझौतेको अधिक पसन्द करते हैं। देहली कांग्रेसमें भी फूटको निवारण करनेका प्रयत्न उन्होंने किया था। नर्मदल और गर्मदलके पक्षपातको छो[illegible] निष्पक्ष दृष्टिसे देखा जाय तो इसमें लेश मात्र भी स[illegible] महानुभाव हैं और उनकी निर्भी[illegible]

बुद्धि, [illegible] सर्व

न[illegible]

नैशनल कांग्र[illegible]

[illegible]

साथ

जोड़े उसी समय दीन दुखियोंको दे डाले, विदेशोंके पीडितोंकी सहायताके लिये भेज दिये। स्वयं और उनके समस्त कुटुम्बियोंने खद्दर पहन लिया और तपस्याका जीवन बिताने लगे। उनके पुत्र प० जवाहरलाल नेहरूने भी इस थोडी उम्रमें ही बारिस्टरी छोडकर देशसेवामें अपना जीवन अर्पण कर दिया। युक्तप्रान्त ऐसे त्यागी और निःस्वार्थ नेताके लिये जितना गर्व करे थोडा है।

—गुरूनारायण महरोत्र बिलग्रामी

१६ स्वामी रामतीर्थ

स्वामी रामने जिनका पूर्वनाम गोस्वामी तीर्थराम था सवत १६३० में दीपमालिकाके दूसरे दिन पजाब प्रान्तके गुजरानवाला जिलेमें मुरलीवाला ग्राममें जन्म लिया था। जन्मके थोडे ही दिन पीछे उनकी माताका देहान्त हो गया। उनका पालन पोषण उनके पिता गोस्वामी हीरानन्दकी बहनने किया। बाल्यावस्थासे ही उनकी रुचि पुराण, महाभारत, भागवत आदि ग्रन्थोंकी कथाओंसे हो गयी। वह इन कथाओंको बडे ध्यानसे सुनते और उनपर नाना प्रकारके प्रश्न करते। उस गावके लोगोंका कथन है कि ारण बालक थे, बडे चतुर और विचारशील थे, उन्हें एकान्तमें घूमना और बैठना पसन्द था। पढने लिखनेमें बहुत कुशल थे।

लडकपनहीसे उनके दृढ सकल्प होनेका परिचय मिलता था। जो काम उचित समझते उसे पूरा करनेमें कोई बाधा उन्हें न रोक सकती थी। मैट्रिकुलेशन परीक्षा पास होनेके समय उनकी आयु केवल १५ वर्षकी थी। उनके पिताने उनसे किसी दफतरमें नौकरी करनेका आग्रह आरम्भ किया पर इतनी अल्पावस्थामें नौकरी करना अपनी भावी उन्नतिके द्वारको बन्द करना था। वह सहमत न हुए। तब उनके पिताने रुष्ट होकर उन्हें घरसे

निकाल दिया। पर वह अपने सकल्पसे तिल मात्र भी विचलित न हुए। कालेजमें भरती हो गये। इससे उनके पिताकी क्रोधाग्नि और भी प्रज्ज्वलित हुई। उन्होंने उनकी स्त्रीको भी उनके पास पहुचा दिया। ऐसी कठिनाइयोंमें विद्याभ्यास करना सरल काम न था। शहरका रहना, गृहस्थीकी चिन्तायें एक साधारण मनुष्यके उत्साहको क्षीण करनेके लिये बहुत काफी थी। पर रामने दृढ़ताके साथ इन कठिनाइयोंका सामना किया। उन्हें कुछ छात्रवृत्ति मिलती थी, इससे काम चलते न देखकर उन्होंने दो एक रईसोंके लडकोंको पढाना शुरू कर दिया। इस अवस्थामे भी उनकी वृत्ति अन्त करणकी पवित्रता और आत्मिक विकासकी ओर रहती थी। इसी समय वह एक पत्रमें लिखते हैं—"आदिमीकी जानसे परे भी एक वस्तु है अर्थात् परमात्मा। दुनियामें जो कुछ होता है उसीकी मर्जीसे होता है। पुतलिया बगैर तारवालेके नही नाच सकती। बासुरी बगैर बजानेवालेके नहीं बज सकती। इसी तरह दुनियाके लोग बगैर उसके हुक्मके कोई काम नहीं कर सकते जिस तरह बादशाहके साथ सुलह (भक्ति) करनेसे तमाम अमला (कर्मचारीगण) हमारे दोस्त बन जाते हैं उसी तरह परमात्माको राजी रखनेसे तमाम खल्क (ससार) हमारी अपनी हो जाती है।"

कितने

बी० ए० क्लास तक

उन्होंने

पर

निश्चय

कारण फेल हो गये, पर दूसरे साल पञ्जाब विश्वविद्यालयमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। एम० ए० की परीक्षामें भी उनका स्थान सबसे ऊंचा था। प्रान्तीय सरकारकी ओरसे उन्हें इंगलैण्ड जाकर पढ़नेके लिये छात्रवृत्ति मिलनेकी बहुत सम्भावना थी, जब स्वामीजीके मित्रोंने उनसे पूछा कि आप वहां जाकर क्या पढ़ना चाहते हैं, तो उन्होंने दृढ़तासे कहा, मैं अपनेको शिक्षाकार्यके निमित्त तैयार करूंगा। सिविल सर्विस या बैरिस्टरीकी ओर उनका ध्यान भी न हुआ। पर ईश्वरको मंजूर न था कि ऐसा महान् पुरुष जिससे केवल भारतका ही नहीं, समस्त संसारका कल्याण होनेवाला था केवल अभियुक्तोंको दण्ड देने दिलाने और भूमिकर वसूल करनेमें अपना जीवन व्यतीत करे। यह छात्रवृत्ति एक दूसरे विद्यार्थीको मिल गयी।

स्वामी राम सांसारिक सुखोंपर कभी मोहित नहीं हुए। विद्याभ्यासके दिनोंमें भी वह बड़े संयमसे रहते थे। उनका भोजन सादा और थोड़ा होता था। वह बहुत ही सादे कपड़े पहनते थे, व्यवहारमें बड़ी कोमलता तथा सरलता होती थी। यों कहना चाहिये कि वह जन्मसे ही विरक्त थे। अवस्थाके साथ साथ उनके मनकी यह वृत्ति और भी प्रबल होती गयी। पहले इसका विकास कृष्णभक्तिके रूपमें हुआ। एम० ए० पास करनेके बाद जब वह लाहौरके एक कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुए तो कृष्णभक्तिमें इतने तल्लीन हुए कि अहर्निश उसीमें मग्न रहते थे। कभी कभी कृष्णका नाम सुनते ही वह प्रेमसे मूर्च्छित हो जाते थे, कहीं बांसुरीकी ध्वनि सुनाई देती तो विह्वल हो जाते। छुट्टियोंमें मथुरा वृन्दावन चले जाते थे। होशियारपुरके एक वकील लाला अयोध्याप्रसाद लिखते हैं—

गोसाईं जी एक बार लाहौरमें रामायणकी कथा सुन रहे थे। थोड़ी देर बाद बालकोंकी भांति रोने लगे। लोगोंने बहुत दिलासा दिया पर फल कुछ न हुआ। कथा समाप्त होनेपर वह

निकाल दिया। पर वह अपने सकल्पसे तिल मात्र भी विचलित न हुए। कालेजमें भरती हो गये। इससे उनके पिताकी क्रोधाग्नि और भी प्रज्ज्वलित हुई। उन्होंने उनकी स्त्रीको भी उनके पास पहुचा दिया। ऐसी कठिनाइयोंमें विद्याभ्यास करना सरल काम न था। शहरका रहना, गृहस्थीकी चिन्तायें एक साधारण मनुष्यके उत्साहको क्षीण करनेके लिये बहुत काफी थीं। पर रामने दृढ़ताके साथ इन कठिनाइयोंका सामना किया। उन्हें कुछ छात्र-वृत्ति मिलती थी, इससे काम चलते न देखकर उन्होंने दो एक रईसोंके लडकोंको पढाना शुरू कर दिया। इस अवस्थामें भी उनकी वृत्ति अन्त करणकी पवित्रता और आत्मिक विकासकी ओर रहती थी। इसी समय वह एक पत्रमें लिखते हैं—"आदमीकी जानसे परे भी एक वस्तु है अर्थात् परमात्मा। दुनियामे जो कुछ होता है उसीको मर्जीसे होता है। पुतलिया बगैर तारवालेके नही नाच सकती। बासुरी बगैर बजानेवालेके नहीं बज सकती। इसी तरह दुनियाके लोग बगैर उसके हुक्मके कोई काम नहीं कर सकते जिस तरह बादशाहके साथ सुलह (भक्ति) करनेसे तमाम अमला (कर्मचारीगण) हमारे दोस्त बन जाते हैं उसी तरह परमात्माको राजी रखनेसे तमाम खल्क (ससार) हमारी अपनी हो जाती है।"

कितने उच्च विचार हैं!

बी० ए० क्लास तक उनकी दूसरी भाषा फारसी थी। फारसीका अभ्यास उन्होंने बाल्यावस्था हीसे अच्छी तरह किया था। पर बी० ए० में पहुचकर अपने कुछ मित्रोंके अनुरोधसे उन्होंने सस्कृत भाषा लेनेका निश्चय किया। उस समय तक वह सस्कृत कुछ भी न जानते थे। सस्कृतके अध्यापकने उनके प्रार्थनापत्रका विरोध किया पर उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा न छोडी। और यद्यपि वह पहले साल बी० ए० की परीक्षामें सस्कृताभ्यास न होनेके

कारण फेल हो गये, पर दूसरे साल पञ्जाब विश्वविद्यालयमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया। एम० ए० की परीक्षामें भी उनका स्थान सबसे ऊंचा था। प्रान्तीय सरकारकी ओरसे उन्हें इंग्लैंएड जाकर पढनेके लिये छात्रवृत्ति मिलनेकी बहुत सम्भावना थी, जब स्वामीजीके मित्रोंने उनसे पूछा कि आप वहां जाकर क्या पढना चाहते हैं, तो उन्होंने दृढतासे कहा, मैं अपनेको शिक्षाकार्यके निमित्त तैयार करूंगा। सिविल सर्विस या बैरिस्टरीकी ओर उनका ध्यान भी न हुआ। पर ईश्वरको मंजूर न था कि ऐसा महान् पुरुष जिससे केवल भारतका ही नहीं, समस्त संसारका कल्याण होनेवाला था केवल अभियुक्तोंको दण्ड देने दिलाने और भूमिकर वसूल करनेमें अपना जीवन व्यतीत करे। यह छात्रवृत्ति एक दूसरे विद्यार्थीको मिल गयी।

स्वामी राम सांसारिक सुखोंपर कभी मोहित नहीं हुए। विद्याभ्यासके दिनोंमें भी वह बड़े संयमसे रहते थे। उनका भोजन सादा और थोड़ा होता था। वह बहुत ही सादे कपड़े पहनते थे, व्यवहारमें बड़ी कोमलता तथा सरलता होती थी। यों कहना चाहिये कि वह जन्मसे ही विरक्त थे। अवस्थाके साथ साथ उनके मनकी यह वृत्ति और भी प्रबल होती गयी हां पहले इसका विकास कृष्णभक्तिके रूपमें हुआ। एम० ए० पास करनेके बाद जब वह लाहोरके एक कालेजमें अध्यापक नियुक्त हुए तो कृष्णभक्तिमें इतने तल्लीन हुए कि अहर्निश उसीमें मग्न रहते थे। कभी कभी कृष्णका नाम सुनते ही वह प्रेमसे मूर्च्छित हो जाते थे, कहीं बांसुरीकी ध्वनि सुनाई देती तो विह्वल हो जाते। छुट्टियोंमें मथुरा वृन्दावन चले जाते थे। होशियारपुरके एक वकील लाला अयोध्याप्रसाद लिखते हैं—

गोसाइं जी एक बार लाहोरमें रामायणकी कथा सुन रहे थे। थोड़ी देर बाद बालकोंकी भांति रोने लगे। लोगोंने बहुत दिलासा दिया पर फल कुछ न हुआ। कथा समाप्त होनेपर वह



कहते सुनाई देते थे। कृष्ण ! मुझपर दया कीजिये। क्या मैं किष्किन्धाके बन्दरोंसे भी गया गुजरा हू ? क्या मैं भिलनीसे भी नीच हू ? यदि आपके दर्शन न हुए तो चूल्हेमें जाय यह विद्या, खाकमें जाय यह इज्जत और भाडमें जाय यह शरीर।

एक बार रावी नदीके किनारे अपने प्रियतमके ध्यानमें मग्न बैठे थे। इतनेमें कोयलकी कूक सुनकर चौंक पडे। कहने लगे अरी कोयल, तेरी ध्वनिमें यह मधुरता कहासे आयी ? क्या तूने उस बासुरीवालेको देख लिया है ? सच बता यह किस उपायसे और कब मिलेगा ? अरी आंखो, अगर श्यामको नही देख सकती हो तो अभी फूट जाओ। अरे हाथो ! अगर प्यारे कृष्णके चरण नहीं छू सकते हो तो मैं तुमको रखकर क्या करूगा अच्छा, मैं पापी सही। अब तो आपकी शरण आया हू, दया कीजिये, क्षमा कीजिये, झलक दिखलाइये। नाथ ! प्राण देनेसे भी आप मिलते हैं, तो लीजिये, यह प्राण भी आज आपकी भेंट किये देता हू।

जो हृदय भक्तिमें ऐसा रत हो रहा हो उसे सासारिक वस्तुओंसे क्या आनन्द मिल सकता था ? जो वेतन पाते थे उसे तुरत दीन दुखी मनुष्योंको प्रदान कर देते थे। अपने लिये दो चार रुपये भी न रखते थे। एक पत्रमें जो इसी समयका लिखा हुआ है कहते हैं—

किसी वस्तुको अपनी नहीं समझता, न रहने बनानेका न सामान जमा करनेका ध्यान है, अगर वृक्षकी छाह घरकी जगह, भभूत कपडोंकी जगह और भीखका टुकडा खानेको मिले तो भी आनन्द ही है।

इसी कालमें द्वारका मठके जगद्गुरु १०८ स्वामी शङ्कराचार्य जी लाहोर आये। वह ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों और वेदान्तके ग्रन्थोंके बडे ज्ञाता थे। राम उन दिनों लाहोर धर्मसभाके मन्त्री थे। उन्हें स्वामी शङ्कराचार्यके सत्सङ्गका बडा सुअवसर मिला, वह उनके

साथ काश्मीर चले गये। शंकराचार्यजीके उपदेशोंका रामपर यह असर हुआ कि प्रेमकी जर्दी (पीलापन) ज्ञानकी लालीमें बदलने लगी। काश्मीरसे लाहोर वापस आनेपर गुसाईं जी वेदान्त और उपनिषदोंके मनन और चिन्तनमें मग्न रहने लगे। छुट्टियोंमें मथुरा या वृन्दावनकी जगह हृषीकेष और हरिद्वारकी यात्रा करते थे। अब एकान्तसेवनमें रासलीलाकी अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द और शान्ति मिलती थी। आप एक पत्रमें लिखते हैं—

आजकल तो वेदान्त-विचार, भजन और एकान्तसेवन हीको कुल समय देता हूं। इसमें वह आनन्द है कि छोड़नेको जी नहीं चाहता। अगर व्यवहार कालमें चलते फिरते सब काम करते हमारी वृत्ति ब्रह्माकार रहे और दिल अर्शआला (ब्रह्मलोक) से कभी नीचे न उतरे तो धन्य है हमारा जोवन, नहीं तो मनुष्य-देह निष्फल खो दी।

वेदान्तके अभ्यासमें गुसाईं जी ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्होंने संवत् १९५५ में एक अद्वैतामृतवर्षिणी सभा स्थापित की। इस समय उन्होंने अपने गुरुको जो पत्र लिखे हैं उनसे विदित होता है कि प्रतिदिन उनका ब्रह्मानुराग प्रगाढ होता जाता था और चित्तपर शान्ति और स्थिरताका आधिपत्य जमता था। इसी सालके ग्रीष्म कालमें वह फिर हरिद्वार पधारे। यहांसे हृषीकेश होते हुए ब्रह्मपुरीके निकट आकर गङ्गातटपर आसन जमा दिया और आत्मसाक्षात्का दृढ संकल्प कर लिया। इस स्थानका उन्होंने स्वयं वर्णन किया है जिससे उनके चित्तकी वृत्ति भलीभांति प्रकट होती है—

गङ्गा! क्या वह तेरी छाती है जिसके दूधसे यह ब्रह्मविद्या परवरिश पाती है? हिमालय! तेरी ही गोद है जिसमें ब्रह्मविद्या खेला करती है हाय, वह परमानन्द कहां है जिसकी मस्तीमें न कोई फर्दा[1] है न इमरोज[2] है? हाय वह बहरेसरूर[3] कब मिलेगा

१ कल २ आज ३ आनन्दसागर।

कहते सुनाई देते थे। कृष्ण! मुझपर दया कीजिये। क्या मैं किष्किन्धाके बन्दरोंसे भी गया गुजरा हू? क्या मैं भिलनीसे भी नीच हू? यदि आपके दर्शन न हुए तो चूल्हेमें जाय यह विद्या, खाकमें जाय यह इज्जत और भाडमें जाय यह शरीर।

एक बार रावी नदीके किनारे अपने प्रियतमके ध्यानमें मग्न बैठे थे। इतनेमें कोयलकी कूक सुनकर चौंक पडे। कहने लगे अरी कोयल, तेरी ध्वनिमें यह मधुरता कहासे आयी? क्या तूने उस बासुरीवालेको देख लिया है? सच बता वह किस उपायसे और कब मिलेगा? अरी आखो, अगर श्यामको नही देख सकती हो तो अभी फूट जाओ। अरे हाथो! अगर प्यारे कृष्णके चरण नहीं छू सकते हो तो मैं तुमको रखकर क्या करूगा अच्छा, मैं पापी सही। अब तो आपकी शरण आया हू, दया कीजिये, क्षमा कीजिये, झलक दिखलाइये। नाथ! प्राण देनेसे भी आप मिलते हैं, तो लीजिये, यह प्राण भी आज आपकी भेंट किये देता हू।

जो हृदय भक्तिमें ऐसा रत हो रहा हो उसे सासारिक वस्तुओंसे क्या आनन्द मिल सकता था? जो वेतन पाते थे उसे तुरत दीन दुखी मनुष्योंको प्रदान कर देते थे। अपने लिये दो चार रुपये भी न रखते थे। एक पत्रमें जो इसी समयका लिखा हुआ है कहते हैं—

किसी वस्तुको अपनी नहीं समझता, न गहने बनानेका न सामान जमा करनेका ध्यान है, अगर वृक्षकी छाह घरकी जगह, भभूत कपडोंकी जगह और भीखका टुकडा खानेको मिले तो भी आनन्द ही है।

इसी कालमें द्वारका मठके जगद्गुरु १०८ स्वामी शङ्कराचार्य जी लाहोर आये। वह ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों और वेदान्तके ग्रन्थोंके बडे ज्ञाता थे। राम उन दिनों लाहोर धर्मसभाके मन्त्री थे। उन्हें स्वामी शङ्कराचार्यके सत्सङ्गका बड़ा सुअवसर मिला, वह उनके

माघ काश्मीर चले गये। शंकराचार्यजीके उपदेशोंका रामपर यह असर हुआ कि प्रेमकी जरदी (पीलापन) ज्ञानकी लालीमें बदलने लगी। काश्मीरसे लाहोर वापस आनेपर गुसाईं जी वेदान्त और उपनिषदोंके मनन और चिन्तनमें मग्न रहने लगे। छुट्टियोंमें मथुरा या वृन्दावनकी जगह हृषीकेष और हरिद्वारकी यात्रा करते थे। अब एकान्तसेवनमें रासलीलाकी अपेक्षा कहीं अधिक आनन्द और शान्ति मिलती थी। आप एक पत्रमें लिखते हैं—

आजकल तो वेदान्त-विचार, भजन और एकान्तसेवन होको कुल समय देता हू। इसमें वह आनन्द है कि छोडनेको जी नहीं चाहता। अगर व्यवहार कालमें चलते फिरते सब काम करते हमारी वृत्ति ब्रह्माकार रहे और दिल अर्शआला (ब्रह्मलोक) से कभी नीचे न उतरे तो धन्य है हमारा जीवन, नहीं तो मनुष्य-देह निष्फल खो दी।

वेदान्तके अभ्यासमें गुसाइं जी ऐसे अनुरक्त हुए कि उन्होंने संवत् १९५५ में एक अद्वैतामृतवर्षिणी सभा स्थापित की। इस समय उन्होंने अपने गुरुको जो पत्र लिखे हैं उनसे विदित होता है कि प्रतिदिन उनका ब्रह्मानुराग प्रगाढ होता जाता था और चित्तपर शान्ति और स्थिरताका आधिपत्य जमता था। इसी सालके ग्रीष्म कालमें वह फिर हरिद्वार पधारे। यहांसे हृषीकेश होते हुए ब्रह्मपुरीके निकट आकर गङ्गातटपर आसन जमा दिया और आत्मसाक्षात्का दृढ संकल्प कर लिया। इस स्थानका उन्होंने स्वयं वर्णन किया है जिससे उनके चित्तकी वृत्ति भलीभांति प्रकट होती है—

गङ्गा! क्या यह तेरी छाती है जिसके दूधसे यह ब्रह्मविद्या परवरिश पाती है? हिमालय! तेरी ही गोद है जिसमें ब्रह्मविद्या खेला करती है हाय, वह परमानन्द कहां है जिसकी मस्तीमें न कोई फर्दा[1] है न इमरोज[2] है? हाय वह वहरेसरूर[3] कब मिलेगा

१ कल २ आज ३ आनन्दसागर।

जो लज्जत दुनियवीको खस[1] व खाशाक[2] की तरह बहा ले जाता है। अगराजेजिस्मानी[3] और जजबातनफसानी[4] धुन्ध और अंधेरेकी भांति कब साफ उड़ जायगे ?

* * * *

श्री भागीरथीकी शोभा कौन वर्णन करे ! क्या विराट् भगवानका हृदय स्थान यही है ? उसका गम्भीर और शीतल स्वभाव चित्तकी चुलबुलाहटको साफ कर रहे हैं। कहीं कहीं गङ्गाजलसे अजब शान्ति भरे हुए कुण्ड बन रहे हैं। चांदनीमें तू चमकती दमकती गङ्गा है कि कोटानुकोट हीरे मोती कूट कूट कर भरे हैं। गङ्गा अपनी महाशीलता और निर्मलतासे वैष्णवपन दिखाती और महाशक्ति और जोर शोरसे शेरकी तरह गरजने और अस्थियोंके चबानेसे शाक्तपन जाहिर करती विष्णु और शिव दोनोंकी झलक मारती है। गङ्गा मानों कह रही है कि ऐ अहंकार आ मैं तेरा शिकार करू, ऐ जेहल[5] तेरी जिस्मानियत और अनानियत[6] की हड्डियां चबा जाऊं गी, पसुलियां अलग अलग कर दूंगी। ऐ मोह रूपी पत्थर मैं तुझे चीर डालूंगी पहाड़को काटकर आई हू अब तेरी बारी है।

* * * *

क्या हम अकेले हैं ? कोई विद्यार्थी साथ नहीं, नौकर पास नहीं, आबादी बहुत दूर है, आदमीका नाम काफूर है तारों भरी रात, आधी इधर आधी उधर, बिल्कुल सुनसान है, बियाबान है, सन्नाटेका आलम है पर क्या हम अकेले हैं ? अकेले हमारी बला, अभी वर्षा बादी स्नान करा गयी है, हवा लौंडी चारों तरफ दौड़ रही है, सामने गङ्गा अपनी गंग गंगकी रागिनी अलाप रही है, सैंकड़ों खादिम इर्द गिर्द झाड़ियोंमें आराम कर रहे हैं। हम अकेले क्यों ? पर हां, हम अकेले ही हैं, यह घने दरख्त नहीं, हम ही हैं, हवा नहीं

१-२ झाड़ा कड़कट ३ शारीरिक स्वाद ४ इन्द्रियजन्य भोग ५ अहंकार ६ मूर्खता।

हम हैं, गंगा नहीं, हम हैं, तारे सारे और चाँद नहीं, हम हैं, खुदा नहीं हम। हम ही हम!

*   *   *   *

इस तपोवनसे लौटकर स्वामी राम लाहोरमें ओरिएंटल कालेजमें अध्यापक नियुक्त हो गये और जब गर्मियोंमें कालेज बन्द हुआ तब काश्मीरकी यात्रा की और अमरनाथ होते हुए लाहोर वापस आये। इस यात्राका स्वामीजीने स्वयं वर्णन किया है, जिसका एक एक शब्द आत्मानन्दमें डूबा हुआ है। लिखते हैं—

इधर उधर रामकी सेना कलोल कर रही है। छोटे छोटे ममोलों जैसे रंगा रंगके परिन्दे बेल बूटोंपर फुदक रहे हैं और आवाज खुशआइन्द[१]? पर चह चहा रहे हैं।

सफेद सफेद झागके अन्दरसे नीला पानी इस तरह झलक रहा है जैसे गोरे रंग बदनपर नीली नीली रगें। बाज जगह पानीके नीचे पत्थरोंकी यह चमक है कि अगर "सब जगह घर न समझने वाला" यहां हो तो फिलफौर उसके जीमें यही आये कि जैसे बने इन संगरेजोंको चुराकर जरूर ले जाऊँ, लेकिन घर कैसा? यह वह मुकाम है कि जब एक दफा देखा तो यहीं घर कर बैठनेकी ख्वाहिश होती है। छोड़नेको जी नहीं चाहता।

हायरे! दुनियाकी हवा व हवस, तेरे रस्से कैसे मजबूत हैं! ऐसे आनन्दके आगोश[२] से भी लोगोंको खींच ले जाती है, फिर गर्मीमें रुलती और मिट्टीमें मिलाती है।

*   *   *   *

सड़कके दोनों किनारोंपर आमने सामने कतारोंमें शमशाद[३] आसमानसे बातें करते हुए खड़े हैं। गोया कशीद[४] कामत माशूक हैं कि लिबासे[५] सब्ज दरबर किये[६] बदनसे बदन

१ सुहावनी २-गोद ३ पेड़ ४ लम्बे ५ वस्त्र ६ पहनी।

मिलाये रामके, इन्तज़ारमें सफअरा१ हैं। अजब नज़ारा२ है। वाज वाज मुकामातपर तो शमशाद ऐसे तंग पस्तादा हैं कि बेचारोंका कंधेसे कंधा छिलता है। और यों सरवफलक३ हैं कि अगर मुतला४ साफ हो और सड़कपर ठहरकर आसमानकी तरफ नजर उठाई जाये तो रोज रोशनमें दिन दोपहरके वक्त तारोंका नजर आना कुछ बड़ी बात नहीं।

एक दिन ऐसी सड़कपर अनन्तनागके करीव घोड़ेपर सवार राम जा रहा था। बादल घिर रहे थे। हवा शमशादोंकी जुल्फों-से अठखेलियां कर रही थी। यकायक घटा तमाम आसमानपर फिर गयी।

वह आई वह आई घटा, गुलिस्तान आलमपर छाई घटा
घटा काली काली धनुष लाल लाल, कन्हैयाके ऊपर है जैसे गुलाल

पीछेसे एक नगमा५ की आवाज निकली। हवापर सवार होकर फैलने लगी। बादलोंतक गूंजसे तमाम आलम भर गया। यह एक पहाड़ी लड़का बांसुरी बजा रहा था। कैसा समां बँध गया—अहा! हा! हा! बादलके सातवें पर्देतक वह सुरें धँस गयीं। अब किसमें ताब थी कि घोड़ा बढ़ाकर आगे निकल जाय। नगमा तालके साथ घोड़ेका कदम उठने लगा। मील एक गुजर गये और ख्यालतक नहीं आया।

यूनानी मिथलोजी६ से सुना है कि हुस्न७ की परी फेनमेंसे पैदा हुई थी। लेकिन 'शुनीदा८ पेबुद मानिन्द दीदा९' इन आबशारोंके फेनपर प्रत्यक्ष नाच (नृत्य) करती देखी। पानी इतना तो गहिरा लेकिन शफाफ ऐसा कि गंगी (गंगाजी) याद आती है। गोपियां अगर यहां [illegible] लिये
जरूरत न पड़ती कि इनको परहना [illegible]

१—खड़े २ दृश्य [illegible] मिले [illegible] न हो [illegible] ९ देखा [illegible]

बाहर निकालनेकी तकलीफ देता। यह झलकते झलकते ऊंचे आबशार चांदीके कमन्द और रस्से मालूम देते हैं कि जिनको पकडकर आलम उलवीको चढ जायें। या यह हीरेकी गातवाली कचनिया (चादरें) हैं जो सरके बल रक्सकुना[१] जमीन खिदमत चूम रही हैं और निहायत सुरीली आवाजसे रामकी महिमाके गीत गाती जाती हैं।

संवत् १९५७ में 'अलिफ' नामकी उर्दू पत्रिका जारी की गयी और इसके दो तीन अंक ही निकले थे कि सावनमें रामने वानप्रस्थ ले लिया। उनके कई भक्तों तथा पत्नी और पुत्रने भी उनके साथ जङ्गलको प्रस्थान किया। किन्तु थोडे ही दिनोंमें उनकी पत्नीका स्वास्थ्य ऐसा बिगडा कि वह विवश होकर अपने घर चली आयीं। १९५८ के आदिमें रामने सन्यास ग्रहण कर लिया। संसारमें वह कभी लिप्त नहीं रहे। युवावस्थाहीसे इनकी वृत्ति एकान्ताभ्यासकी ओर थी, अब वह पूर्ण रीतिसे विरक्त हो गये। कुछ दिनोंतक तो वह उसी स्थानपर रहे, फिर गंगोत्री बद्रीनाथ आदि पवित्र स्थानोंकी यात्रा करते हुए वह लगभग साल भरके बाद लौटे और भारतके नगरोंमें घूम घूमकर लोगोंको अपनी अमृतवाणीसे कृतार्थ करने लगे।

स्वामी रामके उपदेशोंमें ऐसा विह्लकारी आकर्षण होता था कि जिसने एक बार भी उनके सुननेका सौभाग्य प्राप्त किया है उस रसको जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता। मथुरामें धर्ममहोत्सवके अवसरपर स्वामीजीका व्याख्यानभी होनेवाला था। लोग दिनभर उपदेश सुनते सुनते थक गये थे। यहांतक कि उत्सवका समय व्यतीत हो गया। अन्तमें स्वामीजी मंडपमें आये पर व्याख्यान न देकर केवल यह कहा कि यदि आप लोगोंको रामको

१ सर २ नाचती हुई।

बातें सुननी हों तो वह इस मण्डपके बाहर जमुनाके तटपर आकर सुन लें । यह कहकर स्वामीजी यमुनाकी ओर चले गये । श्रोता-गण भी कुरसियां छोड छाडकर उनके पीछे हो लिये । कोई ठोकरें खाता था कोई झाडियोंसे उलझता था, साथियोंके साथ छुटे जाते थे पर उस प्रेमाकांक्षामें उन्हें किसी बातकी सुधि न थी । जब राम यमुना किनारे पहुँचे तो रात हो गयी थी और पौष मासकी शीतल वायु चल रही थी । नदी किनारेकी रेत और भी ठंढी हो गयी थी । महोत्सवका समय केवल दिनका था इसलिये लोग अपने साथ ओढनेके कपडे न लाये थे पर वह ८ बजेतक उसी ठंढी रेतपर बैठे हुए रामके मनोहर वचन सुनते रहे, किसीने शीतकी परवाहतक न की । महोत्सवमें और भी कितने ही साधु महात्मा उपस्थित थे परन्तु राम उस महोत्सवके बादशाह थे । उनके उपदेशोंमें ऐसा अनुराग होता था कि अन्य मतके लोग भी सुनकर मस्त हो जाते थे । शंकाओंका वह ऐसा शांतिभावसे समाधान करते थे कि द्वेषी भी उनका भक्त हो जाता था । विवादियोंकी आधी अश्रद्धा तो उनके दर्शन मात्रसे गायब हो जाती थी । अमेरिकामें एक नास्तिक महिलाने रामको समाधिमें



मग्न देखकर कहा, प्रभो, अब मैं नास्तिक नहीं हूं। मेरी शकाए शात हो गयीं। जो लोग उनकी हँसी उडानेका इरादा करके आते थे, भक्तिका प्रसाद लेकर जाते थे। इसका मुख्य कारण यही था कि राम किसी मनसे द्वेष न रखते थे। उनके पवित्र निर्मल अन्त करणमें मत मतान्तरोंको जगह न थी। प्रत्येक मतमें उन्हें ईश्वरका हाथ काम करता दिखायी देता था। मिस्र देशमें लोग उनपर इतने आकर्षित हुए कि उन्हें मसजिदमें व्याख्यान देनेको निमन्त्रित किया। अमेरिकाके धार्मिक सम्मेलनमें देश देशातरोंके विद्वान् एकत्र थे, किन्तु राम उन नक्षत्रोंमें चन्द्रके समान थे। उनके सत्सगसे लाभ उठानेके लिये वहा लोगोंने एक "हरमेटिक ब्रदरहुड" स्थापित की। उनके व्याख्यानोंपर समाचारपत्रोंमें बडी उदारतापूर्वक आलोचनाए की जाती थीं। अमेरिका निवासियोंको उनके जीवनपर कौतूहल होता था। स्वामी विवेकानन्दके बाद भारतवर्षसे कई महात्मा अमेरिका गये और जाते हैं, उनके उपदेशोंसे वहा हिन्दूमत, वेदान्त, दर्शनका अच्छा प्रचार हो गया है। कमसे कम वहाका शिक्षित समुदाय इन विषयोंसे इतना अनभिज्ञ नहीं है जितना इगलैण्डका शिक्षित समुदाय। किन्तु रामके त्याग और वैराग्यका उनपर जितना प्रभाव पडा वह कम किसीका पडा होगा। वहाके एक बडे विद्वान्ने रामको देखकर कहा था कि "यह अद्भुतपुरुष हैं। यह अधिकाश बुद्धिलोकमें रहते हैं, शरीरसे इनका सबध बहुत कम रहता है।" उनका निवास सदा परमात्मामें रहता था, यही उनके जगतव्यापी प्रेमका मूल मंत्र था। अमेरिकासे लौटनेपर उनके कुछ भक्तोंने उनके नामसे एक पृथक् सस्था खोलनेकी चर्चा की। रामने इसका उत्तर दिया "भारतमें जितनी सभायें और समाजें हैं वह सब रामकी हैं, राम उनमें काम करेगा, ईसाई, आर्य्य सिक्ख, पारसी, मुसल्मान सब मेरे भाई हैं, उनसे कह दो कि राम उनका है।"

समस्त ससारसे प्रेम रखनेपर भी स्वामी राम अपनी मातृभूमिके सच्चे भक्त थे। यह भारतका परम सौभाग्य है कि उन्होंने अपने लेखों और व्याख्यानोंमें देश और जातिकी सेवाका बारबार अनुरोध किया है। वह दरिद्र देशवासियोंके पालनको ईश्वरभक्तिका महत्व देते थे। एक पत्रमें लिखते हैं—

ऐ हिन्दवालो! क्या तुम भी देशभक्त बनना चाहते हो? तो फिर अपने आपको मुल्क और उसके निवासियोंकी सेवामे लगा दो। सच्चे आध्यात्मिक सिपाही और मर्द मैदान बनकर अपने तन मन धनको देशके हितपर अर्पण कर दो, देशकी दशाका अनुभव करो।

एक दूसरे पत्रमें लिखते हैं—

मैं सदेह भारत हू। सारा भारत मेरा शरीर है। रासकुमारी मेरा पैर और हिमालय मेरा सिर है। मेरे बालोंकी जटाओंसे गगा बह रही है। मेरे सिरसे ब्रह्मपुत्र और अटक निकली है। विध्याचल मेरा लँगोट है, कारोमडल मेरा दाया और मलाबार मेरा बाया पाव है। मैं सम्पूर्ण भारत हू। पूर्व और पश्चिम मेरी दोनों भुजाए हैं जिनको फैलाकर मैं अपने देशवासियोंको गले लगाता हू। हिन्दुस्तान मेरे शरीरका ढाचा है और मेरी आत्मा सारे भारतकी आत्मा है। चलता हू तो अनुभव करता हू कि तमाम हिन्दुस्तान चल रहा है, जब मैं बोलता हू तो तमाम हिन्दुस्तान बोलता है।

देशभक्तिका ऐसा ऊचा आदर्श कहा मिल सकता है! मातृ-भूमिकी दुर्दशापर वह कभी कभी विकल हो जाते थे। देशानु-रागसे उन्मत्त होकर वह लिखते हैं—

ऐ गुलामी अरे दासपन, अरी कमजोरी, अब समय आ गया, बाधो बिस्तर, उठाओ लत्तापत्ता, छोडो मुक्त पुरुषोंके देशको। सोनेवालो! बादल भी तुम्हारे शोकमें रो रहे हैं, वह जाओ, गगामें डूब मरो, समुद्रमें गल जाओ, हिमालयमें

रामका यह शरीर नहीं गिरेगा जबतक भारत बहाल न हो लेगा। यह शरीर नाश भी हो जायगा तो भी इसकी हड्डिया दधीचिकी हड्डियोंके समान इन्द्रका वज्र बनकर राक्षसको चकनाचूर कर ही देंगी। यह शरीर मर भी जायगा तो भी इसका ब्रह्मबाण नहीं चूक सकता!

यह देशानुराग बहुधा भावमय पद्योंमें प्रकट होता था। उन्हें पढ़नेसे विदित होता है कि जिस हृदयसे वह निकले हैं वह जातीयताका कैसा अखण्ड और अनन्त स्रोत था—

सारे जहासे अच्छा हिन्दोस्ता हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह बोस्ता हमारा॥
गुरबतमें हों अगर हम रहता है दिल वतनमे।
समझो वही हमें भी हो दिल जहा हमारा॥
देखा है प्यारे मैंने दुनियाका कारखाना।
सैरो सफर किये है छाना है सब जमाना॥
अपने वतनसे बेहतर कोई नहीं ठिकाना।
प्यारे वतनको गुलमे खुशतर है सबने माना॥
अहले वतनसे पूछो तुम खूबियां वतनकी।
बुलबुल ही जानती है आजादियां चमनकी॥

स्वामी राम विद्याके अगाध सागर थे। उन्हें पदार्थ विज्ञानसे प्रेम था और निपुण रसायनी तथा वनस्पति शास्त्रज्ञ थे। तत्त्व विज्ञानशास्त्रमें विकासवाद उनका विशेष प्रिय विषय था। उन्होंने समस्त पाश्चात्य और पूर्वीय दर्शनशास्त्रोंका अपने ढगसे पूरा पूरा अध्ययन किया था। उन्होंने शकर, कणाद, कपिल, गौतम पतञ्जलि, जैमिनि और व्यासके ग्रथोंके साथ साथ काट,हेगल,गेटे, फिक्टे, स्पिनजा, स्पेन्सर, डार्विन, हेकेल, टिंडल, हक्सले, स्टार, जार्डन

[illegible] ग्रन्थोंमें भी पारदर्शिता प्राप्त की थी। फार्सी [illegible], उर्दू और संस्कृत साहित्यके पूर्ण पंडित थे। ई० [illegible] में चारों वेदोंका अध्ययन किया। प्रत्येक मन्त्रके [illegible] ऋचाओंके प्रत्येक शब्दका विश्लेषण वे एक [illegible] करते थे। इस प्रकार उन्होंने अपनेको विल- [illegible] लिया था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपनी [illegible] के प्रत्येक क्षणका उन्होंने अत्यन्त सदुपयोग [illegible] अन्त समयतक वे कठोर परिश्रम करते रहे। [illegible] प्रवास कालमें सार्वजनिक कार्यों में घोर [illegible] भी बहुत कुछ अमेरिकन साहित्य उन्होंने पढा।

[illegible] ग्रंथकारों, साधुओं, कवियों और परमभक्तोंके [illegible] प्रकट करते समय वे एक अद्भुत रसिकताका [illegible] थे। उनकी शैली तथा निष्पक्ष आलोचनामें किसी [illegible] प्रदर्शन तथा बनावटी अभिमानकी नाम मात्रकी [illegible] अथवा कोई निस्सार बात नहीं होती थी। वे अति [illegible] विद्वान, तत्त्वज्ञ और ब्रह्मवादी थे। मेधाशक्तिके विका[illegible] [illegible] ही वे अपने आध्यात्मिक उत्थानको बढ़े[illegible] [illegible] सके थे। जो कुछ समय उन्हें मिलता [illegible] [illegible] रहस्यों और प्राचीन आर्य ब्रह्मविद्याका म[illegible] [illegible] की महाद्[illegible] [illegible] बिताते थे। [illegible] नदीका नाद [illegible] छायामें [illegible]

[illegible]

मानवीय काव्य पढ़ा था और उनकी आत्माकी अग्निको शीतल हिम और पहाड़ी दृश्योंके विस्तारके सिवाय कौन बुझा सकता था। किसी घरका रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता था। सबसे अधिक सुखी वे तभी होते थे जब हिमालयके जङ्गलोंमें नेत्रोंको आधा बन्द किये हुए विचरते थे और सर्वाधिक शक्तिशाली पर्वतराजको कनखियोंसे देखते थे। उन्होंने अनेक विषयोंपर कविता की थी। उन्हें जङ्गलोंमें, वनके वृक्षोंमें, तारोंमें, सभी जगह ब्रह्मका प्रकाश दिखायी देता। उनकी कविताके साँचेमें ढलकर सभी विषय आध्यात्मिक बन जाते हैं। इन कविताओंको उरूज या पिंगलके नियमोंसे जाँचना अन्याय है। उनका महत्व केवल उनकी सजीवता, उनकी मस्ती, उनका सारस्य है। वह हृदयकी उमङ्ग है, भरे हुए सरोवरकी लहर है। उनकी भाषा अधिकांश उर्दू ही है, कहीं कहीं पञ्जाबी और हिन्दीका भी प्रयोग किया गया है। पर भाषा कुछ ही हो, भावोंसे जातीयता बरसती है। उनमें वह गुण कूट कूटकर भरा हुआ है जो कविताका प्रधान गुण है। हृदयको मसोस लेती है, उसे एक जोश, सच्चे उत्साहसे परिपूर्ण कर देती है। आजादी (स्वतन्त्रता) उनकी एक उत्तम कविता है उसमें एक धनशाली मनुष्यके ठाट बाटका वर्णन करनेके बाद आप पूछते हैं—

क्या यह आजादी है ? हाय यह तो आजादी नहीं
गोये चौगानी परेशानी है आजादी नहीं
अस्प हो आज़ाद सरपट कैद होता है सवार
अस्प हो मुतलक इना हैरान होता है सवार
इन्द्रियोंके घोड़े छूटे बागडोरी तोड़कर
वह मरा वह गिर पड़ा असवारका सिर फोड़कर

अमरनाथके दृश्य अत्यन्त मनोरम हैं बस यात्राका वर्णन करते हुए राम एक दृश्यका वर्णन करते हैं—

डलकता है डल दीदये मह लका सा
धडकता है दिल आईना पुर सफा का
हिलाता है कोहोंको सदमा हवाका
खिले हैं कँवल फूल, है इक बलाका
यह सूरजकी किरनोंके चप्पे लगे है
अजब नाव भी हम हैं खुद खे रहे है

भावार्थ—डल (झील) में इर्द गिर्दके पहाडोंकी छाया पड रही है और पानीके हिलनेसे इतने बडे पर्वत हिलते हुए दिखाई देते हैं। सूर्य एक नावके सदृश डलमें कांप रहा है और उसकी किरणें मानों उसे खे रही हैं।

एक पर्वतका प्राकृतिक वर्णन यों करते हैं—

आसमाका बतायें क्या हम हाल
मोतियोसे भरा हुआ है थाल
चाद है मोतियोमे लाल धरा
अन है थालपर रूमाल पडा
सिरपर अपने उठाके ऐसा थाल
रक्स करती है नेचरे खुश हाल

चादनीमें गगाकी शोभा यों वर्णन की है—

क्या कहूं चादनीमे गगा है
दूध हीरोंके रग रगा है।

वर्णनको मूर्तिमान बना देना कविताका सर्वप्रधान गुण है, और यह गुण शेरोंमें भरा हुआ है।

स्वामी रामके जीवनपर यों तो ससारकी कितनी ही महान् आत्माओंके विचारोंका प्रभाव पडा जिसने उनकी मनोवृत्तियोंको

ओर भी विकसित कर दिया पर आदिसे सबसे अधिक प्रभाव धन्ना भगतजीका पड़ा। यह महानुभाव गुजरानवालेमें रहते थे। वेदान्तके अनुयायी और बड़े पवित्र आचरणके मनुष्य थे। युवक तीर्थराम जब गुजरानवालेमें अँगरेजी पढ़ने आये तो वहां भगत जीसे उनकी भेंट हुई। भगतजीने उनकी धार्मिक प्रवृत्ति देखकर उन्हें उत्साह दिलाया और तीर्थरामको भी उनपर श्रद्धा हो गयी। उनसे सत्सगका कोई अवसर हाथसे न जाने देते। भगतजीपर उनकी यह श्रद्धा जन्म भर रही। लाहौर आनेपर भी वह उनके पास बराबर पत्र भेजते थे, जिनके एक एक शब्दसे आदर और भक्ति टपकती है। अपनी आर्थिक कठिनाइयोंमें अपने जीवनको संयमी बनानेमें उन्हें भगतजीके उपदेशोंसे बड़ी सहायता मिलती थी। रामके इन पत्रोंसे उनके आत्मिक विकासका भली-भांति स्पष्टीकरण होता है। धन्नाजी ज्ञानको भक्तिसे श्रेष्ठ समझते थे। जिन दिनों तीर्थराम कृष्णभक्तिकी तरंगोंमें बहे जाते थे भगत जीने उन्हें बारम्बार ज्ञानमार्गपर लानेकी चेष्टा की। उनके जीवनका ध्येय गृहस्थ रहकर वेदान्तका व्यवहार करना ज्ञात होता है। उन्होंने स्वयं संन्यास नहीं ग्रहण किया। वह दूसरी जगह पर तीर्थरामको सन्याससे पृथक् रहनेका उपदेश करते थे। किन्तु जो आत्मा जगद्व्यापी प्रेमके प्रकाशसे परिपूर्ण हो रही हो उसे गृहस्थ धर्मके संकुचित क्षेत्रमें रोक रखनेका प्रयत्न कैसे सफल होता?

स्वामी राम बड़े सरल प्रकृतिके मनुष्य थे। बहुत कम बोलते लेकिन लेक्चर देते समय उन्हें इतना जोश आ जाता था कि दो तीन घंटोंतक लगातार बोलते रहते थे। सोते बहुत कम थे, अधिकांश समय मनन और एकान्त अभ्यासमें लगाते थे। शारीरिक परिश्रममें उन्हें बहुत आनन्द मिलता था। बाल्यावस्थामें यह बहुत दुबले पतले थे लेकिन बादको नियमा-नुकूल कसरत करनेसे इतने सबल हो गये थे कि ऊंचे पहाड़पर

तेजीसे चढ जाते थे। पैदल चलनेका उन्हें व्यसन था। सन्यास ग्रहण करनेके बाद बहुधा गगातटसे पत्थर उठा उठा कर फेंकते थे और पसीनेसे तर होकर छोडते थे। उनका भोजन थोडा और सादा होता था। दूधसे उन्हें प्रेम था। मूगकी दाल और रोटी भी खा लेते थे। मास और मादक पदार्थों से घृणा थी। अमेरिका और जापानमें भी वह भाजी, शाक, मेवे और दूधका सेवन करते रहे। भोजनकी तरह वस्त्र भी बहुत सादे पहनते थे। गृहस्थावस्थामें जाडेमें पट्टूका गर्म कोट और धोती या मामूली पाजामा और गरमीमें मलमलका कुर्ता, उजला कोट और धोती पहनते थे। घरपर नगे सिर ही रहते थे, बाहर जाते समय सफेद साफा बाध लिया करते थे। सन्यास धारण करनेके कुछ दिन पहले वह बढिया रेशमी कपडे पहनने लगे थे। इसका अभिप्राय यह था कि सन्यासी हो जानेपर मन सुन्दर वस्तुओंकी ओर न लपके। वैराग्यावस्थामें वह साधारणत एक सफेद या लाल रेशमी धोती पहनते थे, पावमें खडाऊं होता था, पानी या दूध पीनेके लिये लकडीका कूडा या नारियलका टुकडा साथ रखते थे।

स्वामीजीके निज सम्बन्धियोंमें अब उनके दो भाई और दो पुत्र हैं। माता, पिता, पत्नीका देहान्त हो चुका है। दोनों भाई अपनी प्राचीन वृत्तिपर निर्वाह करते हैं। बडे पुत्र गोसाई मदनमोहनजी महाराज साहेब टेहरीकी सहायतासे विलायत गये थे और इस समय पटियालेमें इञ्जीनियर हैं। छोटे पुत्र ब्रह्मानन्द उन्हींके पास शिक्षा पा रहे हैं।

रामके जीवनका 'मिशन' क्या था? अद्वैतका प्रचार। ससारके प्राणिमात्रसे प्रेम करके उन्होंने ब्रह्मकी एकताका प्रत्यक्ष स्वरूप दिखा दिया। जिस प्रकार राजाके सिंहासनपर आते ही दरबारमें एक व्यवस्था स्थापित हो जाती है, उसी प्रकार मनुष्य ज्योंहा अपने ईश्वरत्वका ज्ञान प्राप्त कर लेता है समस्त

कर्म और जीवनका सचार हो जाता है। मनुष्य स्वय आनन्दका भाडार है। प्रेम—निष्काम प्रेम ही उसे शरीरके वन्धनसे मुक्त कर सकता है।

अमेरिकासे लौटनेपर रामको विचार हुआ कि हिमालयके अन्तर त कहीं एक वेदान्त आश्रम खोला जाय। उसमें विशेषत साधु ब्रह्मचारी दाखिल किये जाय। यह लोग इस आश्रमसे निकलकर ससारमें वेदान्तका प्रचार करें। इस आश्रमके निवासियोंको खेती बारीका काम भी सिखाना चाहते थे, जिससे आश्रमको दूसरोंसे धन मागनेकी जरूरत न रहे। लेकिन स्वामी रामका यह सकल्प पूरा न हो सका। वह सवत् १९६१ में विदेशसे लौटे और सवत् १९६४ में जल समाधिस्थ हो गये। इन दो वर्षों में उनका समय अपने लेखों तथा व्याख्यानोंके सग्रह करनेमें व्यतीत हुआ।

सौभाग्यसे उनकी रचनाओंका सग्रह अँगरेजीमें प्रकाशित हो गया है और देशकी अन्य भाषाओंमें भी उसका प्रचार दिनों-दिन बढ रहा है। यही उनका वेदान्त आश्रम है। इनके द्वारा हम चिरकालतक उनकी अमृतवाणी सुनते रहेंगे। उनका प्रकाश चिरकाल तक हमारे अन्त करणके अन्धकारका नाश करता रहेगा।

—"प्रेमचन्द"

२० प डित मदनमोहन मालवीय

मालवीयजीके पूर्व पुरुष मालवा देशके निवासी थे इसीसे ये और इनके कुटुम्बके लोग मालवीय उपाधिसे भूषित हैं। कोई तीन सौ वर्ष हुए होंगे कि इनके पूर्वज मालवा देश छोडकर इलाहाबादमें आ बसे। मालवीयजीके पूर्वजोंमें एक न एक पुरुष विद्वत्ता और धर्मनिष्ठाके लिये प्रसिद्ध होता आया है।

पंडित मदनमोहन मालवीयजीके पिताका नाम पंडित वैज-



नाथ मालवीय था यह संस्कृतके अच्छे पंडित थे। मालवीय-जीका जन्म संवत् १९१६में३ सौर पौषको हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा हिन्दीमें घर ही पर हुई। जब ये हिन्दी भलीभांति लिखने पढ़ने लगे तब अँगरेजी पढ़नेके लिये गवर्नमेंट स्कूलमें बैठाये गये। वहां एन्ट्रेंसकी परीक्षा पास करके इन्होंने म्योर सेंट्रल कालेजमें नाम लिखाया और संवत् १९४१ में वहींसे बी० ए० की परीक्षा पास की। आगे इच्छा होनेपर भी कई कारणोंसे न पढ़ सके और इसी वर्ष गवर्नमेंट स्कूलमें अध्यापक नियत हुए। इन्होंने इस पदपर तीन वर्षतक बड़ी योग्यतासे काम किया। संवत् १९४४ में कालाकांकरके तअल्लुकेदार राजा रामपाल सिंहजी इन्हें अपने यहां लिवा ले गये और अपने यहांसे प्रकाशित होनेवाले हिन्दी भाषाके दैनिक पत्र हिन्दोस्थानका सम्पादन इनके हाथमें दिया। इन्होंने हिन्दोस्थानकी उन्नति करनेमें यथासाध्य परिश्रम किया और विलक्षण दक्षताके साथ ढाई वर्ष तक उसका सम्पादन किया। यद्यपि मालवीयजीने हिन्दीका कोई विशेष ग्रंथ नहीं लिखा है परन्तु हिन्दोस्थानकी पुरानी ... देखनेसे ज्ञात ... ये मातृभाषा हिन्दीके कैसे

अच्छे लेखक हैं। इनकी ओजस्विनी और सरल लेख-प्रणाली पाठकोंके चित्तपर पूरा प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है।

ढाई वर्ष तक हिन्दोस्थानका सम्पादन करनेके बाद आपकी इच्छा कानून अध्ययन करनेकी हुई, यह जान कर राजा रामपाल सिंहने इन्हें यहांसे प्रसन्नतापूर्वक रुखसत दी और इनके कानूनके अध्ययनमें यथासाध्य सहायता दी। तीन वर्ष कानून पढ़कर संवत् १९४७ में हाईकोर्टकी परीक्षा पास की और अगले वर्ष एल० एल० बी० की उपाधि भी पायी। तबसे आप इलाहाबाद हाईकोर्टमें वकालत करते आये और अपने देश तथा देश भाइयोंके हितकी चिन्तनामें तत्पर रहते हुए अपने मनुष्य-जीवनको सफल कर रहे हैं। मालवीयजी हिन्दी भाषाके अधिकारी नहीं पर हिन्दीके अच्छे लेखक और सच्चे शुभचिन्तक हैं। आप काशी नागरी प्रचारिणी सभाके एक सम्मानित सदस्य हैं। सर एंटनी मेकडानलके समयमें जब कि संयुक्त प्रदेशकी प्रजाकी ओरसे प्रांतीय गवर्नमेंटकी सेवामें अदालतोंमें नागरी लिपिका प्रचार करनेकी प्रार्थना की गयी थी उस समय आपने इस कार्यमें विशेष उद्योग किया था, वरन् यह कहना चाहिये कि इस कार्यमें सफलता केवल आप हीके परिश्रमका फल है। लाट साहबकी सेवामें नागरी मेमोरियलकी योजना, नागरीके सभी गुणोंके कीर्त्तनमें पुस्तक लिखना और स्वार्थशून्य हो निजके हजारों रुपये खर्चकर इसी कार्यमें लग जाना पण्डितजीके लिये एक बड़े गौरवकी बात है।

मालवीयजी एक सादे मिजाज और सादी रहन सहनके व्यक्ति हैं और बड़े मिलनसार और सच्चरित्र पुरुष हैं। आप इस प्रांतके प्रधान राजनैतिक पुरुषोंमेंसे हैं और अपना बहुत कुछ समय देश-सेवामें लगाते हैं। आप सनातन हिन्दू धर्मको हृदयसे मानते और उसकी उन्नतिमें तन मनसे दत्तचित्त रहते हैं। आपने प्रयागमें एक सनातन धर्म सभा स्थापित की है जिसका प्रतिवर्ष माघ

पडित मदनमोहन मालवीयजीके पिताका नाम पडित बैज-



नाथ मालवीय था। यह सस्कृतके अच्छे पडित थे। मालवीय-जीका जन्म सवत् १९१९में३ सौर पौषको हुआ था। इनकी प्रारंभिक शिक्षा हिन्दीमें घर ही पर हुई। जब ये हिन्दी भलीभांति लिखने पढने लगे तब अँगरेजी पढनेके लिये गवर्नमेंट स्कूलमें बैठाये गये। वहा एन्ट्रेंसकी परीक्षा पास करके इन्होंने म्योर सेंट्रल कालेजमें नाम लिखाया और सवत् १९४१ में वहींसे बी० ए० की परीक्षा पास की। आगे इच्छा होनेपर भी कई कारणोंसे न पढ सके और इसी वर्ष गवर्नमेंट स्कूलमें अध्यापक नियत हुए। इन्होंने इस पदपर तीन वर्षतक बडी योग्यतासे काम किया। सवत् १९४४ में कालाकाकरके तअल्लुकेदार राजा रामपाल सिंहजी इन्हें अपने यहा लिवा ले गये और अपने यहासे प्रकाशित होनेवाले हिन्दी भाषाके दैनिक पत्र हिन्दोस्थानका सम्पादन इनके हाथमें दिया। इन्होंने हिन्दोस्थानकी उन्नति करनेमें यथासाध्य परिश्रम किया और विलक्षण दक्षताके साथ ढाई वर्ष तक उसका सम्पादन किया। यद्यपि मालवीयजीने हिन्दीका कोई विशेष ग्रथ नहीं लिखा है परन्तु हिन्दोस्थानकी पुरानी फाइलें देखनेसे ज्ञात होता है कि ये मातृभाषा हिन्दीके कैसे

अच्छे लेखक हैं। इनकी ओजस्विनी और सरल लेख-प्रणाली पाठकोंके चित्तपर पूरा प्रभाव उत्पन्न करनेवाली है।

ढाई वर्ष तक हिन्दोस्थानका सम्पादन करनेके बाद आपकी इच्छा कानून अध्ययन करनेकी हुई, यह जान कर राजा रामपाल सिंहने इन्हें यहांसे प्रसन्नतापूर्वक रुखसत दी और इनके कानूनके अध्ययनमें यथासाध्य सहायता दी। तीन वर्ष कानून पढ़कर सन् १८९१ में हाईकोर्टकी परीक्षा पास की और अगले वर्ष एल० एल० बी० की उपाधि भी पायी। तबसे आप इलाहाबाद हाईकोर्टमें वकालत करते आये और अपने देश तथा देश भाइयोंके हितकी चिन्तनामें तत्पर रहते हुए अपने मनुष्य-जीवनको सफल कर रहे हैं। मालवीयजी हिन्दी भाषाके ग्रंथकार नहीं पर हिन्दीके अच्छे लेखक और सच्चे शुभचिन्तक हैं। आप काशी नागरी प्रचारिणी सभाके एक सम्मानित सदस्य हैं। सर एंटनी मेकडानलके समयमें जब कि संयुक्त प्रदेशकी प्रजाकी ओरसे प्रांतीय गवर्नमेंटकी सेवामें अदालतोंमें नागरी लिपिका प्रचार करनेकी प्रार्थना की गयी थी उस समय आपने इस कार्यमें विशेष उद्योग किया था, वरन् यह कहना चाहिये कि इस कार्यमें सफलता केवल आप हीके परिश्रमका फल है। लाट साहबकी सेवामें नागरी मेमोरियलको योजना, नागरीके सब्बे गुणोंके कीर्त्तनमें पुस्तक लिखना और स्वार्थशून्य हो जिनके हजारों रुपये खर्चकर इसी कार्यमें लग जाना पण्डितजीके लिये एक बड़े गौरवकी बात है।

मालवीयजी एक सादे मिजाज और सादी रहन सहनके व्यक्ति हैं और बड़े मिलनसार और सच्चरित्र पुरुष हैं। आप इस प्रांतके प्रधान राजनैतिक पुरुषोंमेंसे हैं और अपना बहुत कुछ समय देश-सेवामें लगाते हैं। आप सनातन हिन्दू धर्मको हृदयसे मानते और उसकी उन्नतिमें तन मनसे दत्तचित्त रहते हैं। आपने प्रयागमें एक सनातन धर्म सभा स्थापित की है जिसका प्रतिवर्ष माघ

मेलेके अवसरपर त्रिवेणीके तटपर बृहदधिवेशन होता है। परन्तु इसके साथ ही आप सामाजिक कुरीतियोंको दूर करनेके भी पूरे पक्षपाती हैं। आपके उद्योगसे प्रयागमें एक बडा सुन्दर हिन्दू 'बोर्डिंग हाउस बना है। आपके ही भगीरथ प्रयत्नसे काशीमें हिन्दू 'विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है। इस समय आप काशीमें हिन्दू विश्वविद्यालयके चलानेमें प्राणप्रणसे लगे हुए हैं। बहुत कालतक आप लाट साहिबकी कौंसिलके सभ्य रहे और देशवासियोंके पक्ष समर्थनमें सदा दत्तचित्त रहे।

—श्यामसुन्दर दास

२१ विज्ञान

(१) करणों और उपकरणोंका विकास

जिन हथियारों और औजारोंके सहारे हम भूलोकका राज कर रहे हैं, जो हमारी सभ्यताके रक्षक हैं और ज्ञानकी मूर्त्तिके निर्माता हैं, उन्हें ही दार्शनिक करण व इन्द्रियां कहते हैं। नाडियोंके केन्द्ररूपी सिंहासनपर बैठा शरीरका राजा समस्त मानव ब्रह्माण्डका शासन इन्हींके बलपर करता है। कुछ इन्द्रियां समाचार पहुंचाती हैं, कुछ उसके हुक्म बजा लाती हैं। पहली ज्ञानेन्द्रियां और दूसरी कर्मेन्द्रियां कहलाती हैं। हमारे देशके भारी भारी विद्वान, ऋषिमुनि, योगीश्वर, दार्शनिक शरीर और जीवात्माके सम्बन्धमें सैद्धान्तिक और व्यावहारिक अनुशीलन अनादि कालसे करते आये हैं और उन्होंने इस सम्बन्धमें बडे महत्वके निष्कर्ष निकाले हैं जिनसे अबतक दार्शनिक संसार चकित है। योगसिद्धोंने इन्द्रियोंका विकास करते करते चक्रोंका वेध करके अपनेको शक्तिके बहुत ऊंचे दरजेपर पहुंचाया और अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धियोंको अपने वशीभूत बनाया। इतनेपर भी

निष्कर्षसे पीछा न छूटा कि इन्द्रियां परिच्छिन्न हैं, हमारी शक्तियां परिमित हैं, हमारे औजार सभी कामोंके लिये मौजूं नहीं हैं, हमारी ताकत महदूद है। हम मन, बुद्धि, चित्तको कितना ही माजें, इन औजारोंपर कितनाही सैकल करें, मक्खी कितनी ही बढ़े भैंसा नहीं हो सकती, लगडी बुद्धि अन्धे मनके कन्धेपर सवार हो जिन हथियारोंके सहारे काम कर रही है वे खुद छोटे हैं, उनकी पहुँच दूरतक नहीं है।

इन्द्रियों या करणोंकी शक्ति थोडी ही है यह बात तो ससार भरके मनुष्य मानते हैं, परन्तु सभी लोग मुद्दतसे इस चिन्तामें हैं कि जैसे बने हम अपनी शक्तियां बढावें, हमारी जानकारीका क्षेत्र बढ़ जाय। जहां भारतीय महापुरुषोंने अन्तरग विकासकी ओर ध्यान दिया, वहां पाश्चात्य देशियोंने बहिरग विकासपर ही अभ्यास आरम्भ किया। यद्यपि पाश्चात्योंकी विद्याकी नींव भारतीय अन्तरग विकासपर ही रखी गयी है तथापि पिछले दो सौ वरसोंके भीतर पाश्चात्योंने अपने विकासकी दिशा बदल दी और दिशा बदलनेमें बडी बुद्धिमत्तासे काम लिया। भारतीयोंने अन्तरग विकासको ऐसी हदतक पहुचाया था कि पाश्चात्योंको इस मार्गमें भारतीयोंसे आगे बढ जाना बहुत कालतक असभव था। इधर बहिरग विकासकी ओर हमारे देशके विद्वज्जनोंने बहुत कम ध्यान दिया। प्राचीन कालमें ऐसे कुछ लोग हुए भी जो इस ओर प्रवृत्त हुए पर उनकी सख्या कम थी और उनकी रीति लोकरुचिके अनुकूल न थी। मय, दानव, विश्वकर्मा विरोचन, तक्षक, आदि शिल्पकला, भौतिक विज्ञान तथा रसायनके जाननेवाले हुए परन्तु इनका सम्प्रदाय चल न पाया। वह युग ही बहिरग विकासका न था, यह कहना भी अत्युक्तिवाद न होगा। उस युगमें तो मौखिक और शाब्दिक शास्त्रार्थ करके और कल्पनाको भरपूर दौडा कर कोई सिद्धान्त निश्चय कर लेना आम रिवाज था। किसी मानी हुई

परीक्षाकी कसौटीपर परखना या किसीके कथनकी जाच करना हमारे यहा अब भी बहुतोंकी निगाहमें बेअदबी है, पूर्वजोंमें अश्रद्धा मानी जाती है। यद्यपि चरक और सुश्रुतमें भी मानव कंकालकी हड्डियोंकी सख्यामें अन्तर है तथापि आज मध्य शारीरके अनुसार जब हम उनकी बतायी हुई सख्यासे भिन्न सख्या बताते हैं तो श्रद्धावानोंके कान खडे हो जाते हैं, पोरवोंको १४ हड्डिया देखते हुए भी प्राचीन लेखानुसार १५ मान लेनाही उचित है।

बहिरग परीक्षाका अभाव और अन्धविश्वास दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एकका प्रभाव दूसरेपर सदासे पडता आया है। अन्धविश्वासके विरोधियोंपर हमारे देशमें फिर भी केवल घृणा वा द्वेपका भाव प्रकट करके सन्तुष्ट हो रहनेकी प्रथा चली आयी है, परन्तु युरोपमें तो माध्यमिक कालमें जब पोपोंका अधिकार वहाकी जनताके आचार और विचार दोनोंपर अनियन्त्रित था, अन्धविश्वासका विरोधी जीते जी नरककी यातना भोगता था। असख्य ब्रह्माण्डोंका अस्तित्व सिद्ध करनेवाला ब्रूनो खभेमें बाधकर जला दिया गया। गलीलियो देशसे निकाल दिया गया। कापर्निकस, राजर बेकन, पारासेल्सस आदि सभीकी दुर्दशा हुई। परन्तु ये सभी अपनी बातोंके पक्के और इरादोंके पोढे थे। डराये गये, धमकाये गये, घर लूटा गया, देशस निकाले गये, भूखों मरे, दुर्दशाए हुई, मुसीबतें सहीं, यातनाए भोगीं पर सचाईसे मुह न मोडा, परख और जॉच पडतालका मार्ग न छोडा और अपनी हड्डिया देकर वह विज्ञान वज्र बनाया जिससे अन्तत, अन्धविश्वास रूपी वृत्रासुरका सहार निश्चय हो गया।

अपनी जानपर खेल जानेवाले सत्यके भक्तोंने जो बेल लगायी थी उसीके सहारे पीछेके वैज्ञानिकोंने खोजका मार्ग प्रशस्त कर ...। एक एक सिद्धान्त सौ सौ बार परीक्षाकी कसौटीपर

फसा जा चुका है फिर भी वह क्रिया जारी है और लाभके साथ जारी है। उसका बडा भारी फल यह हुआ कि हमारी इन्द्रियोंकी पहुंच दूरतक हो गयी। हमारी ज्ञानशक्तिकी सीमाका बहुत बडा विस्तार हो गया।

एक शताब्दी पहले निर्मल आकाशके तारे और चन्द्रमा हमारी आखोंको केवल आनन्द देनेके लिये थे। हमारी कविताकी सामग्री थे, उत्प्रेक्षाके सामान थे। विश्वमें हमारा पार्थिव जगत् अकेला ससार था। सूर्यसे बडा तेजवान् और कुछ न था, सो वह भी हमारे ही कल्याणकी सामग्री था। धीरे धीरे ज्योतिर्विज्ञानने विश्वकी रगभूमिसे परदा हटा लिया। दूरबीनने दिखाया कि हमारा जगत् अकेला नहीं है किन्तु वह सौर ब्रह्माण्डके अनेक ग्रहोंमेंसे एक ग्रह है। सूर्य भी हमसे कितना ही बडा हो पर ब्रह्माण्डोंकी बिरादरीमें वह एक छोटासा मेम्बर है और स्वय हमें साथ लिये किसी बडे मेम्बरकी परिक्रमा कर रहा है। ये नन्हें नन्हें जगमगाते तारे सूर्योंके सूर्य हैं, बाज इनमेंसे सूर्यसे हजार गुने बडे और तेजवान् हैं, वे अपने अपने ब्रह्माण्डोंके नायक हैं। दूरबीनने हमारी आंखें खोल दी, कि देखा जिस विराट्के वर्णनमें कवियोंने कहा है कि "रोम रोम प्रति राजहीं कोटि कोटि ब्रह्माण्ड" उसके एक रोमके ही दर्शन कैसे अद्भुत महत्त्व प्रदर्शक हैं। हम इस अचम्भेमें ही थे, कि ये सब ब्रह्माण्ड किस पदार्थके बने होंगे। सोचते थे ये सब सोने या हीरेके बने हों, मोतियोंसे सजाये गये हों, लगभग साठ बरस होते हैं, वैज्ञानिकोंने रश्मि-विश्लेषक यन्त्र लगा कर यह दिखा दिया कि चाहे ब्रह्माण्ड कितने ही बडे हों, कैसे ही दूर हों, उनकी खमीरमें वही मसाले पडे हुए हैं जो हमारी पृथ्वी, और सूर्यकी रचनाके कारण हैं। युगों पहले हमारे ऋषियोंने जो बातें अपने दिव्यज्ञानसे कही हैं वे यन्त्रोंके सहारे हमें प्रत्यक्ष हो रही हैं। *

* एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति इत्यादि

परीक्षाकी कसौटीपर परखना या किसीके कथनकी जाच करना हमारे यहां अब भी बहुतोंकी निगाहमें बेअदबी है, पूर्वजोंमें अश्रद्धा मानी जाती है। यद्यपि चरक और सुश्रुतमें भी मानव कंकालकी हड्डियोंकी संख्यामें अन्तर है तथापि आज नव्य शारीरके अनुसार जब हम उनकी बतायी हुई संख्यासे भिन्न संख्या बताते हैं तो श्रद्धावानोंके कान खड़े हो जाते हैं, पोरवोंको १४ हड्डिया देखते हुए भी प्राचीन लेखानुसार १५ मान लेनाही उचित है।

बहिरंग परीक्षाका अभाव और अन्धविश्वास दोनों अन्योन्याश्रित हैं, एकका प्रभाव दूसरेपर सदासे पड़ता आया है। अन्धविश्वासके विरोधियोंपर हमारे देशमें फिर भी केवल घृणा वा द्वेषका भाव प्रकट करके सन्तुष्ट हो रहनेकी प्रथा चली आयी है, परन्तु युरोपमें तो माध्यमिक कालमें जब पोपोंका अधिकार वहाकी जनताके आचार और विचार दोनोंपर अनियन्त्रित था, अन्धविश्वासका विरोधी जीते जी नरककी यातना भोगता था। असंख्य ब्रह्माण्डोंका अस्तित्व सिद्ध करनेवाला ब्रूनो खंभेमें बांधकर जला दिया गया। गलीलियो देशसे निकाल दिया गया। कापर्निकस, राजर बेकन, पारासेल्सस आदि सभीकी दुर्दशा हुई। परन्तु ये सभी अपनी बातोंके पक्के और इरादोंके पोढ़े थे। डराये गये, धमकाये गये, घर लूटा गया, देशसे निकाले गये, भूखों मरे, दुर्दशाएं हुई, मुसीबतें सहीं, यातनाएं भोगी पर सचाईसे मुंह न मोड़ा, परख और जाँच पड़तालका मार्ग न छोड़ा और अपनी हड्डिया देकर वह विज्ञान वज्र बनाया जिससे अन्ततः अन्धविश्वास रूपी वृत्रासुरका संहार निश्चय हो गया।

अपनी जानपर खेल जानेवाले सत्यके भक्तोंने जो बेल लगायी थी उसीके सहारे पीछेके वैज्ञानिकोंने खोजका मार्ग प्रशस्त कर दिया। एक एक सिद्धान्त सौ सौ बार परीक्षाकी कसौटीपर

ताज है। प्रकाश विना देखना असम्भव है। कई विषयोंसे यह मोहताजी भी दूर हो गयी है। हम जो सात रङ्ग किरणोंमें देखते हैं वह तो हमारी परिच्छिन्न सृष्टिकी दृष्टि है रंग तो वस्तुत असंख्य हैं। इतना ही नहीं, जिस दशामें हम समझते हैं कि घोर अन्धकार है उसी दशामें अदृश्य प्रकाशकी किरणें छिटक रही हैं, उसकी ज्योति बिखर रही है, और हम लाचार बैठे हैं, अन्धोंको तो आखें नहीं, परन्तु हम बडी बडी आखोंवाले भी अन्धे हीसे हैं। यन्त्रके सहारे यह "अलख ज्योति" जगमगाती है। इस ज्योतिमें फोटो ली गयी तो पहली बार देखा गया कि मनुष्यकी छाया नहीं पडी। सिद्ध हुआ कि यदि दमयन्तीकी कथामें प्रसिद्ध देवताओंकी छाया साधारण ज्योतिमें नहीं पडती, यदि ऐसा शरीर सम्भव है जिसकी छाया न पडे तो ऐसी ज्योति भी अवश्य है जिसमें छाया न पडे। इन्हीं अदृश्य ज्योतियोंमेंसे एक एक्स (अज्ञात) किरणोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, जिसके प्रकाशसे बक्सके भीतर रुपये, शरीरके भीतर धंसी सीसेकी गोलीतक दिखायी देती है। आकाशके असंख्य तारे जो आपसे नहीं दिखते फोटो द्वारा प्रत्यक्ष हो जाते हैं। फोटोके सहारे हम उन्हें उङ्गलियोंसे गिन सकते हैं। परमाणुओंके प्रतिक्षण हजार हजार टुकडे हो रहे हैं। यन्त्रमें हम उन्हें देखते हैं पर गिन नहीं सकते। वैज्ञानिक फोटो लेकर उन्हें गिना भी देता है। हमें यह अनुमान करा देता है कि यदि हम परमाणुओंकी एक बडे कमरेसे तुलना करें तो उसके खण्ड विद्युत्कण त्रसरेणुसे अधिक बडे न होंगे। हमारी आखोंकी पहुँच अब कहातक हो गयी है! यंत्रोंके सहा देखनेमें उसे इतनी सुविधाएं हो गयी हैं कि हम बिना अत्युक्तिके कह सकते हैं कि पहले हम आखोंके लिये एक अन्धेरी कोठरीमें बन्द दीपक बाले बैठे थे, अब हम सूर्यके प्रकाशमें लम्बे चौडे मैदानमें विचर रहे हैं।

पाश्चात्य दार्शनिक कहते हैं कि आखकी

हमारी आँखोंकी शक्ति "महतो महीयान्" को देखनेमें समर्थ हो रही है। साथ ही "अणोरणीयान्" भी उसके अनुभवकी सामग्री हो रहा है। अणुवीक्षण यंत्रसे उसने सूक्ष्म जीवनके सूक्ष्म रहस्योंको देखा, अमीबाके दर्शन किये जो ऐसे सूक्ष्म जीव हैं कि सूईके नाकेभर स्थानमें हजारोंकी संख्यामें समा सकते हैं,जो साथ ही अमर हैं और अमैथुन सृष्टि करते हैं, एकसे दो, दोसे चार, होते रहते हैं। उसने अणुओंके दर्शन किये और परमाणुओंके टुकडे होते देखे। वह शक्ति देखी जो कमानीकी तरह परमाणुमें बनी रहती है परन्तु जो एकाएकी फूट पडे तो एक उसके परमाणुके विस्फोटनसे भरे पूरे लन्दन जैसे तीन नगर क्षणमात्रमें राख हो सकते हैं। अर्जुनने भगवानका विराट रूप देखा और घबरा गया। उसने बहुत ही प्रचण्ड रूप देखा होगा। आज वैज्ञानिक भी उसी रूपका अंश विज्ञान भगवानकी कृपासे देख देख घबराता है, परन्तु वह यह नहीं कहता कि और न दिखाइये, क्योंकि उसे कोई युद्ध नहीं जीतना है, वह जितना ही इस रूपको देखता है उतना ही उसके अतृप्त नयन घबराते हैं कि यह दृश्य सपनेकी तरह कहीं हमारी आँखोंसे जल्दी ओझल न हो जाय, और हम उसके दर्शनोंको तरसते रह जायँ। उसने जैसे दूरबीनसे भारी भारी ब्रह्माण्डोंकी महाप्रलय और महासृष्टि अपनी वेधशालामें बैठे बैठे देखी, जैसे उसने कई सौ बरस पहलेकी घटनाओंको आज अपनी आँखोंसे देखा, उसी तरह उसने परमाणु ब्रह्माण्डोंकी महाप्रलय और महासृष्टि भी देखी, और सैकडों वर्ष पीछे भविष्यमें होनेवाली घटनाओंके भी दर्शन कर लिये। इन यन्त्रोंके सहारे उसने देशके अपरिमित विस्तारको नापा और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालकी घटनाएं देखीं। एक तरह वह त्रिकालदर्शी हो गया और "अणो-रणीयान्, महतो महीयान्" तक उसने अपनी दृष्टि पहुँचायी।

इसपर कहा जा सकता है कि फिर भी आँखें ज्योतिकी मोह-

सकते हैं। भारका अनुमान यद्यपि त्वचाका विषय नहीं तथापि त्वचाके साथ ही इसपर भी विचार करनेमें सुभीता है। मोम और लाखकी आपेक्षिक नर्मी और कड़ाई हमारे स्पर्शका विषय है, पर यह जानना कि इस्पात, काच, और वज्र तीनोंमें किस प्रकारकी कड़ाई है केवल त्वचासे सम्भव नहीं। आबका भी यही हाल है, त्वचा न तो हिमको सह सकती है और न खौलते जलको। हिम अधिक ठढा है या द्रव की हुई साधारण हवा? खौलता जल अधिक गर्म है या खौलता गन्धकका तेजाब? इन बातोंको जाननेके लिये यन्त्रोंका सहारा लेना पड़ता है। तापमापक ऐसा ही यन्त्र है। परन्तु तापमापकोंकी भी हद है। ऐसे यन्त्र बन गये हैं कि मील भर दूर रखे हुए दीपककी आच और नौ करोड़ मील दूर सूर्यको प्रचण्ड ताप और अरबों योजन दूर तारोंकी गरमी सहज ही नापी जा सकती है। केवल नापकर ही हम सन्तुष्ट हो रहे हों सो बात नहीं है। विज्ञानने बिजलीके सहारे सूर्यके लगभग प्रचण्ड ताप भी उत्पन्न किया और इतनी ठण्ढक भी पैदा की कि जिसके आगे प्रकृतिदेवीके भी पैर नहीं बढ़ते।

हम साधारण मात्राओंकी समानता दरसानेके लिये व्यवहारमें तराजूसे काम लेते आये हैं। परन्तु वैज्ञानिक जिसने सचमुच बालकी खाल खींचनेमें भी अपना कमाल दिखाया है, बालसे भी कहीं बारीक वस्तुओंको तौलकर भी सन्तुष्ट नहीं हुआ। उसने एक ओरसे तो परमाणुओं और विद्युत्कणोंको तौलनेके उपाय निकाले और दूसरी ओरसे पृथ्वी आदि ग्रह और सूर्य्य आदि तारोंको भी विज्ञानके पलड़ेमें रखकर तौल डाला। आकर्षणशक्ति जिसके सत्यका उद्घाटन भारतीय आर्य्यभटने डेढ़ हजार वर्ष पहले किया था और जिसके तथ्यका पुनरुद्घाटन अगरेज निउटनने तीन सौ वर्ष पहले किया था, आजतक ऐसा रहस्य है कि उसका पता लगानेमें सर जे० ' उन्होंने अबतक यही निष्कर्ष निकाला " है।

इतनी अधिक है कि उसको समस्त इन्द्रियोंका नव-दशमाश समझना चाहिये। फिर भी कानोंकी शक्ति यन्त्रोंद्वारा इतनी बढ गयी है कि कम्पनमापक यन्त्र द्वारा न केवल होनहार भूकम्पका ही पता लगता है, वरन् सौ वर्ष पहलेके भूकम्पका भी स्फुरण आज कर्णगोचर हो सकता है, हजारों मील दूर समुद्रके तटपर तरङ्गके हिलोरोंसे भूमि कापती है और यन्त्रके सहारे मनुष्य उस कम्पनको कर्णगोचर कर लेता है। हजारों कोसोंपर बैठे ही मनुष्य टेलीफोनके सहारे परस्पर बातचीत कर लेते हैं, पाताल देशसे बिजलीकी टिकटिक हमारे कानोंको वहाके समाचार दमके दममें पहुँचा देती है। बीसों बरस पहले गाये हुए गीत ग्रामोफोनके सहारे हम आज भी बैठे सुन सकते हैं। इस रीतिसे अपने मृत मित्रों और प्रियजनोंके प्यारे शब्द भी बीसों बरस पीछे सुननेका उपाय हो सकता है। फोटोके द्वारा जैसे अपने प्रेमपात्रोंके रूप देख सकते हैं, वैसे ही ग्रामोफोन द्वारा शब्द भी सुन सकते हैं। हमारी श्रवणशक्ति परिच्छिन्न है। साधारणतया मनुष्यको एक सेकेण्डमें ३२ स्फुरणसे लेकर ४००० स्फुरण तक सुननेकी सामर्थ्य होती है। परन्तु हमारे चारों ओर इससे न्यूनाधिक स्फुरण भी होते रहते हैं और दूरके स्फुरण वहीं वायु और अन्य पदार्थोंमें विलीन हो जाते हैं। कहीं हमारे कान इन सब स्फुरणोंको सुन सकते तो जीना दूभर हो जाता, पर कभी कभी जरूरत हमें लाचार करती है, हम दूरके शब्द और उनके नीचे स्फुरण भी सुनना चाहते हैं। यहां यन्त्रोंकी सहायता काम आती है। आजकी उपेन्द्रिया ऐसी नहीं बनीं कि हम ग्रह, नक्षत्र और तारोंसे समाचार पा सकें, पर बेतारके समाचार और फोटो आदिके आविष्कारसे आशा होती है कि किसी दिन हम अन्य ग्रहोंसे भी नाता जोड़ेंगे और उनके समाचार कानोंसे सुनेंगे।

साधारणरीत्या हम त्वचासे ठंढा-गर्म और कड़ा-नर्म पहचान

मनुष्यके शरीरमें घ्राणकी शक्ति अत्यन्त कम है। तो भी उसने सुगन्ध और दुर्गन्धकी अच्छी विवेचना की है। अनेक उत्तम उत्तम सुगन्धोंका सेवन उसका व्यसन है। वैज्ञानिकने ऐसे ऐसे पदार्थोंका आविष्कार किया जिसका सुवास शीशीसे बाहर होते ही मुहल्लेके मुहल्ले तो क्या सम्पूर्ण नगरको आमोदित कर देता है। साथ ही क्लोरोफार्म, ईथर आदि ऐसी ओषधिया निकालीं जिनके सूंघनेसे मनुष्य अचेत हो जाता है और उसे डाक्टरके नश्तरकी पीड़ा नहीं होती।

कर्मेन्द्रियोंकी सहायताके लिये जितने यत्र बने और बनते जा रहे हैं उनकी तो गिनती ही नहीं हो सकती। पेट काम नहीं करता हो तो पचा पचाया अन्न खानेको मौजूद है। मुहमें किसी रोगके हो जानेसे भोजन पान असंभव होनेपर पेटके भीतर छिद्र करके नलिकाद्वारा भोजन पहुंचाया गया है, नकली दांत, बांह, हाथ, जांघे, पैर, सभी कुछ मिलते हैं और मनुष्य इनसे काम ले रहा है।

यह सच है कि मनुष्यके नन्हें नन्हें हाथ पांव बीसों हजार फुट ऊंचे पहाड़ोंपर और हजारों फ़ीट नीचे धरतीके गर्भमें जाकर काम करते रहे हैं, परन्तु इन्होंने इससे कहीं बढ़कर महत्वका काम किया है। जो काम किसी युगमें लाखों मजदूरोंने चींटीकी तरह मिलकर मिस्रदेशके स्तूपोंके लिये किया था उसी कामको सुभीतेसे करनेके लिये मनुष्यके हाथोंने ही ऐसे यंत्र बनाये हैं जो अकेले हजारोंका काम करते हैं। भारीसे भारी बोझको बने बनाये समूचे मकानतकको एक अष्टपद यंत्र अपने चङ्गुलमें पकड़कर उठा लेता है और नर्म-कड़ी सब तरहकी धरतीपर चार चार पांव बारी बारीसे रखकर बराबर चलता हुआ निर्दिष्ट स्थानको पहुंचा देता है और नियत स्थलपर उस घरको स्थापित कर देता है।

खेत जोतना, निराना, काटना और दबाना,

उसके ऋणाश वा धनाशका आधिक्य ही आकर्षणका कारण है
तोल और भार इसीपर निर्भर है। इसीके साथ एक और व
विलक्षण बात हालमें ही मालूम हुई है। जिस आकाशके तर
गोंका फल प्रकाश समझा जाता था उस आकाशको वैज्ञानि
भारहीन समझे बैठा था। इस रहस्यपर भी गत ग्रहणने रोश
डाली है और यह पता लगा है कि आकाश भी भारवान पदा
है, अर्थात् धरतीके आकर्षणका प्रभाव आकाशपर भी पड़ता
और सूर्यकी किरणें पृथ्वीके वायुमण्डलमें आते आते धरती
आकर्षणके कारण भी मुड़ जाती है। हिन्दुओंके पाचों तत्त्व इ
प्रकार भारवान पदार्थ सिद्ध हो गये *।

जिह्वाने छ रसोंका आस्वादन ही नि श्रेयस् समझा था
पीछे इसे ही द्रव्यगुणोंकी कसौटी बनानी पड़ी। चिकित्साक
नींव इन छ रसोंपर ही दृढ़ की गयी। परन्तु अब इतने दरजे
मिठास पैदा की गयी है जो शक्करसे पांच सौ गुनी अधिक मीठ
है। खटाई ऐसी ऐसी निकली है कि त्वचा भस्म हो जाती है
कड़वापन ऐसा कि उसके आगे तीव्र विष भी पानी भरें—जीभ
पैंठनेके पहले चखनेवाला ही ऐंठ जाये। लवणकी तीव्रता
परले सिरेकी। इनके परखनेके लिये रसायनने अपने उपाय अल
ही निकाले,, और अब चिकित्सकको यह जानना हो कि अमु
पदार्थका शरीरपर क्या प्रभाव पड़ता है तो विज्ञानाचार्य स
जगदीशचन्द्र बसुके गवेषणालयमें जाकर उन अद्भुत यन्त्रोंसे का
ले जो मनुष्य और पशुओंसे नहीं, वरन् वनस्पतियोंसे लिख
लेते हैं कि अमुक पदार्थका क्या और कैसा प्रभाव है।

* जयपुरके प्रसिद्ध प्राचीन ज्योतिषी जगन्नाथ सम्राट्ने अरबीसे अनुवादित अ
संस्कृत रेखागणितमें सीधी रेखाका लक्षण प्रकाश या दृष्टिके अधीन रखा है। य
अबतक सर्ववादिसम्मत वैज्ञानिक रीति भी समझी गयी है। परन्तु अब प्रकाश
रेखाकी ऋजुता नष्ट हो गयी, अब सीधी रेखाका समझना कोरी कल्पनाकी बात
गयी, इन्द्रियका विषय नहीं रहा। —रा० गौ०

* मेहर सर्गरत काफ्ताब कुजास्त।
आबे हरसू रवा कि आब कुजास्त।
—रा० गी०

२२ दियासलाई

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मतसे मनुष्यकी सभ्यताका मुख्य चिह्न और सच पूछिये तो मनुष्यताकी सच्ची पहचान आग बनाना और उससे काम लेना है। कुछ वैज्ञानिकोंके मतसे मनुष्यकी सृष्टिसे बहुत दिनों पीछे आग बनानेकी क्रिया मालूम हुई। यह कहना बहुत कठिन है, कि इस घटनाको हुए कितने युग बीते, अथवा संसारकी सृष्टिके कितने दिनों पीछे अग्निका आविर्भाव हुआ। हमारा तो विश्वास है, कि जबसे मनुष्य प्राणी हुआ आग बनानेकी रीति भी तबसे ही जारी है। संसारमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है, जिसमें पहला शब्द "अग्नि" इस बातका गवाह है, कि आर्य्यजाति आदिसे ही सिवाय सन्यास आश्रमके कभी "निरग्नि" नहीं रही है। आग बनानेकी सबसे पुरानी रीति दो लकडियोंको रगडना है। यज्ञकर्ममें इसी रीतिका अनुसरण किया जाता था। कभी एक धनुषके द्वारा भोथल लकडीको दूसरी लकडीके गढेमें डालकर रगडते थे, जैसा कि न्यूजीलैण्ड और दक्खिन सागरके द्वीपोंमें अबतक करते हैं और कभी हथलियोंके बीचमें रख कर दो लकडोको घुमाते थे। यज्ञादि पवित्र कर्मों में अब भी यही रीति बरती जाती है। परन्तु अरिष्टोफनीज और प्लुटार्कके लेखोंसे यह पता चलता है कि

* दो० भानु विकल हेरत फिरत, कित किरननको मूल।
भावत अपनी खोजमें, आप आपको भूल॥
आप—जल, आत्मा।

नाज पीसना, पकाना सभी काम आज यंत्र कर रहे हैं। रूईका ओटना, धुनना, कातना बुनना, तहाना, गाठोंमें कसना, एक स्थानसे दूसरे स्थानको पहुँचाना, काटना, सीना सभी कुछ यंत्र कर रहे हैं। रंगाई, धुलाई भी कल विना नहीं होती। ये सब तो बड़े साधारण काम हैं, परन्तु गाना बजाना, यहांतक कि जोड़ बाकी गुणा भाग आदि लेखा भी आजकल यंत्र द्वारा होता है। यंत्रोंका बड़े वेगसे अभ्युदय देखकर बीस वर्ष पहले लोग कहा करते थे कि अब सब हो चुका, आदमीके लिये उड़नेको बस परकी कसर रह गयी। अब देखते हैं कि उसने पर भी खोंस लिये और पनडुब्बीमें बैठकर यात्रा भी करने लगा। आकाशमें पक्षीकी तरह उड़ते फिरना और जलके भीतर ही भीतर मछलियोंकी तरह तैरते रहना भी उसने यंत्रोंके सहारे एक साधारण सी बात कर ली।

जल थल और आकाश तीनोंपर विज्ञानके सैनिकोंने विजय पायी। बिजलीकी नकेलमें रस्सी बांधकर उसे जिधर चाहा उधर दौड़ाया। झाड़ू दिलाने, बासन मजवाने, खाना पकवाने, चौकी दारी कराने और हलकारोंसे भी अधिक दौड़ानेसे लेकर कल-कारखानोंमें जितने मजूरीके काम हैं वे सभी आज बिजलीके घोड़ोंसे लिये जा रहे हैं। बिजलीने मानों मनुष्यकी चाकरी लिखायी है। वह सारे काम करनेको हाथ बांधे तैयार है। वह उसके ज्ञानकी सीमा बढ़ानेमें बड़ी मददगार है। मनुष्यकी दशा आज उस लगड़े, अन्धे, अपाहिज, बौने भिखमगेकी सी है जो गतकी लकड़ी छुलाते ही बड़ा बलवान, असीम शक्तिमान और धन पौरुष-सम्पन्न दानवोंका राजाधिराज बन गया जिसकी आज्ञाके अधीन पृथ्वी, जल, वायु, तेज और आकाश पांचों तत्त्व थे। परन्तु आत्मरहस्य इस बहिरंग परीक्षामें कहां?

* मेहर सर्गश्त काफ़्तान कुजास्त।
आवे हरस् रवा कि आन कुजास्त।

—रा० गौ०

२२ दियासलाई

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके मतसे मनुष्यकी सभ्यताका मुख्य चिह्न और सच पूछिये तो मनुष्यताकी सच्ची पहचान आग बनाना और उससे काम लेना है। कुछ वैज्ञानिकोंके मतसे मनुष्यकी सृष्टिसे बहुत दिनों पीछे आग बनानेकी क्रिया मालूम हुई। यह कहना बहुत कठिन है, कि इस घटनाको हुए कितने युग बीते, अथवा संसारकी सृष्टिके कितने दिनों पीछे अग्निका आविर्भाव हुआ। हमारा तो विश्वास है, कि जबसे मनुष्य प्राणी हुआ आग बनानेकी रीति भी तबसे ही जारी है। संसारमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद है, जिसमें पहला शब्द "अग्नि" इस बातका गवाह है, कि आर्य्यजाति आदिसे ही सिवाय सन्यास आश्रमके कभी "निरग्नि" नहीं रही है। आग बनानेकी सबसे पुरानी रीति दो लकडियोंको रगडना है। यज्ञकर्ममें इसी रीतिका अनुसरण किया जाता था। कभी एक धनुषके द्वारा मोठल लकडीको दूसरी लकडीके गढेमें डालकर रगडते थे, जैसा कि न्यूज़ीलैण्ड और दक्षिण सागरके द्वीपोंमें अबतक करते हैं और कभी हथलियोंके बीचमें रख कर ही लकडीको घुमाते थे। यज्ञादि पवित्र कर्म्मों में अब भी यही रीति बरती जाती है। परन्तु अरिस्टोफनीज और प्लुटार्कके लेखोंसे यह पता चलता है कि

---

* दो० भानु विकल फेरत फिरत, किस किरननको मूल।
धावत अपनी खोजमें, आप आपको भूल॥
आप—जल, आत्मा।

यवन (ग्रीक) लोग अपनी यज्ञाग्नि आतशी शीशा वा नतोदर दर्पणद्वारा सूर्य्यकी किरणोंको एकत्र करके प्रज्वलित करते थे। जिन लोगोंने पण्डित श्रीकृष्ण जोशीके भानुतापके द्वारा पूरियां पकते देखी होंगी, उनके लिये इसमें कोई भी अनोखापन नहीं हो सकता। सम्वत् १८८६ तक इंगलैण्ड तथा समस्त पाश्चात्य देशोंमें और प्राचीन कालसे तबतक भारतवर्षमें भी चकमाक पथरीपर लोहेसे चोट मारकर जलनेवाली रूईपर चिनगारियां झाड़ लेनेकी ही चाल थी। और समस्त सभ्य देशोंमें आग बनानेकी सहज और सर्वप्रिय रीति यही थी। नयी दियासलाई बननेके कुछ काल पहले पोटाश और शकर मिलाकर उसपर तीव्र गन्धकाम्ल टपकाकर भी आग जलाते थे। अब पाठकगण सोचें, कि दियासलाईके युगमें और चकमाक पथरीके युगमें कितना अन्तर पड़ गया है। सिगरेट पीनेवाला जेबसे दियासलाई निकाल एक सेकन्डमें मुँहसे धुएके बादलके बादल निकालने लगता है। पथरीवाला युगका मनुष्य अपनी जेबसे एक छोटीसी डिबियाके बदले काले लत्ते, पथरी और लोहेकी एक मेख लेकर चलता और सिगरेट जलानेमें एक सौ बीसगुना अधिक समय लगाता। और इस झंझटके कारण शायद सिगरेटका प्रचार कम होता। लखनऊ स्टेशनपर एक पैसेमें आजकल फर्शी, चिलम, तम्बाकू, टिकिया दियासलाई सब कुछ मिल जाता है। परन्तु उस जमानेमें एक पैसेमें केवल जलानेका सामान नहीं मिल सकता था। यदि आपके पास सामान न हुआ तो आपको अग्निकी भिक्षा मांगनी ही पड़ती है। आजकल दियासलाई सस्ती होनेसे उसके महत्वपर हमलोगोंका ध्यान बहुत कम जाता है। दियासलाईका प्रचार हुए यद्यपि अभी पूरे पचहत्तर बरस भी नहीं हुए हैं तथापि "दियासलाई" शब्द बहुत पुराना है। पथरीके जमानेमें भी दियासलाई निकली थी। सनईके छोटे छोटे टुकड़े काट कर उसका सिरा गले हुए गन्धकमें डुबो देते

थे, और एक पैसेमें ढेरके ढेर बेचते थे। चकमाकसे चिनगारिया झाडकार कुछ रूई जलायी गयी और उसमें यह दियासलाई लगायी और दिया जलाया। कई प्रान्तोंमें दियासलाई बेचनेका कामभगी करते थे। इसी लिये पुराने लोग दियासलाईको अस्पृश्य और अपवित्र समझा करते थे, और रसोई और पूजाके स्थानोंमें नही ले जाते थे। परन्तु ऐसा युगान्तर उपस्थित हो गया है कि यह अस्थिपुत्र फारफोरसको शिरोधार्य किये हुए "परमापुनीता" दीपशलाका रसोईमें, देवमन्दिरोंमें गौरवका स्थान पाती है!

जब सस्ते स्फुरके मिलनेकी समस्या पूरी हो गयी दिया-सलाई बनानेमें उसका प्रयोग करना कोई बडी बात न थी। सवत् १८६० में पहले पहल स्फुरकी दियासलाई बनायी गयी। लकडीके पतले टुकडे पहले गले हुए पाराफीन नामक पार्थिव मोममें डुबाये गये। उसके बाद एक दूसरे बर्तनमें जलानेवाले मसालेमें उनका सिरा डुबोया गया।

यह मसाला क्या था। सिन्दूर, पोटाश, गोंद और स्फुरका बारीक मिश्रण। सिन्दूरकी जगह सीसनत्रेत भी डालते थे, और देखनेमें सुन्दर बनानेके लिये उसमें रग भी दिया करते थे। इसके बाद दियासलाइया सूखनेको रख दी जाती थीं। सूखनेपर इन्हें गिन गिनकर बक्सोंमें भर देते थे। यह सब काम थोडीसी दियासलाइयोंके लिये नहीं होता था। एक एक कारखानोंमेंसे नित्य साठ लाखसे लेकर एक करोडतक दियासलाइया निकलती थीं, दियासलाइयोंमें साधारण स्फुरके प्रयोगसे और भी हानिया होती थीं। अंधेरेमें चमकती थीं, गर्म जगहमें भकसे जल उठती थीं, हवासे नम हो जाती थीं और रखे रखे निकम्मी हो जाती थीं। अजान बच्चे लाल लाल सिरेसे आकर्षित होकर दियासला-इयोंको हाथमें लेकर चूसते थे और अकाल कवलित हो जाते थे।

साधारण पीले स्फुरका प्रयोग अब बहुतसे देशोंमें वर्जित हो गया है, और आजकल जो दियासलाई रगडसे जलनेवाली

बाजारमें विकती है उसके सिरेपर पीले स्फुरके स्थानपर लाल स्फुरत्रिगन्धिद् काममें आता है। भारतवर्षमें भी आईन द्वारा पीले स्फुरकी दियासलाइयोंका विकना बन्द है।

दियासलाईका कारखाना

दियासलाई अत्यन्त उपयोगी पदार्थ होनेपर भी ऐसी सस्ती चीज है कि एक डिबियाके मूल्यपर विचार करके यह आश्चर्य होता है कि ऐसे परिश्रमसे बनी हुई चीज ऐसी सस्ती कैसे विकती है। यह रहस्य दियासलाईके कारखानेका आदिसे अन्ततक दर्शन करनेसे खुल जाता है। भारतवर्षमें कई दियासलाईके कारखाने हैं। एकबार बरेलीका कारखाना देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

बरेलीका कारखाना कोई बहुत बडा कारखाना नहीं है। तो भी वहांपर सारा काम मशीनसे ही लेते हैं। इस कारखानेको देखनेसे दियासलाईके कारखानेका साधारण ज्ञान हो सकता है।

संसारमें सभ्य कहलानेवाले सभी देशोंमें दियासलाईके कारखाने हैं। इंगलिस्तानमें ब्रैंट एन्ड मेका कारखाना प्रसिद्ध है, पर आजकल बाजारमें जापानी दियासलाइयोंकी इतनी भरमार है कि नारवे स्वीडन आदि देशोंकी दियासलाइयां भी दिखायी नहीं पडती। बरेलीवाली दियासलाई भी जब कहीं नहीं दिखायी पडती तो विदेशी दियासलाइयोंकी क्या कथा है!

दियासलाईके कारखानेके प्राय दो विभाग होते हैं। एकमें डिबिया बनती है और दूसरेमें सलाई। इन दोनों वस्तुओंके लिये चीडकी लकडी सबसे अच्छी समझी जाती है। इसके बाद सालका नम्बर आता है। अमेरिकाके कालीफोर्निया देशमें चीडके बडे विशाल जंगल हैं। इन जंगलोंसे हजारों बडे बडे पेड, जिनपर कभी लकडहारेका कुल्हाडा नहीं पडा है कट कट कर एक ओरसे कारखानेमें दाखिल होते हैं और दूसरी ओरसे

नौ दश करोड दियासलाइयोंके रूपमें बदलकर निकल आते हैं। एक ओर जगलका अनुमान कीजिये और दूसरी ओर दियास लाइयोंके पहाडका। एक दिनकी बनी हुई दियासलाइयोंको एक कतारमें बिछाया जाय तो सात हजार मीलके लगभग जगह लेंगी। ब्रैंट ऐन्ड मेके जगलात कालीफोर्नियामें पचहत्तर हजार एकडसे ज्यादा हैं। यह केवल एक कम्पनीका हाल है। स्वीडन, जर्मनी, रूस, जापान, अमेरिका सभी जगह ऐसी बडी बडी कम्पनियां हैं। सोचनेकी बात है कि दियासलाइयोंकी बदौलत ससारमें कितने जगल कटते जा रहे हैं।

कागजके लिये भी इसी प्रकार जङ्गलोंका सत्यानाश हो रहा है। सभ्य देशोंके सामने इस समय एक विकट समस्या उपस्थित है कि जङ्गलोंका जितना शीघ्र नाश हो रहा है उतना शीघ्र उनका पुनरुज्जीवन नहीं हो सकता। ऐसी दशामें भविष्यमें कागज और दियासलाइयोंकी क्या दशा होगी? एडिसन साहब निकिलका बारीक कागज तैयार कर रहे हैं। परन्तु दियासलाईके लिये क्या होगा?

चीडके बडे बडे कुन्दे एक विशेष नापमें काटकर तैयार रखे जाते हैं। मनुष्यका काम इतना ही है कि एक एक कुन्दा मशीनमें लगाता जाय। एक बडे लम्बे चौडे कमरेमें सोलह मशीनोंका अनुमान कीजिये जो बिजली या भापके बलसे चल रही हैं। इनमेंसे पहलीने मनुष्यके हाथसे लकडीके कुन्देको पकड लिया, दो बेलनोंके बीचमें कुन्दा चला और बलपूर्वक तीक्ष्ण धारवाले छुरोंसे कटने लगा। यह छुरे इस तरहपर लगे हुए रहते हैं कि लकडीका कोई भाग व्यर्थ न जाय। एक मशीनमें प्राय अडतालीस छुरे रहते हैं और प्रत्येक छुरा ठीक आकार और रूपका टुकडा काटता है। लकडीके टुकडे कटते देर नहीं कि नीचेसे एक लोहेका थालसा उठता है। जो इन टुकडोंको लोहेके एक यन्त्रके छोटे छेदोंमें डाल देता है और ... काटों-

की तरह दियासलाईकी लकड़ियां निकल आती हैं। यह बन्द बराबर घूमता रहता है। इसका मार्ग सर्पाकार होता है। और इसकी लम्बाई सात सौ फुटके लगभग होती है। इसके एक पूरे चक्करमें एक घन्टेसे कम नहीं लगता। इसके वेगको ताव देकर घटाते बढ़ाते रहते हैं, जिसमें बक्सतक पहुँचते पहुँचते दियासलाइयां अच्छी तरह सूख जायँ। इसी बन्दके नीचे एक स्थानपर एक पात्र रखा रहता है, जिसमें मसालेकी पतली तह रहती है, बन्दमेंसे जो दियासलाइयोंका थोड़ासा भाग नीचे निकला रहता है इस पात्रमेंके मसालेमें डूबता जाता है और उसमें मसाला लगता जाता है। किसी किसी कारखानेमें मसाला लगानेके पहले पाराफीनमें डुबो लेते हैं। पुरानी चालकी गंधककी दियासलाइयोंमें, पहले गन्धकमें डुबोते थे, तदनन्तर मसालेमें। जब बन्द अन्तिम अवस्थाको पहुँचता है एक लोहेकी डाड दियासलाइयोंको काट देती है। और वह उन बक्सोंमें तुरन्त गिर जाती हैं जो पहलेसे रखे रहते हैं। बक्सोंके रखनेमें एक विशेषता होती है। वह बराबर हिलते रहते हैं जिसमें सलाइयां ठस बैठ जायँ। जब बक्स भर जाते हैं एक लोहेका हाथ उनको डिबियोंके भीतर दबा देता है और दरजनोंकी संख्यामें वह चर्खोंमें आगे बढ़ा दी जाती हैं जहां वह झटपट कागजमें लपेटी जाती हैं और मशीनके ही द्वारा पैकट चिपका दिया जाता है। अब ऐसे ऐसे बारह पैकट इकट्ठा करके झटपट एक बड़ा पैकेट बना लेते हैं जिन्हें हम अकसर बड़ी दूकानोंपर देखते हैं।

प्रत्येक चोटमें अड़तालीस छेद अड़तालीस दियासलाइयां काटते हैं और एक मिनटमें लगभग दो सौ चोट मारते हैं। इस हिसाबसे एक मिनटमें छानबे सौ दियासलाइयां या घन्टे भरमें पांच लाख छिहत्तर हजार दियासलाइयां कटती हैं। दस घन्टे रोज काम करते हुए इन सोलहों मशीनोंसे दिनभरमें नौ करोड़ लाख सलाइयां तैयार हुईं। प्रत्येक डिबियामें साठ सला-

इयोंके हिसावसे सवा लाख डिवियोंसे ऊपर संख्या हुई। यह एक कमरेमें एक दिनका काम हुआ। वडे कारखानोंमें ऐसे कई कमरे होते हैं।

दूसरे विभागमें जहा डिविया तैयार होती है, ऊपरका ढकना और भीतरका बक्स अलग अलग मशीनोंसे निकलता है। विशेप आकारसे कटे हुए लकडीके कुन्दे मशीनमें थमा दिये जाते हैं। मशीनमें पैनी धारका सीधा छुरा लगा रहता है। बराबर ज्यों ज्यों कुन्दा घूमता है यह छुरा एक बहुत पतला परन्तु लम्बा चौडा पत्तर काटता है। यह पत्तर मशीनमें ही कटता हुआ आगे बढता जाता है। मशीनके दूसरे भागमें मोडनेके चिह्न बन जाते हैं। यह भी आगे बढा और मशीन द्वारा लपेट दिया गया। और आगे बढनेपर यह छोटे छोटे चगेरोंमें उडता हुआ दूसरे भागमें पहुँचा जहा कागज लपेटा गया। इसके आगे उचित स्थानपर रगडनेके लिये मसाला लगाया गया और सुखाया गया। भीतरवाला बक्स भी इन्हीं रीतियोंसे तैयार होता है।

—रा० गौ०

२३ कांच

महाभारतमें लिखा है कि युधिष्ठिरके राजभवनमें ऐसे ऐसे स्वच्छ और बेरगके पत्थर लगाये गये थे जिनको देखकर यह पता नहीं लग सकता था कि पानीका भरा हुआ हौज पत्थरका ठोस चबूतरा है कि हौज, दीवार कहा खडी है और फाटक कहा है। दुर्योधनको इसी कारण भ्रम हो गया था। जहा उसने पानी समझकर कपडा बचाना चाहा था वहा देखता है कि पानीका नामतक नहीं है और जहा उसने ठोस चबूतरा समझा था वहा लबालब पानी भरा हुआ है, जहा उसने समझा था कि किवाड खुले हुए हैं कमरेके भीतर आनेमें किवाड खोलनेकी जरूरत नहीं,

वहां उसे ठोकर खानी पड़ी क्योंकि किवाड बन्द थे और जहां उसने समझा था कि किवाड़ बन्द हैं उन्हें खोलकर भीतर घुसना चाहिये वहा वह औंधे मुह गिर पडता है क्योंकि वहा न तो किवाड हैं और न दीवार। इससे सिद्ध होता है कि महाभारतके समय स्फटिक पत्थरको लोग अच्छी तरह जानते थे और उससे काम लेते थे। आजकल तो स्फटिकका दर्शन बहुत कम मिलता है। यदि स्फटिक अर्थात् पारदर्शक पत्थरके चश्मे न बनते होते तो साधारण मनुष्यको यह भी पता न चलता कि ऐसे पत्थर भी होते हैं जिनमें न कोई रंग हो न रूप और जिनके आरपार देखा जा सकता हो। हा, स्फटिककी जगह बनावटी चीज काममें आती है जिसे लोग शीशा या काच कहते हैं।

काचका चलन यहा हजारों बरससे है। एशियावालोंको काचकी जानकारी सबसे पहले हुई। अबभी मोटे दलवाले आईने-को लोग हलब्बी शीशा कहते हैं। हलब एशियाई रूमका एक नगर है जहा काचकी बहुत अच्छी अच्छी चीजें बनती थी। ६००० वर्ष पहले मिस्रमें एक मकान ६०० फुट ऊंचा बना था जिसकी ईंटोंपर काचकी कलई लगी थी। आजसे पौने चार हजार बरस पहलेके बने हुए बादशाह बेनीहसनके मकबरेमें काच फूकनेवालोंके चित्र बने हुए थे। ऐसे अनेक बरतन रंग बिरंगे काचके बने पाये गये हैं। पीछे काचका व्यापार सिकन्दरिया, टायर और सिदन नगरोंमें उठ गया जिससे वहाके व्यापारी मालामाल हो गये थे और बडे बडे महल बनवा सके थे। यहासे काच बनानेकी विद्या यूनान और रोममें पहुँची जहासे रोमनोंके द्वारा सारे युरोपमें फैली। अबतो पुरानी जगहोंका लोग नामतक भूल गये हैं। युरोपकी बनी हुई काचकी चीजोंसे यहा-के बजार ठसाठस भरे रहते हैं। स्त्रियोंके पहननेकी चूडिया तक जिन्हें वे सोहागका लक्षण समझती हैं युरोपसे आती हैं। यहाकी बनी हुई फीरोजाबाद वगैरहकी चूडिया तो वे आप उठाकर

इसमें मिलाये जाते हैं। सोडा पोटाशसे काच जल्दी पिघल जाता है और चीजें भी सहज ही ढाली जा सकती हैं पर इसमें दोष यह होता है कि नमीमें रखनेसे बहुत तेजीसे बिगडने लगता है। जिस कांचमें सैकडा पीछे १५ भाग खार होता है वह भी पायदार नहीं होता। अच्छे काचका खार भी पानी धीरे धीरे घुलाता रहता है जिससे कुछ दिनके बाद काचके बर्तनमें खुरदरापन आ जाता है। क्षार और क्षारका घोल काचमेंसे बालूके अंशको घुला लेता है। हा, तेजाब रखनेसे काचमें किसी प्रकारकी कमी नहीं होने पाती और इसकी रक्षा होती है।

यह बतलाया जा चुका है कि सोडा, पोटाश, बालू और चूना बडे बडे नादोंमें मिलाकर भट्ठेमें रखनेसे सब पिघल कर एक हो जाता है। इस पिघले काचको कई घंटेतक उबालते हैं जिससे कार्बोनिक एसिड गैस निकलती रहती है। जबतक इसके बुलबुले निकलते रहते हैं यह आंचमें ही रहता है। बीचमें लोहेके छडके सिरोंसे थोडा थोडा निकालकर देखते रहते हैं जब फूंकनेसे काच फूल उठता है और उसमें किसी प्रकारका छोटा बुल्ला नहीं उठता तब समझते हैं कि काच तैयार हो गया। यदि इसके पहले ही बरतन बनाये जाय तो इसमें कहीं कहीं हवाके बुलबुले रह जायंगे जिससे कहीं कहीं बरतनमें खाली रह जाता है। ऐसे बरतन निर्बल होते हैं। सांचेमें फूकनेके बाद बरतनको गरम जगहोंमें रखते हैं जहा कमसे कम २४ घंटेमें बरतन धीरे धीरे ठढा होता है। यदि जल्दीसे ठढा कर लिया जाय तो वह बहुत जल्द थोडी भी सरदी गरमीसे चटक जाता है।

काचमें गरमी बहुत कम फैलती है। इसीसे कांचकी मोटी मोटी बोतलें आगमें जरा देर भी रख दी जायं तो चटख जाती हैं क्योंकि जो भाग आगको छुए रहता है वह बहुत जल्द गरम होकर फैल जाता है परन्तु कांचके मोटा होनेसे दूसरी ओर वाला भाग जैसा का तैसा ही बना रहता है इसलिये कहीं तो

तनाव पडता है और कहीं नहीं पडता और काच एकदम चटख जाता है। प्रयोगशालाओंमें कांचके बरतन बहुधा पानी या अन्य द्रवके गरम करनेके काममें आते हैं इसलिये ऐसे बरतन बहुत पतले बनायें जाते हैं जिससे बाहर भीतर बहुत जल्द गरमी फैल जाती है। फिर भी कांचका बरतन खुली आंचमें रखा जाय तो जरूर टूट जाता है।

आजकल तो बालूको भी बहुत तेज आंचमें पिघला कर काचकेसे बरतन ढाल लेते हैं। ऐसे बरतन वैसे ही पारदर्शक होते हैं जैसे काचके, साथ ही साथ यह गुण और होता है कि बालूका बरतन चाहे जितनी आच देकर पानीमें एकदम छोड दिया जाय यह चटखता नहीं है। ऐसे बरतन अभी बहुत कम काममें लाये जाते हैं क्योंकि इनका दाम अभी बहुत होता है। आशा है कि कुछ दिनोंमें यह भी काचकी तरह काममें आने लग जायगा।

मामूली दावातें और मिट्टीका तेल जलानेकी ढिबरी आदिके कारखाने तो यहा कई जगह हैं। फीरोजाबादमें काचकी चूडी अब भी बनायी जाती है। इलाहाबादके पास नैनीमें एक कारखाना है जहा आजकलके ढंगके अनेक बरतन लालटेनकी चिमनी, बोतलें, शीशिया आदि बनायी जाती हैं।

—महावीर प्रसाद

२४ पद्य भाग

१

आँखका आँसू

आँखका आँसू ढलकता देखकर।
जी तड़प करके हमारा रह गया॥
क्या गया मोती किसीका है बिखर।
या हुआ पैदा रतन कोई नया॥१॥

ओसकी बूँदें कमलसे हैं कढ़ी।
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ॥
या अनूठी गोलिया चाँदी मढ़ी।
खेलती हैं खजनोंकी लडकिया॥२॥
या जिगर पर जो फफोला था पडा।
फूट करके वह अचानक बह गया॥
हाय! था अरमान जो इतना बडा।
आज वह कुछ बूँद बनकर रह गया॥३॥
पूछते हो तो कहो मैं क्या कहू।
यों किसीका है निरालापन गया॥
दर्दसे मेरे कलेजेका लहू।
देखता हूँ आज पानी बन गया॥४॥
प्यास थी इस आंखको जिसकी बनी।
वह नहीं इसको सका कोई पिला॥
प्यास जिससे हो गई है सौगुनी।
वाह! क्या अच्छा इसे पानी मिला॥५॥
ठीक करलो जाँच लो धोखा न हो।
वह समझते हैं मकर करना इसे॥
आँखके आँसू निकल करके कहो।
चाहते हो प्यार जतलाना किसे॥६॥
आँखके आँसू समझ लो बात यह।
आनपर अपनी रहो तुम मत अडे॥
क्यों कोई देगा तुम्हें दिलमें जगह।
जब कि दिलमेंसे निकल तुम यों पडे॥७॥
हो गया कैसा निराला यह सितम।
भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया॥
यों किसीका हैं नहीं खोते भरम।
आँसुओ! तुमने कहो यह क्या किया॥८॥

झाँकता फिरता है कोई क्यों कुँआ ।
हैं फँसे इस रोगमें छोटे बड़े ॥
है इसी दिलसे तो वह पैदा हुआ ।
क्यों न आँसूका असर दिलपर पड़े ॥९॥
रंग क्यों इतना निराला कर लिया ।
है नहीं अच्छा तुम्हारा ढंग यह ॥
आँसुओ ! जब छोड़ तुमने दिल दिया ।
किस लिये करते हो फिर दिलमें जगह ॥१०॥
बात अपनी ही सुनाता है सभी ।
पर छिपाये भेद छिपता है कहीं ॥
जब किसीका दिल पसीजेगा कभी ।
आँखसे आँसू कढ़ेगा क्यों नहीं ॥११॥
आँखके परदोंसे जो छनकर बहे ।
मैल थोड़ा भी रहा जिसमें नहीं ॥
बूँद जिसकी आग टपकाती रहे ।
दिल जलोंको चाहिये पानी वही ॥१२॥
हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी ।
आँखके आँसू न ये होते अगर ॥
बावले हम हो गये होते कभी ।
सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर ॥१३॥
न । प‍ ‍रजका इतना असर ।
जब कड़े सदमे कलेजेने सहे ॥
सब तरहका भेद अपना भूल कर ।
आँखके आँसू लहू बनकर बहे ॥१४॥
क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी ।
[illegible] हम पत तुम्हारी रह गई ॥
बहुत [illegible] री।
गई ॥१५॥

ओसकी बूँदें कमलसे हैं कढी।
या उगलती बूँद हैं दो मछलियां ॥
या अनूठी गोलियां चाँदी मढी।
खेलती हैं खञ्जनोंकी लड़कियां ॥२॥
या जिगर पर जो फफोला था पड़ा।
फूट करके वह अचानक बह गया ॥
हाय! था अरमान जो इतना बड़ा।
आज वह कुछ बूँद बनकर रह गया ॥३॥
पूछते हो तो कहो मैं क्या कहूं।
यों किसीका है निरालापन गया ॥
दर्दसे मेरे कलेजेका लहू।
देखता हूँ आज पानी बन गया ॥४॥
प्यास थी इस आंखको जिसकी बनी।
वह नहीं इसको सका कोई पिला ॥
प्यास जिससे हो गई है सौगुनी।
वाह! क्या अच्छा इसे पानी मिला ॥५॥
ठीक करलो जाँच लो धोखा न हो।
वह समझते हैं मकर करना इसे ॥
आँखके आँसू निकल करके कहो।
चाहते हो प्यार जतलाना किसे ॥६॥
आँखके आँसू समझ लो बात यह।
आनपर अपनी रहो तुम मत अड़े ॥
क्यों कोई देगा तुम्हें दिलमें जगह।
जब कि दिलमेंसे निकल तुम यों पड़े ॥७॥
हो गया कैसा निराला यह सितम।
भेद सारा खोल क्यों तुमने दिया ॥
यों किसीका हैं नहीं खोते भरम।
आँसुओ! तुमने कहो यह क्या किया ॥८॥

झाँकता फिरता है कोई क्यों कुँआ।
हैं फँसे इस रोगमें छोटे बडे ॥
है इसी दिलसे तो वह पैदा हुआ।
क्यों न आँसूका असर दिलपर पडे ॥९॥
रंग क्यों इतना निराला कर लिया।
है नहीं अच्छा तुम्हारा ढंग यह ॥
आँसुओ! जब छोड तुमने दिल दिया।
किस लिये करते हो फिर दिलमें जगह ॥१०॥
बात अपनी ही सुनाता है सभी।
पर छिपाये भेद छिपता है कहीं ॥
जब किसीका दिल पसीजेगा कभी।
आँखसे आँसू कढेगा क्यों नहीं ॥११॥
आँखके परदोंसे जो छनकर बहे।
मैल थोडा भी रहा जिसमें नहीं ॥
बूँद जिसकी आग टपकाती रहे।
दिल जलोंको चाहिये पानी वही ॥१२॥
हम कहेंगे क्या कहेगा यह सभी।
आँखके आँसू न ये होते अगर ॥
बावले हम हो गये होते कभी।
सैकडों टुकडे हुआ होता जिगर ॥१३॥
न ा पर रजका इतना असर।
जब कडे सदमे कलेजेने सहे ॥
सब तरहका भेद अपना भूल कर।
आँखके आँसू लहू बनकर बहे ॥१४॥
क्या सुनावेंगे भला अब भी खरी।
रो पडे हम पत तुम्हारी रह गई ॥
ऐंठ थी जीमें बहुत दिनसे भरी।
आज वह इन आँसुओंमें बह गई ॥१५॥

बात चलते चल पडा आँसू थमा ।
खुल पडे वेंडी सुनाई रो दिया ॥
आजतक जो मैल था जीमें जमा ।
इन हमारे आँसुओंने धो दिया ॥१६॥
क्या हुआ अंधेर ऐसा है कहीं ।
सब गया कुछ भी नहीं अब रह गया ॥
ढूँढते हैं पर हमें मिलता नहीं ।
आँसुओंमें दिल हमारा बह गया ॥१७॥
देखकर मुझको सम्हल लो, मत डरो ।
फिर सकेगा हाय ! यह मुझको न मिल ॥
छीन लो, लोगो ! मदद मेरी करो ।
आँखके आँसू लिये जाते हैं दिल ॥१८॥
इस गुलाबी गालपर यों मत बहो ।
कानसे भिडकर भला क्या पा लिया ॥
कुछ घडीके आँसुओ ! मेहमान हो ।
नाकमें क्यों नाकका दम कर दिया ॥१६॥
नागहानीसे बचो, धीरे बहो ।
है उमगोंसे भरा उनका जिगर ॥
यों उमडकर आँसुओ सच्ची कहो ।
किस खुशीकी आज लाये हो खबर ॥२०॥
क्यों न वे अब और भी रो रो मरें ।
सब तरफ उनको अँधेरा रह गया ॥
क्या बिचारी डूबती आँखे करें ।
तिल तो था ही आँसुओंमें बह गया ॥२१॥
दिल किया तुमने नहीं मेरी कही ।
देखते हैं खो रतन सारे गये ॥
जोत आखोंमें न कहनेको रही ।
आसुओंमें डूब ये तारे गये ॥२२॥

पास हो क्यों कानके जाते चले ।
क़िस लिये प्यारे कपोलोंपर अड़ो ॥
क्यों तुम्हारे सामने रहकर जले ।
आँसुओ ! आकर कलेजे पर पड़ो ॥२३॥

आँसुओंकी बून्द क्यों इतनी बढ़ी ।
ठीक है तकदीर तेरी फिर गई ॥
थी हमारे जीसे पहले ही कढ़ी ।
अब हमारी आखसे भी गिर गई ॥२४॥

आखका आँसू बनी मुँहपर गिरी ।
धूलपर आकर वहीं वह खो गई ॥
चाह थी जितनी कलेजेमें भरी ।
देखता हू आज मिट्टी हो गई ॥२५॥

भर गई काजलसे कीचड़में सनी ।
आँखके कोनों छिपी ठढी हुई ॥
आँसुओंकी बून्दकी क्या गत बनी ।
वह बरौनीसे भी देखो छिद गई ॥२६॥

दिलसे निकले अब कपोलोंपर चढ़ो ।
बात बिगड़ी क्या भला बन जायगी ॥
ऐ हमारे आँसुओ ! आगे बढ़ो ।
आपकी गरमी न यह रह जायगी ॥२७॥

जी बचा तो हो जलाते आँख तुम ।
आँसुओ ! तुमने बहुत हमको ठगा ॥
जो बुझाते हो कहींकी आग तुम ।
तो कहीं तुम आग देते हो लगा ॥२८॥

काम क्या निकला हुए बदनाम भर ।
जो नहीं होना था वह भी हो लिया ॥
हाथसे अपना कलेजा थाम कर ।
आँसुओंसे मुह भले ही धो लिया ॥२६॥

गालके उसके दिखाकरके मसे।
यह कहा हमने हमें ये ठग गये
आज वे इस बातपर इतने हँसे।
आँखसे आँसू टपकने लग गये ॥ ३० ॥
लाल आँखें कीं, बहुत बिगड़े बने।
फिर उठाई दौड़कर अपनी छड़ी ॥
वैसे ही अब भी रहे हम ता तने।
आँखसे यह बून्द कैसी ढल पड़ी ॥ ३१ ॥
बून्द गिरते देखकर यों मत कहो।
आँख तेरी गड़ गई या लड़ गई ॥
जो समझते हो नहीं तो चुप रहो।
किरकिरी इस आँखमें है पड़ गई ॥ ३२ ॥
है यहा कोई नही धूआ किये।
लग गई मिरचें न सरदी है हुई ॥
इस तरह आसू भर आये किस लिये।
आखमें ठढी हवा क्या लग गई ॥३३ ॥
देख करके और का होते भला।
आख जो बिन आग ही यों जल मरे ॥
दूरसे आसू उमडकर तो चला।
पर उसे कैसे भला ठढा करे ॥ ३४ ॥
पाप करने हैं न डरते हैं कभी।
चोट इस दिलने अभी खाई नही ॥
सोच कर अपनी बुरी करनी सभी।
यह हमारी आँख भर आई नहीं ॥ ३५ ॥
है हमारे औगुनोंकी भी न हद।
हाय ! गरदन भी उधर फिरती नहीं ॥
देख करके दूसरोंका दुख दरद।
आँखसे दो बून्द भी गिरती नहीं ॥ ३६ ॥

किस तरहका वह कलेजा है बना।
जो किसीके रंजसे हिलता नहीं॥
आँखसे आँसू छना तो क्या छना।
दर्दका जिसमें पता मिलता नहीं॥ ३७॥
वह कलेजा हो कई टुकड़े अभी।
नाम सुनकर जो पिघल जाता नहीं॥
फूट जाये आँख वह जिसमें कभी।
प्रेमका आँसू उमड आता नहीं॥ ३८॥
पापमें होता है सारा दिन बसर।
सोचकर यह जी उमड आता नहीं॥
आज भी रोते नहीं हम फूटकर।
आँसुओंका तार लग जाता नहीं॥ ३९॥
बू बनावटकी तनक जिनमें न हो।
चाहकी छीटें नहीं जिनपर पड़ीं।
प्रेमके उन आँसुओंसे है प्रभो॥
यह हमारी आँख तो भीगी नहीं॥ ४०

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

२

चाँदनी

खिल रही है आज कैसी भूमितल पर चाँदनी।
खोजती फिरती है किसको आज घर घर चाँदनी॥
घनघटा घूँघट उठा मुसकाई है कुछ ऋतु शरद।
मारी मारी फिरती है इस हेतु दर दर चाँदनी॥
रातकी तो बात क्या दिनमें भी बनकर कुंद काँस।
छाइ रहती है बराबर भूमि तलपर चाँदनी

स्वच्छता मेरे हृदयकी देख लेगी जब कभी।
सत्य कहता हूं कि कँप जायेगी थर थर चाँदनी॥
नाचने लगते हैं मन आनँदियोंके मोदसे।
मानुषी मनको बना देती है बन्दर चाँदनी॥
भाव भरती है अनूठे मनमें कवियोंके अनेक।
इनके हित हो जाती है जोगी मछन्दर चाँदनी॥
यह किसीकी माधुरी मुसकानकी मनहर छटा।
'दीन' को सुमिरन करा देती है अकसर चाँदनी॥

२-जातीय गान

(क) रूपक

वन्दौं श्रीभरत भूमि, सर्वसेव्य माता।
चदन सम ताप हरनि, सस्यपूर्ण स्याम बरनि।
विपुल सुखल सुफल धरनि, धवल सुजस ख्याता॥
हिमगिरिके तुगशृङ्ग, कीट मुकुट उत्तमग।
युगल बाहु कच्छ बग, अभय वर प्रदाता॥
सिंध्र ब्रह्मपुत्र मेघ, लहरें युग ओर केश।
बदरी वन मन सुवेश, विमल-बुद्धि-खाता[१]॥
मध्यदेश मध्यदेश[२], विन्ध्या कटि-पट सुवेश।
उदर वर बरार देश, मदन लखि लजाता॥
पूर्वी पच्छिमी घाट, युगल जघ जानु ठाट।
सिंहल हू निज ललाट, चरण पै नवाता॥
गगा यमुना सुढार, पुष्टिप्रदा दुग्धधार।
छुवत पियत एक बार, यमभय भगि जाता॥

(ख) अतीत गौरव

ध्रुव अरु प्रहलाद लाल, अभिमनु लव कुश कराल।
हूं गये जहँ अमित बाल, सुभग यश विधाता॥

१ खाता अर्थात् निधान २ कमर।

शिवि दधीचि हरीचंद, सहि सहि अति अमित द्वंद।
वगरायो यश अमंद, तन मन धन दाता ॥
राम, कृष्ण परशुराम, अर्जुन लछिमन सुनाम।
पी जेहि पय सुयशधाम, है गये जगत्राता ॥
सीता, पर्वतकुमारि, दमयंती अत्रिनारि।
पातिव्रत धर्म धारि, भई जग विख्याता ॥
दुर्गा दल दुष्ट दरनि, काली करवाल धरनि।
चंड महिष दर्प हरनि, जग जस न समाता ॥
गंगासुत१ हनूमान, दृढ प्रतिज्ञ बल निधान।
ब्रह्मचर्यके विधान, भये निजपन पाता ॥
नारद शुक सनक व्यास, जनक प्रमुख रामदास।
जग रही जगते उदास, जग जनु सुखदाता ॥

(ग) अतीत और वर्त्तमान गौरव

वालमीकि भरत व्यास, माघ भारवि कालिदास।
कविता सरिता विलास, विकसित जल जाता ॥
पिंगल पाणिनि कणाद, गौतम मनुगत प्रमाद।
लहि लहि वाणी प्रसाद, भये सुज्ञान दाता ॥
चंद२ सूर तुलसिदास, केशव मतिराम दास३।
कविता कामिनि सुहास, मन्द मधुर ज्ञाता ॥
दलन दुष्ट दल प्रताप, हिन्दूपति श्रीप्रताप।
छत्रसाल शिवा५ सताप, राज्य विनिर्माता ॥
दुर्गा६ दानव दवारि, कर्मारिपु७ अमित मारि।
तारा८ वीरा९ सुनारि, कविगण यश गाता ॥

१ भीष्म पितामह २ चन्द बरदाई ३ भिखारीदास ४ छत्रसाल बुन्देला ५ छत्रपति शिवाजी ६ दुर्गावती गढ़मण्डलाकी रानी जिसने अकबरसे युद्ध किया था ७ कर्मावाई, मेवाड़की रानी जिसने कुतुबुद्दीनसे युद्ध किया था ८ ताराबाई, बिदनौरके राजा सुरतानकी कन्या जिसने लैला पठानको मारकर अपने पिताको पुनः राज्य दिलाया था ९ वीराबाई राना उदयसिंहकी रानी जिसने रानाको अकबरकी कैदसे छुड़ाया था।

धर्मधीर सिक्खबाल[1], जलिया हत मदनबाल[2] ।
ऐसे पनपाल बाल, पैदा करु माता ॥
पुलकित ह्वै लखो आज बाल[3]पाल[4] मदन[5]लाज[6] ।
तन धन दै करत काज, मन स्वदेश राता ॥

(घ) कोरस

(यहाँपर प्रथम (क) खण्डकी प्रथम दो पंक्तियाँ मिलाकर गाना चाहिये)

चन्द्रज्योति सुख विकास, कुंद-कुमुद सुमनहास ।
खगरव वाणी विलास, सुखद वरद माता ॥
तीस कोटि शीश जान, तासु द्विगुन कर प्रमान ।
निबल कहै सो अजान, लखि रिपु भय खाता ॥
तुही विद्या सुधर्म, तुही हृदय तुही मर्म ।
तुही प्राण देह कर्म तुही गोत नाता ॥
भुजन बसति शक्ति रूप, हृदय मध्य भक्तिरूप ।
तेरी प्रतिमा अनूप, घर घर छविपाता ॥
अतुल अमल रम्यरूप, सफल सजल बाग कूप ।
भव्य दिव्य छवि अनूप नमो नमो माता ॥

—भगवानदीन

३

१—वर्षाका आगमन

सुखद सीतल सुचि सुगन्धित पवन लागी बहन ।
सलिल बरसन लगो वसुधा लगी सुखमा लहन ॥

---

१ गुरु गोविन्दजीके पुत्र २ जलियाँवाला बागमें हत मदनमोहन बालक ३ लोकमान्य बालगङ्गाधर तिलक ४ श्रीविपिनचन्द्रपाल ५ पूज्यपाद मदनमोहन मालवीय लाला लाजपतराय ।

लहलही लहरान लागीं सुमन बेली मृदुल।
हरित कुसुमित लगे झूमन वृच्छ मजुल बिपुल ॥१॥
हरित मनिके रङ्ग लागी भूमि मनको हरन।
लसति इन्द्रवधून अवली छटा मानिक वरन॥
विमल बगुलन पाति मनहु विसाल मुक्तावली।
चन्द्रहास समान चमकत चञ्चला त्यों भली ॥२॥
नील नीरद सुभग सुरधनु वलित सोभा धाम।
लसत मनु बनमाल धारे ललित श्री घनस्याम॥
कूप कुण्ड गँभीर सरवर नीर लाग्यो भरन।
नदी नद उफनान लागे लगे झरना झरन ॥३॥
रटत दादुर त्रिविध लागे रुचन चातक वचन।
कूक छावत मुदित कानन लगे केकी नचन॥
मेघ गर्जत मनहुँ पावस भूपको दल सबल।
विजय दुन्दुभि हनत जगमें छीनि ग्रीषम अमल ॥४॥

२—भरत वाक्य

लक्ष्मी दीजे लोकमें मान दीजै, विद्या दीजे सभ्य सन्तान दीजे।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजे, कीजे कीजे देश कल्याण कीजै ॥१॥

सुमति सुखद दीजे फूटको लोग त्यागैं।
कुमति हरन कीजे द्वेषके भाव भागैं॥
तजि कुसमय निद्रा चित्तमों चित्त जागैं।
विषम कुपथ त्यागैं नीतिके पथ लागैं ॥२॥
तन्द्रा त्यागैं लहि कुशलता होंहि व्यापार-नेमी।
सीखैं नीकी नवनव कला होंहि उद्योग-प्रेमी॥
पूरे करै नियम विधिसों स्वस्थताके नियाहैं।
उत्कण्ठा सों दिवस निसहू देशकी वृद्धि चाहैं ॥३॥
पावैं पूरी प्रतिष्ठा कविवर जगके शुद्ध साहित्य-ज्ञानी।
होवैं आसीन ऊचे सुजन विदित जे देश सेवाभिमानी॥

पीडा दुर्भिक्षकारी जुगजुग कबहु प्रान्त कोऊ न पावैं।
दीर्घायू लोग होवैं तिनहिंन कबहुं रोग कोऊ न आवै ॥४॥
सत्सङ्ग सन्त-सुर-पूजन धेनु-प्रेम,
श्रीराम-कृष्ण-चरितामृत पान-नेम।
सौजन्य भाव गुरुसेवन आदि प्यारे,
सम्पूर्ण शील शुभ पावहि देशवारे ॥५॥
अन्यायको अङ्क कहू रहैना, दुर्नीतिकी शङ्क कहू रहैना।
रचवें सदा मोदविनोदकारी, हिन्दू अहिन्दू अनुराग भारी ॥ ६ ॥
समस्त वर्णाश्रम धर्म मानैं, सदाहि कर्तव्य प्रधान जानैं।
जसी तपस्वी बुधधीर होवैं, बली प्रतापी रणधीर होवैं ॥ ७ ॥
लक्ष्मी दीजै लोकमें मान दीजै, विद्या दीजै सभ्य सन्तान दीजै।
हे हे स्वामी प्रार्थना कान कीजै, कीजै कीजै देश कल्याण कीजै ॥८॥

३—नीच सग्राम

अरे! तू अधम कालके मित्र! जगतके शत्रु! नीच सग्राम!
अरे धिक्कार तोहि सौ बार! अमगल! दुःखद पातकधाम!
सघन-सुख-पङ्कज-पुञ्ज तुषार! देश उन्नति-तरु-कठिन कुठार!
शान्तिवनदहन प्रचण्ड कृशानु! भयानक हिंस्र वरा अगार!
देश सम्पत्ति रूपी पै हाय! परै तू टूटि गाजके रूप,
लोकद्रोही! धिक्! धिक्! धिक्! तोहि! शुद्ध रे व्याधिदेशके भूप
नीच नृपके मदके परिणाम! देश दुष्कर्म विपाक स्वरूप!
प्रजामुदकुसुमाकरको ग्रीष्म! अरे दारुण सन्ताप अनूप!
सहस्रन घायल हारे बीर कराहैं कलपि कलपि बल हीन।
सहस्रन मूर्छित भरहिं उसास जियनको घटिका है वा तीन॥
सहस्रन जूझि गये सरदार।
सहस्रन गज तुरग मे ॥
सहस्रन ।
चहूँ ॥

सहस्रन बालक भोरे दीन भये असहाय हाय बिन बाप।
निरख लखि लखिकै तिनकी आज हियेमें होत महा सन्ताप॥
सहस्रन दुर्बल बूढे लोग निपुत्री भये रहे सिर फोरि।
कहैं करि रोदन "बेटा! हाय! कहा तुम गये कमरको तोरि"
सहस्रन बन्धु दुहाई देत "हाय! हरि! हिये दया है नाहिं,
हमारो उठिगो बन्धु जवान, हमारी टूटि गई हा बाहि"॥
सहस्रन नारी यहि सताह भई विधवा, है शोक महान।
बरनि को सकै अहो दुख घोर? अहैं सो करुनामूरतिमान!॥
मृतक सौं परीं महीतल माहि दयाके योग्य भरी सन्ताप।
कबहुँ जो होवै मुरछा दूर करैं तौ अतिशय घोर विलाप॥
"कहा तुम गये प्रानआधार! जगत जीवनके शोभा रूप?
गये कित स्वामी! सुखके धाम! बोरि दासीको दुखके कूप?
हाय! कहँ गये हमारे छत्र! छाड़ि बीचकहि हमारो साथ
हाय! सुरनगर बसायो जाय, निठुर है, करि हम दुखिन अनाथ,
हमारे चूड़ामनि सिरमौर! हमारे पति, सम्पत्ति, सोहाग!
गये पिय! कित शृंगार नसाय? अरे निर्दई दई! हा भाग!
करी है पीतम! सो दिन याद जबै तुम गह्यो हमारो हाथ।
कह्यो करि साखि देवहि आप 'जनम लौं रैहैं तुम्हरो साथ'।
प्राणप्यारे! क्यों मुझको मोरि गये तजि भला प्रतिज्ञा तोरि?
चले इत आवो हाय बहोरि, बिनै करन परसि कर जोरि।
पिया शय्या पर सोवन हार! आज तुम परे कठिन रनखेत॥
कन्त! अँगराग लगावनहार धूरि तन भरी भूरि केहि हेत?
प्रानवल्लभ! नित रहे दयाल, सही नहिं कबहुं हमारी पीर।
आज लखि हमैं हाय! बिलखात न पोंछत काहे नैनन नीर?
कबहुँ नहि कियो कन्त! आलस्य जगतहे नेकहि खटका पाय
निपट बेखटके सोवत नाथ! आजकी कैसी निद्रा हाय?
कबहुँ जो जात हुते परदेस आप, वा, खेलन काज सिकार।
होत हो दारुन हमें कलेस रैन बिन प्रानन सालनहार

रहति है यद्यपि पूरी आस कछुक दिन बीते ऐहैं कन्त।
तऊ अनुरागी चितको हाय बेदना होतहि हुती अनन्त॥
हाय! सोइ पीतम प्रेमनिधान आज तुम गये नहीं परदेश।
गये तुम सुरपुर हमैं विहाय सदाको, हाय अपार कलेस॥
नाथ! जो बहुरि न आवौ पास करौ तो एतो ही उपकार।
बुलावो हमको ही निज पास, होय काहू विधि बेडा पार॥
नाथ! तुम बिना निपट अँधियार भयो सूनो दुखप्रद संसार।
होत प्रानन छिनछिन दुखदाय अधम माटीको कारागार।"
कहा लौं बरनो जाय प्रलाप दुखारी विधवागनको हाय।
बिसूरत ही तिनको सन्ताप सहज ही हिरदै फाटो जाय॥
अरे! संग्राम! घृणाके धाम! धर्मद्रोही, अपकारी क्रूर!
रुधिरके प्यासे! अरे पिशाच! उपद्रव करन! धूर्त भरपूर!
जगतमें तूही बार अनेक प्रकट है किये घने उतपात।
भरे इतिहासनमें वृत्तान्त तिहारे दुर्गुणके विख्यात॥
सुरासुर समर महान प्रचण्ड भये भयकरण अनेकों बार।
भई तिनमें हिंसा विकराल, अपरिमित सृष्टि भई संहार॥
पर्शुधर क्षत्रियगणके युद्ध नष्ट कर दीन्हे अगणित बंस।
बली बर भूपति संख्यातीत प्रतापिन रह्यो सहज विध्वंस॥
राम रावण संग्राम प्रसिद्ध उपस्थित भयो भयानक घोर।
अपरिमित बलधर कलाप्रवीण नसे योद्धा विक्रान्त अथोर॥
लड़े त्यों जरासिन्धु यदुवंश, भयो हरि बानासुर-संग्राम।
भयङ्कर भयो महा विकराल महाभारत रण हिंसा-धाम॥
रूम यूनान मिस्र वा रोम स्पेन जर्मनि वा इंग्लिस्तान।
आष्ट्रिया फ्रान्स देश वा होय अफरिका अमेरिका जापान।
सबनको जेतो है इतिहास होय सो नवीन वा प्राचीन।
ठौर ही ठौर भरी तेहि माँहि युद्धकी कथा महा दुखलीन॥
अरे तू जगत उजाडनहार! अकथदुखकरन!
कहा लौं बरनू हे खलराज! तिहारे निन्दित

४—स्वदेशी कुण्डल

देशी प्यारे भाइयो! हे भारत-सन्तान!
अपनी माता-भूमिका, है कुछ तुमको ध्यान?
है कुछ तुमको ध्यान दशा है इसकी कैसी?
शोभा देगी नहीं किसीको निद्रा ऐसी॥
वाजिब है हे मित्र! तुम्हें भी दूरन्देशी।
सुन लो चारों ओर मचा है शोर 'स्वदेशी'॥
पानी पीना देशका, खाना देशी अन्न।
निर्मल देशी रुधिरसे, नस नस हो सम्पन्न॥
नस नस हो सम्पन्न तुम्हारे उसी रुधिरसे।
हृदय, यकृत, सवाग, नखोंतक लेकर शिरसे॥
यदि न देश-हित किया कहेंगे सब 'अभिमानी,
शुद्ध नहीं तव रक्त नहीं तुममें कुछ पानी॥"
सपना हो तो देशके हित हीका हो मित्र!
गाना हो तो देशके हितका गीत पवित्र॥
हितका गीत पवित्र प्रेम वानीसे गाओ।
रोना हो तो देश हेतु ही अश्रु बहाओ॥
देश, देश, हा! देश, समझ बेगाना अपना।
रहें झोंपड़ी बीच महलका देखें सपना॥
चींटी मक्खी शहदकी, सभी खोजकर अन्न।
करते हैं लघु जन्तुतक, निज गृहको सम्पन्न॥
निज गृहको सम्पन्न करो स्वच्छन्द मनुष्यो।
तजो तजो आलस्य अरे मतिमन्द मनुष्यो!
चेत न अबतक हुआ मुसीबत इतनी चक्खी।
भारतकी सन्तान! बने हो चींटी मक्खी॥
कूकर भरते पेट हैं, पर चरणोंपर लेट।
शूकर घूरों घूमकर भर लेते हैं पेट॥

भर लेते हैं पेट सभी जिनके है काया।
पुरुषसिंह हैं वही भरें जो पेट पराया॥
ठहरो, भागो नहीं, स्वदेशी चर्चा छूकर।
करो पूर्ण उद्योग, बनो मत शूकर कूकर॥
खारा अपना जल पियो, मधुर पराया त्याग।
सीठेको मीठा करे, पूर्ण देश-अनुराग॥
पूर्ण देश अनुराग सकल सज्जनो! निबाहो।
है जो हाथपर प्राप्त अधिक उससे मत चाहो॥
बिना विदेशी वस्त्र नहीं क्या गुजर तुम्हारा!
काफी है जो मिले होय गाढ़ा या खारा॥
चूड़ी चमकीली विशद, परदेशीय विचार।
वनिताओं ने त्याग दी, किया बड़ा उपकार॥
किया बड़ा उपकार यद्‌पि हैं अबला नारी।
अब देखें कुछ पुरुषवर्ग करतूत तुम्हारी॥
सुनो तुम्हारी अगर प्रतिज्ञा रही अधूरी।
यही कहेंगे लोग 'पहिन कर बैठो चूड़ी'॥
वन्दे वन्दे मातरम्, सदा पूर्ण विनयेन।
श्री देवी परिवन्दिता, या निज-पुत्र-जनेन॥
या निज-पुत्र जनेन पूजिता मान्याऽनूपा।
या धृत-भारतवर्ष-देश वसुमती स्वरूपा॥
तामहमुत्साहेन शुभे समये स्वच्छन्दे।
वन्दे जन हितकारी मातरम वन्दे वन्दे॥

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'



अन्योक्ति सप्तक

मैना तू वनवासिनी, परी पींजरे आन।
जान दैव गति ताहिमें, रहे शान्त सुख मान॥
रहे शान्त सुख मान, बान कोमल तें अपनी।
सब पक्षिन सरदार, तोहि कवि कोविद बरनी॥
कहँ 'मीर' कवि मित्र, बोलती मधुरे बैना।
तौ भी तुझको धन्य, बनी तू अजहू मैं—ना॥ १॥
तोता तू पकड़ा गया, जब था निपट नदान।
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया, तौभी रहा अजान॥
तौभी रहा अजान, ज्ञान का मर्म न पाया।
जीवन परके हाथ सौंप, निज घर बिसराया॥
कहँ 'मीर' समुझाय, हाय! तू अबलौं सोता।
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ़के तोता॥ २॥
बिल्ली निज पतिघातिनी, तुझको प्यारा गेह।
खाती है जिसका नमक, उससे नेक न नेह॥
उससे नेक न नेह, देहपर करती हमला।
खा खाकर घी दूध, कमाई घरकी कमला॥
कहँ 'मीर' समुझाय, पढ़े तू चाहे दिल्ली।
नमक हरामी चाल, न छूटे तुझसे बिल्ली॥ ३॥
बगला बैठा ध्यानमें, प्रात जलके तीर।
मानौं तपसी तप करे, मलकर भस्म शरीर॥
मलकर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली।
कहँ 'मीर' असि चौंच, समूची फौरन निगली॥
फिर भी आवें शरण, बैर जो तजके अगला।
उनके भी तू प्राण, हरे, रे! छी! छी बगला॥ ४॥

कैदी होने के प्रथम, था अलि 'मीर' स्वतन्त्र ।
उसे पवनने छल लिया, कहके मोहन मन्त्र ॥
कहके मोहन मन्त्र, तन्त्र सा फिर कुछ करके ।
उसे गयी ले खींच, पासमें गहरे सरके ॥
पडा प्रेम में अचल, वहा लकडीका भेदी ।
था जो कोमल कमल, बनाया उसने कैदी ॥ ५ ॥
जाने कीन्हों शमन है, मत्त मतङ्ग न मान ।
हाय ! दैव वश सिंह सो, पर्यो पींजरे आन ॥
पर्यो पींजरे आन, श्वानके गन ढिग भूकैं ।
विहँसैं ससा, सियार, कान पै आके कूकैं ॥
'मीर' बात है सत्य, लोकमें कहिगे स्याने ।
का पै कैसी समय, कबै परिहै को जाने ॥ ६ ॥
कोयल तू मन मोहके, गई कौनसे देस ।
तव अभावमें काग मुख, लखनो परो भदेस ॥
लखनो परो भदेस, वेस तोही सो कारो ।
पै बोलत हैं बोल, महा कर्कस कटु न्यारो ॥
कहैं 'मीर' हे दैव, कागको दूर करो दल ।
लावो फेर बसन्त, मनोहर बोलें कोयल ॥ ७ ॥

—अमीर अली 'मी

५

१—शरद्वर्णन

सरद समागम होत ही, फूले कास कपास ।
घन गर्जन बर्जन भयो, निर्जल अमल अकास ॥ १ ॥
निर्मल नीर नदियन बहै, सरवर कमल खिलन्त ।
विकसी कैरवकी कली, निरखि चन्द निज कन्त ॥२॥
चक्रवाक चातक सुआ, कोकिल मञ मराल ।

दिव्य दिवाकर दिधित सों, दीपित दसों दिसान।
नूतन किसलय अरु लता, भासित स्वर्न समान ॥ ४ ॥
पंक रहित पृथ्वी भई, सरितन सलिल समान।
निजनिज प्यारी सों मिलन, पथिकन कीन्ह पयान ॥५॥
खंजन मन रंजन करन, गंजन मृग चख मान।
आवत गुंजनको चुगत, चचलताकी खान ॥ ६ ॥
मन्द मन्द मारुत चलै, सीतल सुखद महान।
खेतनमें भूमत खड़े, धाननके पिरवान ॥ ७ ॥
हरे हरे कोऊ पके, भुके सबै फल भार।
जगत पिताकी करत हैं, विनती बान्ध कतार ॥ ८ ॥
सारदीय ससिकी सुधा, बरसत चारों ओर।
करि दर्सन निज बन्धुकी, प्रमुदित होत चकोर ॥ ६ ॥
कदम करौंदा केतकी, कुसुमित बेर मकोय।
निरखन ही तिलको सुमन, मन आनन्दित होय ॥ १० ॥
स्वच्छ सरदकी मन्जुता, को करि सकै बखान।
सैननमें समुझत मरम, जो हैं रसिक सुजान ॥ ११ ॥

२—वसन्त वर्णन। (बेतुका छन्द)

शेष हुआ जाड़ेका मौसम, आया है अब समय बसन्ती।
मगन हुए सारे नर नारी, लता, वृक्ष पशु पक्षी कोमल ॥
सारी दुनिया मस्त हुई है, मानों सबने छानी गहरी।
हुआ प्रकृतिका रूप निराला, आहा! क्या अच्छी है शोभा ॥
है आकाश स्वच्छ अति सुन्दर, सूरज भी अब तेज हुआ है।
नहि सरदी नहि गरमी भारी, औ हो क्या प्यारी हैं रातें ॥
बौरे आम अधिक सुखदायी, कुहू कुहू कोयल करती है।
मन्द मन्द वायू हैं चलती, लिये गन्ध अति भीनी भीनी ॥
फूले सेमर ढाक विपिनमें, है नहि इनमें गन्ध तनिक भी।
पर केवल है रंगत अच्छी, नाम बड़े अरु दर्शन छोटे ॥

रूप देख आये बहु पक्षी, पर लौटे अपना मुंह लेकर।
इससे कवि कहता है भाई, जो कुछ चमके सो नहिं सोना ॥
गेंदा और गुलाब, गुलतुरी, हुए सकल इक साथ प्रफुल्लित।
गुंजत मधुकर मधुको खातिर, भूमि हुई गुलशनका टुकडा ॥
रहे वृक्ष जो टुण्डे मुण्डे, उनमें भी अब पत्ते निकले।

—जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

६

१—अङ्गद और रावण।

मम निवेदन है कुछ आपसे,
सुन उसे, उरमें धर लीजिये।
ग्रहण है करता जिस युक्तिसे,
मधुप सारस सार सहर्ष हो ॥ १ ॥
जनकजा रघुनायक हाथमें,
तुरत जाकर अर्पण कीजिये।
पर-वधू जन से रहते सदा,
अलग सन्तत सन्त तमीचर! ॥ २ ॥
कुशलसे रहना यदि है तुम्हें,
दनुज! तो फिर गर्व न कीजिये।
शरणमें गिरिये रघुनाथके,
निबलके बल केवल राम हैं ॥ ३ ॥
दुखद है तुमको जनकात्मजा,
तुरत दूर उसे कर दीजिये।
सुखद हो सकती न उलूकको,
नय विशारद शारद चन्द्रिका ॥ ४ ॥

बहुत बार हुए विजयी सही,
पर नहीं रहते दिन एकसे।
सम्हलके रहिये, अब आपकी,
ग्रह-दशा न दशानन ! है भली ॥ ५ ॥
स्वकुलकी करिये शुभ-कामना,
सपदि युक्ति वही नृप ! सोचिये।
न भय भी जिसमें करना पड़े,
कठिन सङ्गर संग रमेशके ॥ ६ ॥
स्वमनको वशमें रखिये सदा,
अनयसे पर वस्तु न लीजिये।
नृप ! कभी सुखदायक हैं नहीं,
सुत, रसा, धन साधनके विना ॥ ७ ॥
समय है अनमोल, कुकर्ममें,
तुम विनष्ट करो उसको नहीं।
दनुज ! है जगमें सुखदायिनी,
नियम-हीन मही न महीपको ॥ ८ ॥
परम वीर चढ़े रघुवीर हैं,
तव पुरीपर वारिधि बाँधके।
क्षितिप ! आकरके रिपु राज्यमें,
तनिक भीरु कभी सकते नहीं ॥ ९ ॥
कवि, गुणी, बुध, वीर, नयज्ञ भी,
समझिये मनमें निजको स्वयम्।
पर विना कुछ कार्य्य किये कभी,
न मन-मोदक मोद कलाप है ॥ १० ॥
सब सुरासुर हैं वश आपके,
करगता यदि हों सब सिद्धिया।
तदपि हे दनुजेश्वर ! जानना,
निज विनाशक नाशक रामको ॥ ११ ॥

अखिल-लोक नृपेश्वर रामको,
समझके उनसे मिलिये अभी।
यह पुरी रघुनाथ रणाग्निमें,
दनुज! होम न हो, मनमें डरो ॥ १२ ॥

२—रावण

सुन कपे! यम, इन्द्र, कुबेरकी,
न हिलती रसना मम सामने।
तदपि आज मुझे करना पड़ा,
मनुज-सेवकसे बकवाद भी ॥ १ ॥
यदि कपे! मम राक्षस राजका,
स्तवन है तुझसे न किया गया।
कुछ नहीं डर है—पर क्यों वृथा,
निलज! मानव-मान बढ़ा रहा ॥ २ ॥
तनय होकर भी मम मित्रका,
शठ! न आकर क्यों मुझसे मिला?
उदरके बस हो किस भांति तू,
नर-सहायक हाय कपे! हुआ ॥ ३ ॥
वसन भोजन ले मुझसे सदा,
विचर तू सुखसे मम राज्यमें।
उस नृपात्मजके हित दे वृथा,
सुखद जीव न जीवनके लिये ॥ ४ ॥
तुम बिना करतूत बका करो,
वचन वीर! सुनो हम वीर हैं।
रिपु-विनाशक यत्न किये बिना,
समर-पावक पा चकते नहीं ॥ ५ ॥
बल सुनाकर तू शठ! रामका,
पच मरे, पर मैं डरता नहीं।

झल भयातुर हो करके, बता,
कब तिरोहित रोहितसे हुआ ॥ ६ ॥
कचल दायकके गुण-गानमें,
निरत तू रह वानर ! सर्वदा।
समर है सुख दायक सूरको,
कब रचा रण चारणको भला ? ॥ ७ ॥
जनकजा-हृत चित्त हुआ सही,
तदपि तापससे कम मैं नहीं।
मधुर मोदक क्या पच जायगा,
कपि ! बता मन वामन-पेटमें ॥ ८ ॥
लड नहीं सकता मुझसे कभी,
तनिक भी नृप बालक स्वप्नमें।
कब, कहाँ, कह तो किसने लखा,
कपि ! लवा रण वारणसे भला ॥ ९ ॥
यह असम्भव है यदि राम भी,
समर सम्मुख रावणसे करे।
कह कपे ! उठ है सकती कभी,
यह रसा बक-शावक चोंच से ॥ १० ॥
निलज हो वहको, निज-नाथके—
सुयश-गान करो, कपि जाति हो।
जगत में दिखलाकर पेटको,
वचन-वीर ! न वीर बना कभी ॥ ११ ॥
मम नहीं हित-साधक जो हुआ,
वह न हो सकता परका कभी।
कपट रूप बनाकर रामका,
कपि ! विभीषण भीषण शत्रु है ॥ १२ ॥
मर मिटें रणमें, पर रामको,
हम न दे सकते जनकात्मजा।

सुन कपे जगमें बस वीरके,
सुयशका रण कारण मुख्य है ॥ १३ ॥
चतुरता दिखला मत व्यर्थ तू,
रसिक हैं रणके हम जन्मसे ।
रुक नहीं सकते सुनके कभी,
वचन-वत्सल वत्स ! लड़े विना ॥ १४ ॥
—रामचरित उपाध्याय

७

१—सदाय वतन

नहीं है और हवस दिलमें है हवाय वतन ।
पसन्द कुछ भी नही मुझको है सिवाय वतन ॥
बदल लूँ शौकसे मैं इस्फहानी सुर्मेसे ।
मिले किसीसे अगर मुझको खाके पाय वतन ॥
जनाब लन्दनो पेरिसकी है हकीकत क्या ।
न लूँ बहिश्तका भी नाम मैं बजाय वतन ॥
वो सर जमी है जहा सर फरोश लाखों ही ।
हुए प्रताप शिवा जीसे हैं फिदाय वतन ॥
वतनकी खाकसे उट्ठा हूँ मैं वतनका हूँ ।
वतन है आशना मुझसे मैं आशनाय वतन ॥
मुसाफिरतमें ये गुल काँटेसे खटकते हैं ।
बसे हैं दिलमें मेरे हाय ! प्यार हाय वतन ॥
तेरी गुजश्ता वो अजमत जो याद आती है ।
निकलता आहके है साथ मुँहसे हाय वतन ॥
खयाल अहले वतनको हुआ तरक्कीका ।
मकामे शुक्र है बदली है कुछ हवाय वतन ॥
वतन परस्तोंके दिलमें यही है आठ पहर ।
बलन्द चारों तरफसे हो अब सदाय वतन

२–गुज़रा हुआ ज़माना

वह दिन कहा ! कहा वह इशरतका कारखाना ।
वह गुलका खिल खिलाना बुलबुलका वह तराना ॥
अब चमन कहा जो दुनियामें था यगाना ।
वह शाखें-तर कहा है जिस पर था आशियाना ॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना ॥
लहरें दिलोंमें अपने लहरा रही थीं क्या क्या ।
उम्मेदें फज्ले हकसे बर आ रही थीं क्या क्या ॥
रहमतकी वह घटायें छवि छा रही थीं क्या क्या ।
तासीर वह दुआयें दिखला रही थी क्या क्या ॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना ॥
हैं वह कहा उमगे, वह जान अब कहा है ।
वह हौसला कहा है अरमान अब कहा है ॥
वह मर्तबा कहा है वह शान अब कहा है ।
वह धर्म अब कहा है ईमान अब कहा है ॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना ॥
आजाद थे कभी, अब हैं बन्द कैदे गममें ।
दिन बीतते हैं है ! है ! अब रजमें अलममें ॥
दोज़खमें आज हैं कल थे गुलशने इरम में ।
सेहरामें अब हैं, तब थे हम कूचये सनममें ॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना ॥
वह राम अब कहा है, वह श्याम अब कहा हैं !
सीतासी रुक्मिणीसी वर बाम अब कहा हैं ॥
अब वह लखन कहा है, बलराम अब कहा है ।
वह चैन अब कहा है आराम अब कहा है ॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना ॥
अर्जुनके, कर्णके वह विप धान अब कहा हैं ।
अब बालि सुत कहा हैं, हनुमान अब कहा हैं ॥

वह विश्वकी विजयके अरमान अब कहा है।
जौहर दिखायें जिनमें मैदान अब कहा हैं॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
क्या क्या सितम न ढाये इस चर्ख पुरजफाने॥
पीसा किसे नहीं है इस सगे आसियाने॥
अहमक नही बने हैं जो थे बडे सयाने।
हा! चक्रवर्त्तियोंके घरमें रहे न दाने॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
वह सत्यबल हमारा, धीरज अटल हमारा।
वह प्रेमजल हमारा, वह हृत्कमल हमारा॥
वह स्वाभिमान अपना, वह प्रण अचल हमारा।
सर्वस्व हाय अब तो है चल विचल हमारा॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
वह आत्मबल कहा है सद्ज्ञान अब कहा है।
वह धारणा कहा है, वह ध्यान अब कहा है॥
अपनी स्वतन्त्रताका अभिमान अब कहा है।
वह मान अब कहा है, सम्मान अब कहा हैं॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
होता कहीं चमन वह, फिर वह वहार होती।
बुलबुल हजार जासे गुलपर निसार होती॥
वह ज़ुल्फ अम्बर अफशा फिर मुश्क यार होती।
कुल खल्क देखनेको फिर वेकरार होती॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
दिल इस तरह न अपना हर्गिज मलूल होता।
कोई न हममें वहशी 'या डैम फूल होता॥
हर काम देशका फिर इच्छानुकूल होता।
हम होते और ही कुछ गर 'होमरूल' होता॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥

—गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही



वन विहंगम

वन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्वमें, एक कपोत कपोती कहीं
दिन रात न एकको दूसरा छोडता, ऐसे हिले मिले दोनों वहीं
बढने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहीं
कहनेका प्रयोजन है इतना, उनके सुखकी रही सीमा नहीं
रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुरागके रागमें मस्त हुआ
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ
जब जो कुछ चाहा कबूतरीने, उतना वह वैसे समस्त हुआ
इस भांति परस्पर पक्षियोंमें भी, प्रतीतिसे प्रेम प्रशस्त हुआ
सुविशाल वनोंमें उडे फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्रछटा
कहीं शस्यसे श्यामल खेत खडे, जिन्हें देख घटाका भी मान घटा
कहीं कोसों उजाडमें झाड पडे, कहीं आडमें कोई पहाड सटा
कहीं कुञ्ज, लताके वितान तने, सब फूलोंका सौरभ था सिमटा
झरने झरनेकी कहीं झनकार, फुहारका हार विचित्र ही था
हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब ढंग पवित्र ही था
ऋषियोंका तपोवन था, सुरभीका जहाँपर सिंह भी मित्र ही था
बस, जानलो, सात्विक सुन्दरता, सुख संयत शान्तिका चित्र ही था
कहीं झील किनारे बडे बडे ग्राम, गृहस्थ निवास बने हुए थे
खपरैलोंमें कद्दू, करेलोंकी बेलके खूब तनाव तने हुए थे
जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पक्षी घरोंमें घने हुए थे
सब ओर स्वदेश-स्वजाति समाज-भलाईके ठान ठने हुए थे
इस भाँति निहारते लोककी लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिरें घरको
उन्हें देखते दूरहीसे, मुख खोलके, बच्चे चलें चट बाहरको
दुलराने, खिलाने पिलानेसे था अवकाश उन्हें न घडी भरको
कुछ ध्यान ही था न कबूतरको, कहीं काल चढा रहा है शरको

वह विश्वकी विजयके अरमान अब कहां है।
जौहर दिखायें जिनमें मैदान अब कहां हैं॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
क्या क्या सितम न ढाये इस चर्खे पुरजफाने॥
पीसा किसे नहीं है इस सगे आसियाने॥
अहमक नहीं बने हैं जो थे बड़े सयाने।
हा ! चक्रवर्त्तियोंके घरमें रहे न दाने॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
वह सत्यबल हमारा, धीरज अटल हमारा।
वह प्रेमजल हमारा, वह हृत्कमल हमारा॥
वह स्वाभिमान अपना, वह प्रण अचल हमारा।
सर्वस्व हाय अब तो है चल विचल हमारा॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ ज़माना॥
वह आत्मबल कहा है सद्ज्ञान अब कहा है।
वह धारणा कहा है, वह ध्यान अब कहा है॥
अपनी स्वतन्त्रताका अभिमान अब कहा है।
वह मान अब कहा है, सम्मान अब कहां हैं॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ ज़माना॥
होता कहीं चमन वह, फिर वह बहार होती।
बुलबुल हजार जासे गुलपर निसार होती॥
वह ज़ुल्फ अम्बर अफशा फिर मुश्क बार होती।
कुल ख़ल्क देखनेको फिर बेकरार होती॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥
दिल इस तरह न अपना हर्गिज मलूल होता।
कोई न हममें वहशी या डैम फूल होता॥
हर काम देशका फिर इच्छानुकूल होता।
हम होते और ही कुछ गर 'होमरूल' होता॥
आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना॥

—गयाप्रसाद शुक्ल, 'सनेही



वन विहंगम

वन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्वमें, एक कपोत कपोती कहीं
दिन रात न एकको दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले मिले दोनों वहीं
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रही
कहनेका प्रयोजन है इतना, उनके सुखकी रही सीमा नहीं
रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुरागके रागमें मस्त हुआ
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ
जब जो कुछ चाहा कबूतरीने, उतना वह वैसे समस्त हुआ
इस भाति परस्पर पक्षियोंमें भी, प्रतीतिसे प्रेम प्रशस्त हुआ
सुविशाल वनोंमें उड़े फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्रछटा
कहीं शस्यसे श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटाका भी मान घटा
कहीं कोसों उजाड़में भाड़ पड़े, कहीं आड़में कोई पहाड़ सटा
कहीं कुञ्ज, लताके बितान तने, सब फूलोंका सौरभ था सिमटा
झरने झरनेकी कहीं झनकार, फुहारका हार विचित्र ही था
हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब ढंग पवित्र ही था
ऋषियोंका तपोवन था, सुरभीका जहाँपर सिंह भी मित्र ही था
बस, जानलो, सात्विक सुन्दरता, सुख संयत शान्तिका चित्र ही था
कहीं झील किनारे बड़े बड़े ग्राम, गृहस्थ निवास बने हुए थे
खपरैलोंमें कद्दू, करैलोंकी बेलके पूर तनाव तने हुए थे
जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पक्षी घरोंमें घने हुए थे
सब ओर स्वदेश-स्वजाति-समाज-भलाईके ठान ठने हुए थे
इस भाँति निहारते लोकको लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिरें घरको
उन्हें देखते दूरहीसे, मुख खोलके, बच्चे चलें चट बाहरको
दुलराने, पिलाने पिलानेसे था अवकाश उन्हें न घड़ी भरको
कुछ ध्यान ही था न कबूतरको, कहीं काल चढ़ा रहा है शरको

व एक वडाही मनोहर था, छवि छाई वसन्तकी काननमें
ा ओर प्रसन्नता देख पडी, जड चेतनके तनमें मनमे
कले थे कपोत-कपोती कही, पडे झुडमें घूम रहे वनमें
चा यहाँ घोसले पास शिकारी, शिकारकी ताकमें निर्जनमें
व निर्दयने उसी पेडके पास, बिछा दिया जालको कौशलसे
ाँ देखके अन्नके दाने पडे चले बच्चे अभिज्ञ जो थे छलसे
ी जानते थे, कि यहीं पर है कही, दुष्ट भिडा पडा भूतलसे
त, फाँसके बाँसके बन्धनमें, कर देगा हलाल हमें बलसे
व बच्चे फँसे उस जालमें जा, तब वे घबडा उठे बन्धनमें
नेमें कबूतरी आई वहाँ, दशा देखके व्याकुल हो मनमें
हने लगी, "हाय हुआ यह क्या ! सुत मेरे हलाल हुये वनमें
ब जालमें जाके मिलूँ इनसे सुख ही क्या रहा इस जीवनमे"
स जालमें जाके बहेलियेके, ममतासे कबूतरी आप गिरी
नेमें कपोत भी आया वहाँ, उस घोसलेमें थी विपत्ति निरी
खते ही अँधेरा सा आगे हुआ, घटनाकी घटा वह घोर घिरी
यनोंसे अचानक बूँद गिरे, देहरेपर शोककी स्याही फिरी
व दीन कपोत बडे दुखसे कहने लगा—"हा ! अति कष्ट हुआ
नबलोंहीको दैव भी मारता है, ये प्रवाद यहाँपर स्पष्ट हुआ
ब सूना किया, चली छोड प्रिया, सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ
स भाँति अभागा अतृप्त ही, मैं, सुख भोगके स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ
कल कूजन-केलि कलोलमें लिप्त हो, बच्चे मुझे जो सुखी करते
ब देखते दूरसे आता मुझे, किलकारियाँ मोदसे जो भरते
समुहायके, धायके आयके पास, उठायके पख नहीं टरते
यही हाय ! हुए असहाय, अहो ! इस नीचके हाथसे हैं मरते
गृह-लक्ष्मी नही, जो जगाये रहा करती थी सदा सुखकल्पनाको
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हींके लिये सहता इस दारुण वेदनाको
वह सामने ही परिवार पडा पडा भोग रहा यम यातनाको
अब मैं ही वृथा इस जीवनको रख कैसे सहूगा विडम्बनाको"

यहा सोचता था यों कपोत, वहाँ चिडीमारने मार निशाना लिया
गिर लोट गया धरतीपर पक्षी, बहेलियेने मनमाना किया
पलमें, कुलका कुल काल करालने, भूत भविष्यमें भेज दिया
क्षणभगुर जीवनकी गतिका यह एक निदर्शन है बढिया
हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्वमें, तत्व महत्वको भूलता है
उसके सिरपै खुला खड्ग सदा, बँधा धागेमें धारसे झूलता है
वह जाने विना विधिकी गतिको, अपनी ही गढन्तमें फूलता है
पर अन्तको ऐसे अचानक अन्तक आकर अवश्य ही हूलता है
पर जो मन भोगके साथ ही योगके काम पवित्र किया करता
परिवारसे प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता
निज भाव न भूलके, भाषा न भूलके, विघ्न व्यथाको नही डरता
कृत कृत्य हुआ हँसते हँसते, वह सोच सकोच विना मरता
प्रिय पाठक ! आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आपको क्या उपदेश करें
सिरपै सर ताने बहेलिया काल खडा हुआ है, यह ध्यान धरें
दशा अन्तको होनी कपोतकी ऐसी, परन्तु न आप जरा भी डरें
निज धर्मके कर्म सदैव करें कुछ चिह्न यहाँ पर छोड मरें

—रूपनारायण पाडेय

९

१—वसन्त

सौख्य सुधा सरसाइये, सुभग सुलभ रसवन्त।
वर विनोद बरसाइये, बहुधा विपिन वसन्त॥ १॥
दस दिसि दुति दरसाइये, सजि सुरभित सुठि साज।
जग प्रिय हिय हरसाइये, रहि रसाल ऋतुराज॥ २॥
अमित अनारन अम्बन, अमल असोक अपार।
बकुल कदम्ब कदम्बन, पुनि पलास परिवार॥ ३॥
जहँ कोकिल कल बोलत, ठौर ठौर स्वच्छन्द।
गुजत षटपद डोलत, पद पद पी मकरन्द॥ ४॥

जयति मधुर मन मोहन, जयति प्रकृतिश्रृङ्गार।
सुन्दर सब विधि सोहन, कीजिय विपुल विहार॥ ५॥
नित नव निरमल निरखौ, रमि सुरम्यता कुञ्ज।
पुनि पुनि प्रमुदित परखौ, पूरन प्रियता पुञ्ज॥ ६॥
मृदु मंजु रसाल मनोहर मञ्जरी मोरपखा सिर पै लहरैं।
अलबेलि नवेलिन वेलिनुमें नवजीवन जोति छटा छहरैं॥
पिक भृंग सुगुंज सोई मुरली सरसों सुभ पीतपटा फहरैं।
रसवन्त विनोद अनत भरे ब्रजराज वसन्त हिये विहरैं॥

ऋतुराज आज कैसा प्यारा वसन्त आया।
जिसका प्रभाव पावन सारे जहांमें छाया॥
कैसे रसाल बौरे मृदुमंजरी सजाके।
फैली सुगन्ध सौंधी भौंरोंका मन लुभाया॥
कलरव कलाप कोमल करती हैं कोकिलायें।
अलिपुंजने मनोहर निज गुंज-गान गाया॥
देखो विचित्र शोभा सरसों दिखा रही है।
सुन्दर सुवर्ण रंजित क्या दृश्य जीको भाया॥
फूले हैं द्रुम रंगीले लतिकायें लहलहातीं।
सबने ही अपने अपने उत्साहको दिखाया॥
ऐसा सुराज पाके हे हिन्दके सपूतो।
प्रफुल्लित हो काम कीजै प्रकृतीने ये बताया॥
भारत वसुन्धराका गौरव जो गिर रहा है।
यदि चाहते हो प्यारे फिरसे उसे उठाया॥
तो पुत्र पुत्रियोंको शिक्षा, अभीसे दीजे।
है सत्य मन्त्र ये ही ऋषियोंने जो सिखाया॥

२-गिरिजा सिन्धुजा सम्वाद

सिन्धु-सुता इक दिना सिधाई श्री गिरि सुता दुवारे,
विघ्न विदारन मातु कहा ! यह भाख्यो लागि किवारे

कष्ट निवारन मंगल-करनी जाके सब गुन गावैं।
मेरे द्वार पास तिहि कारण विघन रहन नहि पावैं॥
कहा भिकारी गयो यहाँते करै जो तुव प्रतिपालो?
होगा वहा जाय किन देखो बलि पै पसो कसालो॥
गरल-अहारी कहाँ बताओ लेहुँ आपसौं लेखो।
वार वार का पूँछति मोकौं जाय पूतना देखो॥
बहुरि पियारी मोहि बताओ भुजंग-नाह परवीनो।
देखहु जाय शेष-शय्या पर जहाँ शयन तिन कीनो॥
कहाँ पशुपती मोहि दिखाओ? गोकुल डगर पधारो।
शैलपती कहँ? करमें धारैं गोवरधनहि निहारो॥
सत्यनारायण हँसिके कमला भीतर चरण पधारैं।
अस आमोद प्रमोद दोऊको हमरे शोक निवारैं॥

—सत्यनारायण "कविरत्न"

१०

बालकालकी याद

कौन ले गया लूट हाय! मम बाल कालका सुख-भाण्डार।
कहाँ प्रबल उत्साह, कहाँ अब, गई हृदयकी शान्ति समूल॥
कहाँ सखा सङ्गिनी आदिका, वह नैसर्गिक प्रेम अपार!
आँख-मिचौनी, सुखद धूल गृह खेल कहाँ शैशव सुख मूल!!
चला गया वह समय हाय! इस जीवनको करके नि सार।
वही नयन, तनु वही, किन्तु है दृश्य आज जगके प्रतिकूल॥
मुझे बाल-सङ्गिनी सखागण भी करते हैं हाहाकार।
इस जीवनके भीषण रणमें पड, निजनिज सुख कर निर्मूल॥
शान्ति-पूर्ण उस बाल-कालके पावन सुखकी होते याद।
शोक अग्निसे तनु जलता है व्याकुल होते हैं मन प्रान॥



स्थायी मुझे ज्ञात होता था पावन शैशवका आह्लाद।
था नहि मेरे बाल हृदयको कुटिल कालकी गतिका ज्ञान ॥
चिरबन्दी रोता है ज्यों नित सोच मोच निज-गृह-सुख स्वाद।
त्यों मैं अब व्याकुल होता हूं उस सुखका कर मनमें ध्यान ॥

—पाडेय लोचनप्रसाद

११

शरद

नील नीरद नाहि दीसत इन्द्र-धनु नहि भाय।
मन्द गति सरितानकी भइ सुठि सोई दरसाय ॥ १ ॥
व्योम शोभा बढति निशिमें नखत-अवली पाय।
मनु सितारन-जडित माया नील पट सर साय ॥ २ ॥
विमल सरवर लसत कहुं कहुं जल अगाध लखाय।
ललित पीत सुशालिकी मृदु महँक सौंधि सुहाय ॥ ३ ॥
विविध रँगके खिले सरसिज कुमुदिनी लहराय।
भ्रमरगण गुञ्जरहि मानहुं प्रकृति यशको गाय ॥ ४ ॥
मोर मदसों मत्त है अब शोर नाहि मचाय।
नृत्य-रत कहुं नाहि दीसत उपवननिमें जाय ॥ ५ ॥
हंस कलरव करत अब वर विमल सरितन तीर।
सारसनकी सुभग जोडी कहुं किलोलत नीर ॥ ६ ॥
चक्रवाक लखाहि कहुँ कहुँ खजननिकी भीर।
स्वेत पछी उडत नभ पथ मनहुँ उजरो चीर ॥ ७ ॥
कञ्ज-रज सों सौरभित शुचि बहत मन्द समीर।
हरत हिय सन्तापको अरु करि निरोग शरीर ॥ ८ ॥
पाय सुखमय समय यह हे देशसेवा-वीर!
करहु भारतको सुखी सब हरहु वाकी पीर ॥ ९ ॥

—लक्ष्मीधर वाजपेयी

१२

१—मोहन

यह स्वार्थ तमका परदा अब तो उठा दे मोहन !
अब आत्मत्याग रविकी आभा दिखा दे मोहन !
पूरबमें फैल जावे शुभ देश-भक्ति-लाली,
सुसमीर एकताकी अब तो चला दे मोहन !
मृदु प्रेमकी सुरभिको पहुँचा दे हर तरफ तू,
मन-पल्लवोंमें आशा बून्दें बिछा दे मोहन !
सद्भाव पङ्कजोंको अब तो जरा हँसा दे,
जातीयता-नलिनिका मुखडा खिला दे मोहन !
द्विज वृन्द वन्दना कर तेरा सुयश सुनावें,
बैरी उलूक-गणको अब तो छका दे मोहन !
यह द्वेषका निशाचर हमको सता रहा है,
सत्कर्म शरसे इसकी गर्दन उडा दे मोहन !
आलस्य-चोर भी है पीछे पडा हमारे,
कर्तव्य दण्डसे तू उसको डरा दे मोहन !
अज्ञान-स्वप्नमें है दुख दैत्यने सताया,
सुखकी लगाके चुटकी हमको जगा दे मोहन !
चेतें, मिलें, खडे हों, स्ववर्गोको अपने चीन्हें,
मुरलीकी तान मीठी ऐसी सुना दे मोहन !

२—सूरदास

सूरको अन्धा कौन कहे ?

करे लोकको जो आलोकित अन्धा वही रहे ॥ १ ॥
क्या प्रभुने प्रत्यक्ष दिखाया दीप तले तम-रूप ?
नहीं घोर तममें दिखलाया दीपक दिव्य अनूप ॥ २ ॥

दिये विहारी चकाचौंधसे सबके नेत्र बिगाड,
अन्तर्दृष्टि किन्तु दी तुमको सभी हटाई आड़ ॥ ३ ॥
नेत्ररहित हो उस अथाहकी पाई तुमने थाह,
नेत्र-सहित हम थके भटकते नहीं सूझती राह ॥ ४ ॥
गही कृष्णने बाँह तुम्हारी हुई न अडचन नेक,
तुम्हें कृष्ण ही थी सब दुनिया थे तुम दोनों एक ॥ ५ ॥
जिस अदृश्यने अन्धकूपसे खींच किया दुख दूर,
कैद उसीको किया हृदयमें, हो तुम सचमुच सूर ॥ ६ ॥
कहीं न देखा सुना गया था सूर-श्यामका साथ,
लेकिन तुमने कर दिखलाया वह भी हाथों हाथ ॥ ७ ॥
अलङ्कार-ध्वनि-रसमय निकली हृदय वेणुसे तान,
वही हमारे लिये बन गई मधुर अलौकिक गान ॥ ८ ॥
जिस सद्भक्ति-तत्वको उसने फैलाया सब ठौर,
उसे भूल कर हन्त ! हुये हम आज और के और ॥ ९ ॥

३—स्वामीजी

इसे ही कहते हैं वैराग्य ?
तो विरागताके, सचमुच ही फूटे समझें भाग्य !
निर्मल वसन बिगाडा—उसपर धरा सुनहरी रंग,
लज्जित हुआ जाल मायाका देख जटाका ढङ्ग ।
क्रोध-कमण्डलु, मोह-माल, कर लिया द्रोहका दड,
लोभ लँगोट बाँध फैलाते हो प्रचड पाखड ।
तनमें भस्म रमाई, करके भस्म सभी घर बार,
अब चिमटा ले निकल हो करने —
ब्रल
घर घर
कष्ट

संसृतिमें खुद फंसे हुए हो हमें दिखाते मुक्ति।
धन्य धन्य आध्यात्म शक्तिको, धन्य मुक्तिकी युक्ति!
बहुत हो चुकी गुरुडम-लीला अब इससे मुंह मोड़,
बाबाजो, अब बन मनुष्य तू—बनमानुषपन छोड़।
—बदरीनाथ भट्ट

१२

१—भारतके भावी विद्वान

आज कई बीरोंके रहते, हुआ न उन्नत हिन्दुस्तान,
बना सका कोई गुण, विद्या-बलमें उसे न गौरववान॥
तो भी धीरज धरो, डरो मत, मेरे आशाकारी प्रान!
देखो, कुछ कर दिखलावेंगे, भारतके भावी विद्वान॥ १॥
जिनको बाल समझ कर, माता, दूध पिलाती सुधा समान।
जिनको पाल हुई है जगतीतलमें, वह आनन्द निधान॥
जिनको लाल लाल कह उसने, भुला दिया सुख दुख का ध्यान।
जानों उन्हें राष्ट्रकी सम्पत भारतके भावी विद्वान॥ २॥
हैं किस दुखसे दुखी? विचारो, उनका हरो शीघ्र सन्ताप।
क्यों दुर्बल हैं? क्यों रोते हैं? क्यों भूले हैं मधुरालाप?
माताओ! समझाओ उनको, देकर तन मन जीवन दान,
देखो! दुखी न होने पावें, भारतके भावी विद्वान॥ ३॥
आर्य्य-कीर्तिके स्तम्भ, सौख्यके सेतु, महत्ताके अवतार,
कठिन समयमें, आशाके, बस एक मात्र सच्चे आधार॥
यही तुम्हारा कष्ट हरेंगे, यही बनेंगे शक्ति-निधान।
पिता! प्राण दे पालो ये हैं भारतके भावी विद्वान॥ ४॥
आओ इनकी शिक्षाके हित, उथल पुथल कर दें संसार,
इन्हें बनावें कला-कुशल, नय-निपुण, वीर धीमान उदार।
डरे न प्रण पर मरें करें कर्तव्य बनावें दृढ़ सन्तान,
भारतीय हैं यही, बनावें, भारतके भावी विद्वान॥ ५॥

अब तो पिता निकम्मे होकर, शिक्षाका कर सकें न यत्न।
राज्य, देश, कोई न परखता, भरत-वसुमतीके ये रत्न ॥
क्योंकर वह उन्नत होवेगा, खोवेगा अपना अज्ञान।
कई करोड़ मूर्ख हैं, हा! जिस भारतके भावी विद्वान ॥ ६ ॥
"अन्न नहीं है, फीस नहीं है, पुस्तक है न सहायक हाय!
जी में आता है, पढ लिखलें, पर इसका है नही उपाय।
"कोई हमें, पढाओ, भाई! हुए हमारे व्याकुल प्राण" ॥
हा! हा! यों रोते फिरते हैं भारतके भावी विद्वान ॥ ७ ॥
"बूट चाहिये, सूट चाहिये, कालर हैट और नेक्टाय,
केन चाहिये, चेन चाहिये, घडी सहित फिर डेली चाय।
देखो इस पर लिखा न होवे, कहीं "मेड इन हिन्दुस्तान,"
क्यों कि हमीं तो हैं, इस बूढे भारतके भावी विद्वान" ॥ ८ ॥
शुभ्र वस्त्र हैं, बुद्धि शस्त्र है, पढते हैं वनमें निश्शंक,
बढा रही है बल वैभवको, प्यारी मातृभूमिकी अङ्क ॥
ब्रह्मचर्य्य रह, सरस्वती पर, दान करेंगे तन, मन, प्राण"।
ये हैं, निस्सन्देह हमारे, भारतके भावी विद्वान ॥ ९ ॥
किनको होगा जन्मभूमिके कष्टोंका पूरा अनुमान?
भाषा, भाव, भेष, भोजनमें, भारतीयताका अभिमान।
कौन हमारा दुःख हरेंगे, हमें करेंगे गौरववान?
यह सुन, सब हृदय कहेंगे, भारतके भावी विद्वान ॥ १० ॥
शिल्प गया, वाणिज्य गया, शुभ शिक्षाका है मान नहीं,
कृषि भी डूबी हुये दरिद्री, पर इसका कुछ ज्ञान नहीं!
हाय आज हम भोग रहे हैं, झिडकी, घृणा और अपमान,
कैसे ये दुख दूर करेंगे भारतके भावी विद्वान ॥ ११ ॥
प्रलय कारिणी युवक शक्तिकी 'क्या बात
भीष्म प्रतिज्ञा, लव, कुश कौशल,
भूलो मत, लिख निःसंशय,
"भारतका स भारतके

सूरज! सावधान हो जाओ, मातृभूमि! तुम धरलो धीर।
पश्चिम! तू भी शीघ्र सम्हलले, नीति बदल 'घन' जा गम्भीर॥
कर्मक्षेत्रमें आते हैं अब, करनेको जननीका त्राण,
कई करोड़ दुखोंसे व्याकुल, भारतके भावी विद्वान ॥१३॥

२—भारतीय विद्यार्थी

समय जगाता है, हम सबको, झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त, कार्य्यमें, निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क, मनस्वी, बन कर वीर कहाना होगा,
पूर्ण ज्ञान सर्वेश-चरणपर, जीवन—पुष्प चढाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन, बने हमींसे जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी ॥१॥
समय एक पल भी न हमें, अब भाई व्यर्थ बिताना होगा,
शक्ति बढा गौरव-गिरीशपर, चढ़कर शौर्य्य दिखाना होगा।
सम्पतिका उपयोग हमें, अनुकूल बुद्धिसे करना होगा,
बढ़ते हुये मार्गमें हमको, नहीं कभी भी डरना होगा।
इस कर्तव्य-भूमि पर, तृण सम, प्रण पर प्राण गवाने होंगे,
वीरोंहीके पद चिह्नोंपर, अपने पैर जमाने होंगे, ॥२॥
कठिनाइयां कठोर करोड़ों, हमें गिरानेको आवेंगी।
उन्हें हटाकर बढ़े चलेंगे, तो वह दिन झटपट आवेगा,
भारतवर्ष हमारा प्यारा, विश्व-मुकुट मणि कहलावेगा।
पूज्य पूर्वजोंकी आत्मायें, आशा धर कर देख रही हैं,
दुखें क्यों न? हमें वे अपने अश अनोखे लेख रही हैं ॥३॥
देख देख भारतको, उनके है बहती आंसूकी धारा,
मानो यह बन गया उन्हींसे सृष्टि-मेखला-सागर खारा।
पर अब अपनी ओर देख मन उनका धीरज धर पाया है,
यह संसार सदा नवयुवकोंहीका दम भरता आया है।
'हम पर है सब भार'—बन्धु! यह बात ध्यानसे टले न देखो,
विश्वासी वे आर्य्य-स्वर्गमें, कर कमलोंको मलें न देखो ॥ ४ ॥

ब्रह्मचर्य व्रत भीष्मपितामहको आगे रख धार रहे हों,
वीर तेजमें अर्जुन बन कर, दुर्जन दलको मार रहे हों।
स्वादेपनमें हो सुतीक्ष्ण, पागलसे प्रणको पाल रहे हों,
न्याय-नीतिमें विदुर सरीखे, तीखे वाक्य निकाल रहे हों।
कर्म-क्षेत्र हमको मिल जावें, हों बस इसी बातके प्रार्थी,
ऋषियोंकी सन्तान वही हैं, अद्भुत भारतीय' विद्यार्थी ॥ ५ ॥
सीख रहे हों पश्चिमसे जो, धर्मस्थलमें मरनेके गुण,
नैतिक छान बीन दृढ़ता मर्मस्थलमें धरनेके गुण।
हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिला कर, कर्मस्थल जय करनेके गुण,
अपनी कार्य्य शक्तिसे दुनियाँ भरके मन वश करनेके गुण।
वे ही हैं माताके रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वे ही हैं लक्ष्योंके लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥ ६ ॥
भारतीय शालाओंके गुण, विश्व विदित करनेवाले हों,
भारतीय शिक्षाका सूरज, शीघ्र उदित करने वाले हों।
भारतीय सागरको बढ़ कर, नित्य मुदित करने वाले हों।
भारतीय-निन्दक-समूह अविलम्ब क्षुभित करनेवाले हों।
परिवर्तन कर देने वाले, देवि भारतीके आशार्थी,
निस्सन्देह कहा सकते हैं, ऐसे, भारतीय विद्यार्थी ॥ ७ ॥
आज जगतकी राज-पुस्तिकामें भारतका नाम नहीं है!
वर्तमान आविष्कारोंमें, हाय! हमारा काम नहीं है!
रोता है, सब देश, देशमें दानोंको भी दाम नहीं है!
कहते हैं सब लोग, यहाँके लोगोंमें कुछ राम नहीं है!!!
नाम नहीं है! काम नहीं है! दाम नहीं है! राम नहीं है!
तो बस इन्हें प्राप्त करनेतक, हमको भी आराम नहीं है ॥ ८ ॥
घर घरमें जगदीशचन्द्र वसु, होना काम हमारा ही है,
बन कर कृषक, गर्वसे कृषिको, बोना काम हमारा ही है।
शिल्प बढ़ा कर ताज महल, फिर रच करके दिखलाने होंगे,
व्योपारी बन, देश देशमें अपने पोत घुमाने होंगे,

रेल तार आकाश-यान, ये हम क्या कभी बना न सकेंगे ?
शुद्ध स्वदेशो पीताम्बर क्या माधवको पहिना न सकेंगे ॥ ६ ॥
'मिल' की बातोंको सुन कर कुछ निश्चित मार्ग बनावेंगे हम,
'स्पेंसर' के सिद्धान्त सीख शिक्षाके क्षेत्र बढ़ावेंगे हम।
साधु 'मेजनी' से सोखेंगे, 'निज कर्तव्य निभाना कैसे' ?
'कार्लाइल' से यह पूँछेंगे—'वीर किन्हें कहते हैं ?' कह दे,
'डबल्यू टी स्टेड' किधर हैं ? जागृति-शान्ति मरण बल यह दे १०।
पहले बाल भरत हो सिहोंके भी दाँत दबाना होगा,
पुन भरत हो, बन्धु प्रेमपर, अपनी भेंट चढ़ाना होगा।
तभी भरत हो, देह-भान तज, विश्व रूप बन जाना होगा,
फिर भारतके पुत्र भरत कहलाकर गौरव पाना होगा।
जब तक नहीं भरत-कुल दूषण, भूषण हो, होंगे प्रेमार्थी,
तब तक कैसे कहा सकेंगे—'विजयी भारतीय विद्यार्थी' ॥ ११ ॥
भारत माता ! अपने इन पुत्रोंको पहलेवाला बल दे,
हे भारती ! दया कर क्षणमें सबकी दुर्बलता तू दल दे।
भारत की सच्ची आत्मायें आगे बढ़ें, उन्हें क्यों भय हो ?
भारतवासी मिल कर गावें—'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो।'
यह सुन कर जगती तल कह दे, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो',
प्रतिध्वनिमें जगदीश्वर कह दें, 'भारतवर्ष तुम्हारीजय हो' ॥१२॥
जीवन रणमें वीर ! पधारो मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना, गिर कर चढ़ना, तुमसे सब विघ्नोंको भय हो।
प्रेम निभाओ, प्रेम् दृढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवोंसे भी कहला लो यह-'विजयी भारतवर्ष पधारो !'
भारतके सौभाग्य विधाता, भारत माताके आज्ञार्थी,
भारत-विजय क्षेत्रमें जाओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥ १३ ॥

—माखनलाल चतुर्वेदी

१४

नीच जाति

गया था जब मन्दिरकी ओर,
मेरे मनके संशय भागे ।
देखा—वृक्ष खड़े हैं आगे ।
शाखाओंपर हँसमुख पक्षी बैठे करते शोर ॥
इतर-जाति-प्रतिघृणा हमारी ।
बदल गयी श्रद्धामें सारी ।
फिर जो देखा उससे मेरा नाच उठा मन मोर ॥
जड़ वृक्षोंमें मन्दिर तेरा ।
चिड़ियोंका भी वही बसेरा ।
त्रिविध ताप-हर मंजु त्रिवेणी लेती जहाँ हिलोर ॥
हम मानव हैं और अधम हैं ।
ये ऋषि मुनि हैं, गुरुके सम ।
कैसे ? कहाँ ? क्षमा पाऊँगा ? हूँ अपराधी घोर ॥

—शिवनारायण वर्म्मा "नयन"

१५

१—चित्रकूटमें राजसभा

समउ समुझि धरि धीरज राजा चले भरत पहिं सहितसमाजा
भरत आइ आगे भइ लीन्हे अवसरसरिस सुआसन दीन्हे
तात भरत कह तिरहुतिराऊ तुम्हहिं बिदित रघुबीरसुभाऊ
राम सत्यव्रत धरमरत सब कर सील सनेहु
संकट सहत सँकोचबस कहिय जो आयसु देहु

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी बोले भरत धीर धरि भारी
प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू कुल-गुरु-सम हित माय न बापू
कौसिकादिमुनि सचिवसमाजू ज्ञान-अंबु-निधि आपुन आजू
सिसु सेवक आयसु अनुगामी जानि मोहि सिख देइय स्वामी
एहि समाज थल बूझब राउर मौन मलिन मैं बोलब बाउर
छोटे बदन कहउँ बड़ि बाता छमब तात लखि बाम बिधाता
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना सेवाधरम कठिन जग जाना
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू बैर अंध प्रेमहिं न प्रबोधू

राखि राम रुख धरमुब्रत पराधीन मोहि जानि
सब के समत सर्बहित करिय प्रेम पहिचानि

भरतबचन सुनि देखि सुभाऊ सहितसमाज सराहत राऊ
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे अरथ अमित अति आखर थोरे
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निजपानी गहि न जाइ अस अद्भुत बानी
भूप भरत मुनि साधु समाजू गे जहँ बिबुध-कुमुद-द्विज-राजू
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा मनहु मीनगन नवजल जोगा
देव प्रथम कुल-गुरु गति देखी निरखि बिदेह सनेह बिसेखी
राम-भगति-मय भरत निहारे सुर स्वारथी हहरि हिय हारे
सब कोउ राम प्रेममय पेखा भये अलेख सोचबस लेखा
गये जनक रघुनाथसमीपा सनमाने सब रबि-कुल-दीपा
समय समाज धरम अविरोधा बोले तब रघु-बंस-पुरोधा
जनक भरत संबाद सुनाई भरत कहाउति कही सुहाई
तात राम जस आयसु देहू सो सब करइ मोर मत एहू
सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी बोले सत्य सरल मृदु बानी
बिद्यमान आपुन मिथिलेसू मोर कहब सब भाँति भदेसू
राउर राय रजायसु होई राउरिसपथ सही सिर सोई

१४

नीच जाति

गया था जब मन्दिरकी ओर,
मेरे मनके संशय भागे।
देखा—वृक्ष खड़े हैं आगे।
शाखाओंपर हँसमुख पक्षी बैठे करते शोर॥
इतर-जाति-प्रतिघृणा हमारी।
बदल गयी श्रद्धामें सारी।
फिर जो देखा उससे मेरा नाच उठा मन मोर॥
जड़ वृक्षोंमें मन्दिर तेरा।
चिड़ियोंका भी वहीं बसेरा।
त्रिविध ताप-हर मञ्जु त्रिवेणी लेती जहाँ हिलोर॥
हम मानव हैं और अधम हैं।
ये ऋषि मुनि हैं, गुरुके सम।
कैसे? कहां? क्षमा पाऊंगा? हूं अपराधी घोर॥

—शिवनारायण बर्म्मा "नयन"

१५

१—चित्रकूटमें राजसभा

समउ समुझि धरि धीरज राजा चले भरत पहिं सहितसमाजा
भरत आइ आगे भइ लीन्हे अवसरसरिस सुआसन दीन्हे
तात भरत कह तिरहुतिराऊ तुम्हहिं बिदित रघुबीरसुभाऊ
राम सत्यब्रत धरमरत सब कर सील सनेहु
संकट सहत सँकोचबस कहिय जो आयसु देहु

सुनि तन पुलकि नयन भरि वारी बोले भरत धीर धरि भारी
प्रभु प्रिय पूज्य पितासम आपू कुल-गुरु-सम हित माय न बापू
कौसिकादिमुनि सचिवसमाजू ज्ञान-अंबु-निधि आपुन आजू
सिसु सेवक आयसु अनुगामी जानि मोहि सिख देइय स्वामी
एहि समाज थल बूझब राउर मौन मलिन मैं बोलब बाउर
छोटे बदन कहउँ बडि बाता छमब तात लखि बाम बिधाता
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना सेवाधरम कठिन जग जाना
स्वामि धरम स्वारथहिं बिरोधू बैर अंध प्रेमहिं न प्रबोधू

राखि राम रुख धरमुब्रत पराधीन मोहि जानि
सब के संमत सर्बहित करिय प्रेम पहिचानि

भरतबचन सुनि देखि सुभाऊ सहितसमाज सराहत राऊ
सुगम अगम मृदु मंजु कठोरे अरथ अमित अति आखर थोरे
ज्यों मुख मुकुर मुकुर निजपानी गहि न जाइ अस अद्भुत बानी
भूप भरत मुनि साधु समाजू गे जहँ बिबुध-कुमुद-द्विज-राजू
सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा मनहुँ मीनगन नवजल जोगा
देव प्रथम कुल गुरु-गति देखी निरखि बिदेह सनेह बिसेखी
राम-भगति-मय भरत निहारे सुर स्वारथी हहरि हिय हारे
सब कोउ राम प्रेममय पेखा भये अलेख सोचबस लेखा
गये जनक रघुनाथसमीपा सनमाने सब रबि-कुल-दीपा
समय समाज धरम अविरोधा बोले तब रघु-बंस-पुरोधा
जनक भरत संवाद सुनाई भरत कहाउति कही सुहाई
तात राम जस आयसु देहू सो सब करइ मोर मत एहू
सुनि रघुनाथ जोरि जुगपानी बोले सत्य सरल मृदु बानी
बिद्यमान आपुन मिथिलेसू मोर कहब सब भाँति भदेसू
राउर राय रजायसु होई राउरिसपथ सही सिर सोई

रामसपथ सुनि मुनि जनक सकुचे सभासमेत
सकल विलोकत भरतमुख बनइ न ऊतरु देत

सभा सकुचबस भरत निहारी रामबंधु धरि धीरज भारी
कुसमउ देखि सनेह सँभारा बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा
सोक कनकलोचन मति छोनी हरी बिमल-गुन-गन जग जोनी
भरतबिबेक बराह बिसाला अनायास उधरी तेहि काला
करि प्रनाम सब कहँ कर जोरे राम राउ गुरु साधु निहोरे
छमब आजु अतिअनुचित मोरा कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा
हिय सुमिरी सारदा सुहाई मानस तें मुखपंकज आई
बिमल बिबेक धरम नय साली भरतभारती मंजु मराली

निरखि बिबेक बिलोचनन्हि सिथिल सनेह समाजु
करि प्रनाम बोले भरत सुमिरि सीय रघुराजु

प्रभु पितु मातु सुहृद गुरु स्वामी पूज्य परमहित अंतरजामी
सरल सुसाहिब सील निधानू प्रनतपाल सरबग्य सुजानू
समरथ सरनागत हितकारी गुनगाहक अवगुन-अघ-हारी
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं मोहि समान मैं साइँ दोहाईं
प्रभु-पितु-बचन मोहबस पेली आयेउँ इहाँ समाज सकेली
जग भल-पोच ऊँच अरु नीचू अमिय अमरपद माहुर मीचू
राम रजाइ मेट मन माहीं देखा सुना कतहुँ कोउ नाहीं
सो मैं सब बिधि कीन्हि ढिठाई प्रभु मानी सनेह सेवकाई

कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर
दूषण भे भूषनसरिस सुजस चारु चहुँ ओर

राउरिरीति सुबानि बड़ाई जगत बिदित निगमागम गाई
कूर कुटिल खल कुमति कलंकी नीच निसील निरीस निसंकी

तेउ सुनि सरन सामुहे आये सकृत प्रनाम किये अपनाये
देखि दोष कबहु न उर आने सुनि गुन साधुसमाज बखाने
को साहिब सेवकहि नेवाजी आपु समान साज सब साजी
निज करतूति न समुझिय सपने सेवक सकुच सोच उर अपने
सो गोसाइँ नहिं दूसर कोपी भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी
पसु नाचत सुक पाठ प्रवीना गुनगति नट पाठक आधीना

यों सुधारि सनमानि जन किये साधु सिरमोर
को कृपाल बिनु पालिहइ बिरदावलि बरजोर

सोक सनेह कि बाल सुभाये आयउँ लाइ रजायसु बॉये
तबहुँ कृपालु हेरि निजओरा सबहि भाति भल मानेउ मोरा
देखेउँ पाय सु-मंगल-मूला जानेउ स्वामि सहज अनुकूला
बडे समाज बिलोकेउँ भागू बडी चूक साहिब अनुरागू
कृपा अनुग्रह अंग अघाई कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई
राखा मोर दुलार गोसाईं अपने सील सुभाय भलाई
नाथ निपट मैं कीन्हि ढिठाई स्वामि समाज सकोच बिहाई
अबिनय बिनय जथारुचि बानी छमहिं देव अतिआरति जानी

सुहृद सुजान सुसाहिबहि बहुत कहब बडि खोरि
आयसु देइय देव अब सबइ सुधारिय मोरि

प्रभु-पद-पदुम-पराग दोहाई सत्य सुकृत सुखसींव सुहाई
सो करि कहउँ हिये अपने की रुचि जागत सोवत सपनेकी
सहज सनेह स्वामिसेवकाई स्वारथ छल फल चारि बिहाई
अज्ञासम न सुसाहिबसेवा सो प्रसाद जन पावइ देवा
अस कहि प्रेमबिबस भय भारी पुलक सरीर बिलोचन बारी
प्रभु-पद कमल गहे अकुलाई समउ सनेह न सो कहि जाई
कृपासिंधु सनमानि सुबानी बैठाये समीप गहि पानी
भरतबिनय सुनि देखि सुभाऊ सिथिल सनेह सभा रघुराऊ

रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी
मन महँ सराहत भरत-भायप-भगति की महिमा घनी
भरतहिं प्रसंसत विबुध बरषत सुमन मानसमालिन से
तुलसी विकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से

सो०—देखि दुखारी दीन दुहुं समाज नरनारि सब
मघवा महामलीन मुयेहिं मारि मंगल चहत

कपट कुचालि-सीवँ सुरराजू पर-अकाज-प्रिय आपन काजू
काकसमान पाक-रिपु रीती छली मलीन कतहु न प्रतीती
प्रथम कुमत करि कपट सँकेला सो उचाट सबके सिर मेला
सुरमाया सब लोग बिमोहे रामप्रेम अतिसय न बिछोहे
भये उचाटबस मन थिर नाहीं छन बन रुचि छन सदन सुहाहीं
दुबिध मनोगत प्रजा दुखारी सरित सिंधु संगम जनु बारी
दुचित कतहु परितोष न लहहीं एक एक सन मरम न कहहीं
लखि हिय हँसि कह कृपानिधानू सरिस स्वान मघवान जुबानू

भरत जनक मुनिजन सचिव साधु सचेत बिहाइ
लागि देवमाया सबहिं जथाजोग जन पाइ

कृपासिंधु लखि लोग दुखारे निजसनेह सुर-पति छल भारे
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री भरतभगति सब के मति जंत्री
रामहिं चितवत चित्र लिखे से सकुचत बोलत बचन सिखे से
भरत-प्रीति-नति-विनय-बड़ाई सुनत सुखद बरनत कठिनाई
जासु बिलोकि भगति लवलेसू प्रेममगन मुनिगन मिथिलेसू
महिमा तासु कहइ किमि तुलसी भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी
आपु छोटि महिमा बड़ि जानी कबिकुल कानि मानि सकुचानी
कहि न सकति गुन रुचि अधिकाई मतिगति बालबचन की नाईं

भरत-बिमल-जस बिमल बिधु सुमति चकोर कुमारि
उदित बिमल जनहृदय नभ एकटक रही निहारि

भरतसुभाउ न सुगम निगमहूँ लघुमति चापलता कबि छमहू
कहत सुनत सतिभाउ भरत को सीय-राम पद होइ न रत को
सुमिरत भरतहिं प्रेम राम को जेहि न सुलभ तेहि सरिस बाम को
देखि दयालु दसा सबही की राम सुजान जानि जन जी की
धरमधुरीन धीर नयनागर सत्य सनेह सील सुख सागर
देस काल लखि समयसमाजू नीति-प्रीति पालक रघुराजू
बोले बचन बानि सरबस से हित परिनाम सुनत ससिरस से
तात भरत तुम्ह धरमधुरीना लोक बेद बिद प्रेमप्रबीना

करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात
गुरुसमाज लघु-बधु-गुन कुसमय किमि कहि जात

जानहु तात तरनि-कुल-रीति सत्यसंध पितु कीरति प्रीती
समउ समाज लाज गुरुजन की उदासीन हित अनहित मन की
तुम्हहिं बिदित सबही कर करमू आपन मोर परम हित धरमू
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा तदपि कहउँ अवसरअनुसारा
तात तात बिनु बात हमारी केवल गुरु-कुल-कृपा सँभारी
न तरु प्रजा पुरजन परिवारू हमहि सहित सब होत खुआरू
जौं बिनु अवसर अथव दिनेसू जग केहि कहहु न होइ कलेसू
तस उतपात तात बिधि कीन्हा मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा

रामकाज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम
गुरुप्रभाउ पालिहि सबहिं भल होइहि परिनाम

सहित समाज तुम्हार हमारा घर बन गुरुप्रसाद रखवारा
मातु पिता-गुरु-स्वामि-निदेसू सकलधरम धरनीधर सेसू
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू तात तरनि-कुल-पालक होहू
साधक एक सकलसिधि देनी कीरति सुगति भूतिमय बेनी
सो बिचार सहि संकट भारी करहु प्रजा परिवार सुखारी
बाँटी बिपति सबहि मोहि भाई तुम्हहि अवधि भरि बड़ि कठि...

नि तुम्हहिं मृदु कहउँ कठोरा कुसमय तात न अनुचित मोरा
हिं कुठाय सुबधु सहाये ओडियहि हाथ असनि के घाये

सेवक कर पद नयन से मुख सो साहिब होइ
तुलसी प्रीति की रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ

भा सकल सुनि रघुबर बानी प्रेम पयोधि अमिय जनु सानी
थिलसमाज सनेह समाधी देखि दसा चुप सारद साधी
रतहिं भयउ परम सतोषू मनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू
ख प्रसन्न मन मिटा बिषादू भा जनु गूँगहि गिराप्रसादू
न्हि सप्रेम प्रनाम बहोरी बोले पानिपकरुह जोरी
थ भयेउ सुख साथ गये को लहेउँ लाहु जग जनम भये को
ब कृपाल जस आयसु होई करउँ सीस धरि सादर सोई
ो अवलब देव मोहिं देई अवधि पारु पावउँ जेहि सेई

देव देवअभिषेक हित गुरुअनुसासन पाइ
आनेउँ सब तीरथसलिल तेहि कहँ काह रजाइ

क मनोरथ बड मन माहीं सभय सकोच जात कहि नाहीं
कहहु तात प्रभुआयसु पाई बोले बानि सनेह सुहाई
चित्रकूट मुनि थल तीरथ बन खग मृग सरि सर निर्भर गिरिगन
प्रभु-पद-अंकित अवनि बिसेखी आयसु होइ त आवउँ देखी
अवसि अत्रिआयसु सिर धरहू तात बिगत भय कानन चरहू
मुनिप्रसाद बन मगलदाता पावन परम सुहावन भ्राता
रिषिनायक जह आयसु देहीं राखहु तीरथजल थल तेहीं
सुनि प्रभुबचन भरत सुख पावा मुनि-पद-कमल मुदित सिर नावा

भरत-राम-संवाद सुनि सकल-सुमगल मूल
सुर स्वारथी सराहि कुल बरपत सुर तरु फूल

२—रामविरह

चले राम त्यागा बन सोऊ अ-तुलित-बल नरकेहरि दोऊ
विरही इव प्रभु करत विषादा कहत कथा अनेक संवादा
लछिमन देखु विपिन कइ सोभा देखत केहि कर मन नहिं छोभा
नारि सहित सब खग-मृग-बृंदा मानहुँ मोरि करत हहिं निन्दा
हमहिं देखि मृगनिकर पराहीं मृगी कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं
तुम्ह आनंद करहु मृगजाये कंचनमृग खोजन ए आये
संग लाइ करिनी करि लेहीं मानहुँ मोहि सिखावन देहीं
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय
राखिय नारि जदपि उर माहीं जुवती सास्त्र नृपति बस नाहीं
देखहु तात बसंत सुहावा प्रियाहीन मोहिं भय उपजावा

बिरहबिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल
सहित विपिन मधुकर खग मदन कीन्हि बगमेल
देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात
डेरा कीन्हेउ मनहु तब कटक हटकि मनजात

बिटप बिसाल लता अरुझानी बिबिध बितान दिये जनु तानी
कदलि तालबर धुजा पताका देखि न मोह धीर मन जाका
बिबिध भाँति फूले तरु नाना जनु बानैत बने बहु बाना
कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाये जनुभट बिलग बिलग होइ छाये
कूजत पिक मानहुँ गज माते ढेक महोख ऊँट बिसराते
मोर चकोर कीर बर बाजी पारावत मराल सब ताजी
तीतर लावक पद-चर-जूथा बरनि न जाइ मनोजबरूथा
रथ गिरिसिला दुन्दुभी झरना चातक बंदी गुनगन बरना
मधु-कर-मुखर भेरि सहनाई त्रिविध बयारि बसीठी आई
चतुरंगिनी सेन संग लीन्हे बिचरत सबहिं चुनौती दीन्हे

लछिमन देखत कामअनीका रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका
एहिके एक परमबल नारी तेहि ते उवर सुभट सोइ भारी

तात तीनि अतिप्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ
मुनि बिज्ञानधाम मन करहिं निमिप महु छोभ
लोभके इच्छा दंभ बल कामके केवल नारि
क्रोधके परुषवचन बल मुनिवर कहहि बिचारि

गुनातीत स-चराचर-स्वामी राम उमा सब अंतरजामी
कामिन्ह कै दीनता देखाई धीरन्हके मन बिरति दढाई
क्रोध मनोज लोभ मद माया छूटहिं सकल रामकी दाया
सो नर इन्द्रजाल नहिं भूल जा पर होइ सो नट अनुकूला
उमा कहब मैं अनुभव अपना सत हरि भजन जगत सब सपना
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा पंपा नाम सुभग गभीरा
संतहृदय जस निर्मल बारा बाधे घाट मनोहर चारी
जहँ तह पियहिं बिविध मृग नीरा जनु उदारगृह जाचकभीरा

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइय मर्म
मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुन ब्रह्म
सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जलमाहि
जथा धर्मसीलन्हके दिन सुखसजुत जाहिं

बिकसे सरसिज नाना रंगा मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा
चक्रबाक-बक-खग-समुदाई देखत बनइ बरनि नहिं जाई
सुंदर खग-गन-गिरा सुहाई जात पथिक जनु लेत बोलाई
ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये चहु दिसि कानन बिटप सुहाये
चंपक बकुल कदंब तमाला पाटल पनस परास रसाला
नवपल्लव कुसुमित तरु नाना चंचरीकपटलीं कर गान

सीतल मद सुगंध सुभाऊ सतत , बहइ मनोहर वाऊ
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं

फल भर नम्र विटप सब रहे भूमि नियराइ
परउपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसपति पाइ

२ वर्षा और शरद

सुदर वन कुसुमित अतिसोभा गुञ्जत मधुपनिकर मधुलोभा
कद मूल फल पत्र सुहाये भये बहुत जब तें प्रभु आये
देखि मनोहर सैल अनूपा रहे तहँ अनुज सहित सुरभूपा
मधुकर-खग-मृग-तनु धरि देवा करहिं सिद्ध मुनि प्रभु के सेवा
मगलरूप भयउ वन तब तें कीन्ह निवास रमापति जब तें
फटिकसिला अतिसुभ्र सुहाई सुख आसीन तहा दोउ भाई
कहत अनुज सन कथा अनेका भगति विरति नृप नीति बिबेका
वरसाकाल मेघ नभ छाये गर्जत लागत परम सुहाये

लछिमन देखहु मोरगन नाचत बारिद पेख
गृही विरतिरत हरप जस विष्णुभगत कहं देखि

घन घमड नभ गरजत घोरा प्रिया हीन डरपत मन मोरा
दामिनि दमकि रह न वन माहीं खल कै प्रीति जथाथिर नाहीं
बरसहिं जलद भूमि नियराये जथा नवहिं बुध विद्या पाये
बुद अघात सहहिं गिरि कैसे खलके वचन सत सह जैसे
छुद्र नदी भरि चलीं तोराई जस थोरहु धन खल इतराइ
भूमि परत भा ढाबर पानी जनु जीवहि माया लपटानी
सिमिटि सिमिटि जल भरहि तलावा जिमि सद्गुन सज्जन पहिं आवा
सरिताजल जलनिधि महुँ जाई होहि अचल जिमि जिव हरि पाई

हरित भूमि तृनसकुल समुझि परहिं नहिं पथ
जिमि पाखड विवादतें गुप्त होहिं सदग्रथ

दादुर धुनि चहुँ दिसा सुहाई वेद पढहिं जनु बटुसमदाई
नव पल्लव भय विटप अनेका साधक मन जस मिले विवेका
अर्क जवास पात विन भयऊ जस सुराज खल उद्यम गयऊ
खोजत कतहुँ मिलइ नहिं धूरी करइ क्रोध जिमि धर्महि दूरी
ससिसपन्न सोह महि कैसी उपकारी कै सपति जैसा
निसि तम घन खद्योत बिराजा जनु दभिन कर मिला समाजा
महावृष्टि च,लि फूटि कियारी जिमि सुतत्र भये बिगरहिं नारी
कृपी निरावहिं चतुर किसाना जिमि बुध तजहिं मोह मद माना
देखियत चक्रवाक खग नाहीं कालिहि पाइ जिमि धर्म पराही
ऊसर बरसइ तृन नहिं जामा जिमि हरि-जन-हियउपज न कामा
विविध 'जतुसकुल महि भ्राजा प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना जिमि इद्रियगन उपजे ज्ञाना

कबहुँ प्रबल चल मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहिं
जिमि कपूतके उपजे कुल सद्धर्म नसाहिं
कबहुँ दिवस महुँ निबिडतम कबहुँक प्रगट पतग
बिनसइ उपजइ ज्ञान जिमि पाइ कुसंग सुसग

बरषाबिगत सरद रितु आई लछिमन देखहु परम सुहाई
फूले कास सकल महि छाई जनु बर्षाकृत प्रगट बुढाई
उदित अगस्त पथजल सोखा जिमि लोभहि सोखइ सतोषा
सरितासर निर्मलजल सोहा सतहृदय जस गत-मद-मोहा
रस रस सूख सरित-सर-पानी ममतात्याग करहिं जिमि ज्ञानी
जानि सरद रितु खजन आये पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये
पक न रेनु सोह असि धरनी नीति-निपुन-नृपकै जसि करनी
जलसंकोच विकल भइ मीना अबुध कुटुबी जिमि धनहीना
बिनु घन निर्मल सोह अकासा हरिजन इव परिहरि सब आसा
कहुँ कहुँ बृष्टि सारदी थोरी कोउ एक पाव भगति जसि मोरी

चले हरषि तजि नगर नृप तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरिभगति पाइ स्रम तजहिं आस्रमी चारि॥

सुखी मीन जे नीर अगाधा जिमि हरिसरन न एकउ बाधा
फूले कमल सोह सर कैसा निर्गुन ब्रह्म सगुन भये जैसा
गुंजत मधुकर मुखर अनूपा सुंदर खगरव नानारूपा
चक्रवाकमन दुख निसि पेखी जिमि दुरजन परसंपति देखी
चातक रटत तृषा अति ओही जिमि सुख लहइ न संकरद्रोही
सरदातप निसि ससि अपहरई संतदरस जिमि पातक टरई
देखि इंदु चकोर समुदाई चितवहिं जिमि हरिजन हरि पाई
मसकदंस बीते हिमत्रासा जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा

भूमि जीव संकुल रहे गये सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि संसय-भ्रम-समुदाइ ॥

—तुलसीदास





राष्ट्रीय शिक्षकोंसे निवेदन

"धर्म्मे वो धीयतां बुद्धिर्मनो वो महदस्तु च"

१ राष्ट्रीय शिक्षावलीकी पहली चार पोथिया साधारण बालकोंके लिये प्राय आधे सत्र (सेशन) और तीव्रबुद्धि बालकोंके लिये चौथाई सत्रके लिये लिखी गयी हैं।

२ बालकोंकी शिक्षाके प्रधान प्रारम्भिक अंग दो ही हैं, आत्मा और अन्तःकरणके लिये धर्म्म और नीतिकी शिक्षा और शरीरके लिये स्वास्थ्यकी शिक्षा। शेष विषय गौण हैं। लिखना पढ़ना सिखाना इसीलिये ठीक है कि इन दोनों शिक्षाओंके लिये वर्त्तमानमें, और अन्य शिक्षाओंके लिये भविष्यमें, सुलभ साधन है। अन्यथा सभी आवश्यक शिक्षाए बिना अक्षरज्ञानके दी जा सकती हैं।

३ धर्म्म शब्दके अन्तर्गत साम्प्रदायिक धर्म्म भी है, परन्तु सम्प्रदायकी विशेषता और मतभेदके विषय अध्यापक अपनी शिक्षामें सम्मिलित न करें। केवल उदार रीतिसे जिन जिन बातोंमें समस्त समाजकी सहमति है उन्हींकी चर्चा करें। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि "समाज" हैं। इनके भीतरी भेद "सम्प्रदाय" हैं।

४ नीतिकी शिक्षा सभी समाजोंके लिये एकसी होगी। नीतिका समझानामात्र शिक्षा नहीं है। प्रत्येक शिक्षकका धर्म्म है, पवित्र कर्त्तव्य है, जिम्मेदारी है कि नीतिके अनुसार स्वयं आचरण करे और बालकोंसे भी आचरण करावे। शिक्षककी एक नैतिक भूल समस्त बच्चोंके आत्मीय और मानसिक जीवनके लिये विषका काम करेगी। नीति पालन करानेके हिंसक व्यवहार अनावश्यक है।

५ अपना तनमन देकर शिक्षक शिक्षाकी पद्धति ऐसी रोचक बना दे कि बालक उसे खेल समझें और स्वय जी लगावें। बालकोंपर शिक्षाके लिये जबर्दस्ती न होनी चाहिये।

६ अच्छे पद्योंको, गिनती, पहाड़े आदिकी भाति याद करा देना आवश्यक होगा। परन्तु शब्दार्थ या पाठके विषयकी मुख्य बातें भी रटाना न चाहिये। समझा देना और लडके समझ गये इस बातको प्रश्नोंसे जान लेना शिक्षकका कर्त्तव्य है। सुलेखन और अनुलेखनका अभ्यास आगेके विचारसे परमावश्यक है।

७ शिक्षकोंको उचित है कि पढानेवाले पाठोंको पहलेसे पढकर दरजेमें आवें और समझानेमें देश काल पात्रके अनुकूल पाठके विषयका विस्तार करें। पाठके अनुकूल और कहानियाँ आदि कहें, कविता सुना दें और बालक चाहें तो लिखा भी दें। इस सम्बन्धमें भारतीय साहित्यसे एव "बुक आव् नालिज" आदि विदेशी साहित्यसे उन्हे सहायता मिल सकेगी।

८ चौथी पोथीतक पचास लडकोंसे एक साथ कहलाकर याद करा दिये जायें। मतलब समझा दिया जाय, पर अर्थ रटाया न जाय। कुछ अधिक पढनेपर वह आप समझ लेंगे।

९ पढाईका सारा काम भरसक खुली जगहमें होना चाहिये। अनध्याय और छुट्टिया स्थानीय सुभीतेके अनुसार होनी चाहिये।

१० बालकोंकी बुद्धि धर्म्ममें रहे और मन विशाल रहे, इस बातका शिक्षकको प्रतिक्षण खयाल ... बुद्धि तब ... मन तब रहे विशाल।"

रा० गौ०

* श्रीः *

हिन्दी पुस्तक एजेन्सी मालाका—१ २वां पुष्प

पंजाबहरण

ले० प्रसिद्ध सिक्ख इतिहासवेत्ता

पं० नन्दकुमार देव शर्म्मा

स्तकमें उन सिक्खवीरोंके पतनका इतिहास है जिन्होंने बल और पराक्रमसे संसार विजयी अंग्रेजोंके दांत खट्टे ये। इसको पढ़नेसे आपको स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि यह डींग मारना कि "हमने भारतको तलवारके ता है" कहांतक सगत है। चिलियनवालाका युद्ध ग्रेजोंके लिये मृत्यु शय्या थी। परन्तु घरकी खोंके पतनका कारण उपस्थित कर दिया। पुस्तक बड़ी परिश्रमके साथ लिखी गई है। इतिहास विषयक िय पुस्तक है। सुन्दर एण्टिक कागजके २५० पृष्ठोंकी -बिरंगे चित्रों सहित) पुस्तकका मूल्य केवल २।) (कोंसे २॥)

जेवनार

का श्रीमती सत्यवती द्विवेदी, गजपुरी। इस पुस्तकमें मानेके विविध उपायोंका साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। विविध भोजन किस तरह बनाना चाहिये, इसका सविस्तार दिया गया है। बालिकाओंको पढ़ाने योग्य है। प्रत्येक ए, लिये पुस्तक उपयोगी है। बालिका विद्यालयोंके ्नोंमें रखने योग्य है। उपहार पुस्तक १६ पेजीके का कागज (-) आना।